नवीनतम पाठ्यक्रम पर आधारित

Navbodh
मध्यप्रदेश संस्करण

नवबोध

बी.एड. सरल अध्ययन

पाठ्यक्रम विकास एवं विद्यालय

प्रथम सेमेस्टर



SYLLABUS

CC-4 CURRICULUM DEVELOPMENT AND SCHOOL

B.Ed. I SEM. (M.P.)

Unit-I

- Curriculum : Meaning and Nature, types of Curriculum, Syllabus and Text books-their interrelationship. Issues and problems of existing curriculum.

Unit-II

- Curriculum Construction, Curriculum development and Curriculum designing : Concepts and differences. Determinants and motives of Curriculum development. Different Curriculum Models-Open University, Open School, etc.

Unit-III

- Steps of Designing different Curriculum. Selection, Gradation and Organisation of Curriculum. Development and Implementation of Curriculum. Enrichment of Curriculum.

Unit-IV

PRACTICALS

- Evaluation of B.Ed. Curriculum.
- Designing a Curriculum in a given condition Reviewing of Syllabus/Books.

प्रश्न-सूची

पाठ्यक्रम विकास एवं विद्यालय (म. प्र.)

बी. एड. प्रथम सेमेस्टर

प्र. क्र.	इकाई अनुसार प्रश्न	पृष्ठ सं.
	इकाई I	
	1. पाठ्यक्रम, पाठ्यचर्या एवं पाठ्य–पुस्तकें	
	लघु एवं दीर्घ उत्तरीय प्रश्न	
1.	पाठ्यक्रम से आप क्या समझते हैं ? इसकी विशेषताएँ समझाइये।	9
2.	पाठ्यक्रम के महत्व को स्पष्ट कीजिए।	10
3.	पाठ्यक्रम के उद्देश्य लिखिए।	10
4.	पाठ्यक्रम की प्रकृति का वर्णन कीजिए।	11
5.	पाठ्यक्रम को प्रभावित करने वाले घटक कौन–कौन से हैं ?	12
6.	पाठ्यक्रम के प्रमुख प्रकार कौन–कौन से हैं ? प्रत्येक का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।	13
7.	विषय–केन्द्रित पाठ्यक्रम किसे कहते हैं ? इसके गुण एवं सीमाओं का वर्णन कीजिए।	14
8.	बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम की अवधारणा स्पष्ट कीजिए एवं इसकी विशेषताएँ लिखिये।	15
9.	कार्य/क्रिया केंद्रित पाठ्यक्रम का विस्तार से वर्णन कीजिए।	16
10.	कोर (समन्वित सामान्य) पाठ्यक्रम की विशेषतायें एवं सीमाएँ स्पष्ट कीजिए।	17
11.	अनुभव आधारित पाठ्यक्रम के बारे में आप क्या जानते हैं ? इसका विस्तार से वर्णन कीजिए।	17
12.	एकीकृत पाठ्यक्रम को परिभाषित कीजिए एवं इसकी विशेषताएँ बताइए। इसके प्रयोग में किन–किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है ?	18
13.	एकीकृत और विषय प्रधान पाठ्यक्रम के बीच अंतर को समझाइए।	19
14.	विद्यालयीन प्रचलित पाठ्यक्रम के गुण–दोषों की व्याख्या कीजिए।	19
15.	परम्परागत एवं प्रगतिशील पाठ्यक्रम में अंतर स्पष्ट कीजिए।	20
16.	पाठ्यक्रम के क्षेत्र के बारे में विस्तृत रूप से समझाइए।	21
17.	शिक्षक के लिए पाठ्यक्रम की उपयोगिता बताइये।	22
18.	पाठ्यक्रम की आवश्यकता एवं महत्व को लिखिए।	23

19.	परम्परागत पाठ्यक्रम के क्या दोष है ?	24
20.	कोविड–19 के युग के दौरान पाठ्यचर्या संबंधित उदय हुए किन्हीं पाँच मुद्दों का वर्णन कीजिए।	25
21.	पाठ्यचर्या विकास की विषयवस्तु चयन के दौरान मनोवैज्ञानिक छनना किस प्रकार लागू किया जाता है ?	25
22.	बुनियादी शिक्षा के सिद्धांतों को संक्षेप में लिखिए।	27
23.	पाठ्यक्रम की कमजोरियों को समझाइये।	28
24.	''पाठ्य पुस्तक की समीक्षा'' किस प्रकार की जाती है ?	29
	2. पाठ्य–वस्तु, पाठ्य–पुस्तकें एवं पाठ्यक्रम अस्तित्व के मुद्दे एवं समस्याएँ	
	लघु एवं दीर्घ उत्तरीय प्रश्न	
1.	पाठ्य–वस्तु (Syllabus) से क्या तात्पर्य है ? पाठ्य–वस्तु को परिभाषित कीजिए।	31
2.	पाठ्य–पुस्तकों से क्या आशय है ? पाठ्य–पुस्तकों को परिभाषित कीजिए।	31
3.	पाठ्य–पुस्तकों की आवश्यकता एवं महत्व स्पष्ट कीजिए।	32
4.	पाठ्य–पुस्तक के प्रकार एवं विशेषताओं का वर्णन कीजिए।	33
5.	अच्छी पाठ्य–पुस्तक के निर्माण हेतु सुझावों का विस्तृत वर्णन कीजिए।	34
6.	किन मानदण्डों के आधार पर पाठ्य–पुस्तकों का चयन किया जाना चाहिए ?	35
7.	पाठ्य–पुस्तक तथा पाठ्य–वस्तु में क्या सम्बन्ध है? समझाइए।	36
8.	प्रचलित पाठ्य–पुस्तकों की कमियाँ/दोष लिखिए।	37
9.	भारत में स्कूली पाठ्यक्रम के प्रमुख मुद्दे व समस्याएँ क्या हैं ?	38
10.	पाठ्यचर्या/पाठ्यक्रम एवं पाठ्य–वस्तु में अंतर स्पष्ट कीजिए।	39
11.	पाठ्यक्रम एवं पाठ्यचर्या में अंतर स्पष्ट कीजिए।	40
12.	पाठ्यचर्या विकास को प्रभावित करने वाले कारक कौन–से है ? लिखिए।	41
13.	आधुनिक शिक्षा में राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना (एन.सी.एफ.) के योगदान की चर्चा कीजिए।	42
14.	पाठ्यचर्या निर्माण किस प्रकार पाठ्यचर्या विकास से अलग है ?	43
15.	किस प्रकार मनोविज्ञान पाठ्यचर्या को आधार प्रदान करता है ? कोई दो उदाहरण दीजिए।	44
16.	दूरस्थ शिक्षा व मुक्त शिक्षा के मध्य क्या अंतर है ?	45
17.	मुक्त विद्यालय शिक्षा की पाँच सीमाएँ लिखिए।	46
18.	समाज और संस्कृति किस प्रकार पाठ्यचर्या के निर्धारक तत्व हैं ? उपर्युक्त उदाहरणों द्वारा स्पष्ट कीजिए।	46
19.	दस वर्षीय सृजनात्मक विद्यार्थी हेतु पाठ्यचर्या विकसित कीजिए।	47

20.	पाठ्यचर्या निर्माण, पाठ्यचर्या विकास एवं पाठ्यचर्या प्रारूप को परिभाषित कीजिए।	49
21.	पाठ्यचर्या विकास की विषयवस्तु चयन के दौरान मनोवैज्ञानिक छनना किस प्रकार लागू किया जाता है ?	52
22.	पाठ्यक्रम संरचना का अर्थ बताते हुए इसके महत्व पर चर्चा कीजिए।	52
23.	ओपन स्कूल कैसे अधिगम को सुगम बनाता है।	53
24.	पाठ्यचर्या के आधार क्या होने चाहिए ?	55
25.	पाठ्यचर्या नियोजन किन आधारों पर होता है ?	56
26.	कैरीकुलम फ्रेमवर्क क्या है ? इसे कौन प्रकाशित करता है।	58
27.	पाठ्यक्रम व्यवस्था के प्रमुख अंगों को लिखिए।	59
28.	NCF (2005) क्या है ? समझाइए।	90
29.	पाठ्यक्रम निर्माण के विभिन्न उद्देश्यों पर प्रकाश डालिए।	61

इकाई II

3. पाठ्यक्रम निर्माण

लघु एवं दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1.	पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धांतों का विस्तृत वर्णन कीजिए।	64
2.	पाठ्यक्रम निर्माण से आप क्या समझते हैं ? विस्तृत वर्णन कीजिए।	68
3.	भारत में स्वतंत्रता से पूर्व एवं स्वतंत्रता के पश्चात् पाठ्यक्रम की स्थिति स्पष्ट कीजिए।	69
4.	कोठारी आयोग की पाठ्यक्रम संबंधी विशेषताओं को समझाइए।	71
5.	राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) की विशेषताओं को समझाइए।	73
6.	पाठ्यक्रम निर्माण के आधारों (आयाम) का विस्तृत वर्णन कीजिए।	76
7.	नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 में पाठ्यक्रम संरचना को स्पष्ट कीजिए।	78
8.	पाठ्यचर्या के विषय केन्द्रित और अनुभव केन्द्रित अभिकल्प में क्या समानताएँ होती है ?	81
9.	पाठ्यचर्या के अधिगमकर्ता केन्द्रित और गतिविधि केन्द्रित अभिकल्प में क्या अंतर होता है ?	81
10.	पाठ्यचर्या क्रियान्वयन की किन्हीं पाँच बाधाओं को लिखिए।	82
11.	पाठ्यचर्या संवर्धन के किन्हीं भी दो तरीकों को लिखिए।	83
12.	पाठ्यचर्या के चयन, उन्नयन एवं संगठन की विस्तृत व्याख्या कीजिए।	83
13.	पाठ्यक्रम के समृद्धिकरण सिद्धांतों का वर्णन कीजिए।	84
14.	पाठ्येत्तर क्रियाओं के महत्व को समझाइये।	86

4. पाठ्यक्रम विकास एवं पाठ्यक्रम के निर्धारक

लघु एवं दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1.	पाठ्यक्रम विकास की प्रक्रिया को समझाइये।	87
2.	पाठ्य–सहगामी क्रियाओं का क्या अर्थ है ? इसके महत्व पर प्रकाश डालिए।	89
3.	पाठ्यक्रम विकास के प्रमुख निर्धारक एवं अभिप्रेरक कौन–कौन से हैं? उनका संक्षेप में वर्णन कीजिए।	92
4.	पाठ्यक्रम विकास की आवश्यकता पर चर्चा कीजिए।	95
5.	पाठ्यक्रम विकास के उद्देश्यों को लिखिए।	96
6.	समयानुसार पाठ्क्रम में संशोधन क्यों आवश्यक है ?	98
7.	पाठ्यक्रम मूल्यांकन के आधार कौन–कौन से है ?	98
8.	बी.एड. पाठ्यक्रम के व्यवसायीकरण से आप क्या समझते है ?	100
9.	शिक्षक शिक्षा के वर्तमान पाठ्यक्रम का मूल्यांकन कीजिए।	101
10.	पाठ्यचर्या में परिवर्तन की परिस्थितियों का चित्रण कीजिए।	101
11.	बी.एड– की पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम का मूल्यांकन कीजिए।	102
12.	समाज की बदली हुई आवश्यकताओं के विषय में आप क्या जानते है ?	105
13.	पाठ्यक्रम मूल्यांकन के लाभ लिखिए।	106

5. पाठ्यक्रम के प्रतिमान

लघु एवं दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1.	पाठ्यक्रम प्रतिमान से आप क्या समझते हैं ? स्पष्ट कीजिए।	108
2.	पाठ्यक्रम विकास के तकनीकी/वैज्ञानिक मॉडलों का विस्तृत वर्णन कीजिए।	110
3.	पाठ्यक्रम विकास के गैर–तकनीकी एवं गैर–वैज्ञानिक मॉडलों का विस्तृत वर्णन कीजिए।	115
4.	इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय पर विस्तृत लेख लिखिए।	118
5.	पाठ्यक्रम विकास हेतु डी.के. व्हीलर मॉडल क्या है ? विस्तार से समझाइए।	119

इकाई III

6. पाठ्यक्रम प्रकल्प

लघु एवं दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1.	पाठ्यक्रम प्रकल्प से क्या आशय है ? इसके प्रकार बताइए।	126
2.	पाठ्यक्रम में अन्तर्वस्तु चयन करने का मूल आधार क्या है ? वर्णन कीजिए।	127
3.	पाठ्यक्रम के श्रेणीकरण पर निबंध लिखिए।	129
4.	पाठ्यक्रम कार्यान्वयन की प्रक्रिया को समझाइए तथा पाठ्यक्रम विकास एवं कार्यान्वयन की नवीन प्रवृत्तियों का विस्तृत वर्णन कीजिए।	130

5.	पाठ्यक्रम समृद्धशीलता से आपका क्या तात्पर्य है ? इसकी क्या विशेषताएँ होनी चाहिए ?	131
6.	पाठ्यक्रम निर्माण, पाठ्यक्रम विकास एवं पाठ्यक्रम संरचना में अंतर लिखिए।	133
7.	पाठ्यक्रम विकास में उद्देश्यों के निर्धारण की आवश्यकता, उपयोगिता तथा शैक्षिक उद्देश्यों का विस्तृत वर्णन कीजिए।	134
8.	पाठ्यक्रम विकास में अध्यापक की भूमिका स्पष्ट कीजिए।	140
	इकाई IV	
	7. पाठ्यक्रम का मूल्यांकन	
	लघु एवं दीर्घ उत्तरीय प्रश्न	
1.	मूल्यांकन को परिभाषित करते हुए उसके अभिप्रायों का उल्लेख कींजिए।	141
2.	मापन, आकलन एवं मूल्यांकन में अन्तर स्पष्ट कीजिए।	142
3.	मूल्यांकन के प्रकार बताइये। इसका विस्तृत रूप से वर्णन कीजिए।	143
4.	मानक संदर्भित परीक्षण एवं निकष संदर्भित परीक्षण की व्याख्या कीजिए एवं उनमें अंतर स्पष्ट कीजिए।	145
5.	पाठ्यक्रम की मूल्यांकन प्रक्रिया का विस्तार से उल्लेख कीजिए।	147
6.	पाठ्यक्रम मूल्यांकन की आवश्यकता से आप क्या समझते हैं ?	149
7.	शिक्षक या अध्यापक शिक्षा का अर्थ, परिभाषा, उद्देश्य, आधारभूत अवधारणाएँ, क्षेत्र, आवश्यकता एवं महत्व लिखिए।	151
8.	वर्तमान अध्यापक शिक्षा की चुनौतियाँ या समस्याएँ लिखिए।	155
9.	राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् की पाठ्यचर्या निर्माण में भूमिका को स्पष्ट कीजिए।	158

अध्याय 1

पाठ्यक्रम, पाठ्यचर्या एवं पाठ्य–पुस्तकें

लघु एवं दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. पाठ्यक्रम से आप क्या समझते हैं ? इसकी विशेषताएँ समझाइये।

(जबलपुर 2022)

***अथवा*, पाठ्यक्रम की परिभाषा के आधार पर इसकी विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।**

(छिंदवाड़ा 2021; जबलपुर 21; ग्वालियर 21)

***अथवा*, पाठ्यक्रम किसे कहते हैं ? विभिन्न परिभाषाओं से समझाइये।**

(छतरपुर 2021; उज्जैन 21; छिंदवाड़ा 22)

***अथवा*, एक आदर्श पाठ्यचर्या की विशेषताएँ लिखिए।** **(इंदौर 2022, 23)**

***अथवा*, पाठ्यचर्या की अवधारणा का वर्णन कीजिए।** **(भोपाल 2022)**

***अथवा*, पाठ्यक्रम की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।** **(उज्जैन 2022)**

***अथवा*, अच्छे पाठ्यक्रम के गुण लिखिए।** **(छतरपुर 2022)**

उत्तर–पाठ्यक्रम का शाब्दिक अर्थ–पाठ्यक्रम के लिये अंग्रेजी भाषा में 'करीक्यूलम' (Curriculum) शब्द का प्रयोग किया जाता है। Curriculum शब्द लैटिन भाषा के शब्द 'क्यूरर' (Currur) से लिया गया है, जिसका अर्थ है–'दौड़ का मैदान' (Race cource)। शिक्षा के अंतर्गत इसका अर्थ है–छात्रों का कार्यक्षेत्र। एक पाठ्यक्रम शिक्षण, अभ्यास, जीवन के अनुभवों और छात्रों के प्रदर्शन के मूल्यांकन का संयोजन है, जो शिक्षा के विशेष लक्ष्य सीखने के परिणामों को बाहर लाने और मूल्यांकन करने के लिए डिजाइन किया गया है। पाठ्यक्रम की संकल्पना को दो प्रकार से समझा जा सकता है–

1. पारंपरिक अवधारणा/संकल्पना एवं 2. आधुनिक अवधारणा/संकल्पना।

1. पारंपरिक अवधारणा/संकल्पना– यह विषय केन्द्रित अवधारणा है। पारंपरिक अवधारणा केवल विषय पर केंद्रित है, शिक्षार्थी के सर्वांगीण विकास पर नहीं। इस संकल्पना में शिक्षक द्वारा 'चॉक' और 'डस्टर' अवधारणा का पालन किया जाता है। यह शिक्षार्थी के संज्ञानात्मक विकास पर और रट्टा या केवल याद रखने पर ध्यान केंद्रित करता है।

2. आधुनिक अवधारणा/संकल्पना–पाठ्यक्रम की आधुनिक अवधारणा दो गतिशील प्रक्रियाओं का संयोजन है–

पाठ्यक्रम = विषय–वस्तु + गतिविधि
(Curriculum) (Content) (Activity)

पाठ्यक्रम की यह अवधारणा शिक्षार्थी के सर्वांगीण विकास पर केंद्रित है। यह सीखने वाले के व्यक्तित्व के सभी तीन डोमेन/पक्ष (संज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक) पर केंद्रित है। यह अवधारणा गतिविधि आधारित सीखने और करके सीखने पर जोर देती है।

पाठ्यक्रम की परिभाषाएँ (Definitions)–पाठ्यक्रम की अनेक परिभाषाएँ प्रस्तावित की गई हैं, जिनमें से कुछ मुख्य परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं–

1. कनिंघम के अनुसार– "कलाकार (शिक्षक) के हाथ में यह (पाठ्यक्रम) एक साधन है, जिससे वह पदार्थ (शिक्षार्थी) को अपने आदर्श उद्देश्य के अनुसार अपने स्टूडियो (स्कूल) में ढाल सके।"

2. फ्रोबेल के अनुसार– "पाठ्यक्रम को मानव जाति के सम्पूर्ण ज्ञान तथा अनुभवों का सार समझना चाहिए।"

3. मुनरो के अनुसार– "पाठ्यक्रम में वे सब क्रियाएँ सम्मिलित हैं, जिनका हम शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु विद्यालय में उपयोग करते हैं।"

4. क्रो एवं क्रो के अनुसार–"पाठ्यक्रम में सीखने वाले या बालक के वे सभी अनुभव निहित हैं, जिन्हें वह विद्यालय या उसके बाहर प्राप्त करता है। ये समस्त अनुभव एक कार्यक्रम में निहित किए जाते हैं, जो उनके मानसिक, शारीरिक, संवेगात्मक, सामाजिक, आध्यात्मिक एवं नैतिक रूप से विकसित होने में सहायता देता है।"

5. माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) के अनुसार– "पाठ्यक्रम का अर्थ रूढ़िवादी ढंग से पढ़ाये जाने वाले बौद्धिक विषयों से नहीं हैं, परंतु उसके अंदर वे सभी क्रिया आ जाती है जो बालकों को कक्षा के बाहर या अंदर प्राप्त होते हैं।"

पाठ्यक्रम की विशेषताएँ–उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर पाठ्यक्रम की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं–

1. यह शिक्षण और सीखने से अधिक महत्वपूर्ण है। 2. इसमें शिक्षा का उद्देश्य, सामग्री, शिक्षण का तरीका और उद्देश्य शामिल हैं। 3. इसमें अनुभवों की समग्रता शामिल है। 4. इसमें सामाजिक, शारीरिक और मनोवैज्ञानिक वातावरण शामिल है। 5. यह शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने का एक माध्यम है। 6. यह समाज की जरूरतों के अनुसार तैयार और पुनः तैयार किया जाता है। 7. यह छात्रों के व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाता है।

प्रश्न 2. पाठ्यक्रम के महत्व को स्पष्ट कीजिए। **(छतरपुर 2022)**

उत्तर– पाठ्यक्रम का महत्व– वे पाठ्यक्रम जो शिक्षा और छात्रों के बीच बातचीत को संभव बनाता है। निम्नलिखित बिन्दु द्वारा शिक्षा प्रणाली में पाठ्यक्रम के महत्व को प्रदर्शित करेंगे–

1. यह एक बच्चे के सर्वांगीण विकास में मदद करता है। 2. यह शिक्षण की उपयुक्त विधि का चयन करने में मदद करता है। 3. यह छात्रों की शैक्षिक, व्यावसायिक और मनोवैज्ञानिक जरूरतों को पूरा करने में मदद करता है। 4. यह बच्चे को खुद को साबित करने के विभिन्न अवसर प्रदान करने में मदद करता है। 5. यह शिक्षा के लक्ष्य और उद्देश्यों को प्राप्त करने में मदद करता है। 6. यह शिक्षकों और छात्रों को शिक्षण और सीखने दोनों के लिए सीमा प्रदान करने में मदद करता है। 7. यह बच्चे में आत्मविश्वास विकसित करने में मदद करता है। 8. यह बच्चे की सोच, समझ, तर्क को विकसित करने में मदद करता है ताकि वह अपने अधिकतम मानसिक विकास को प्राप्त कर सके। 9. यह स्कूल में शैक्षिक और अनुदेशात्मक उद्देश्यों को प्राप्त करने में मदद करता है। 10. यह पूरे देश में शैक्षिक प्रणाली में एकरूपता लाने में मदद करता है।

प्रश्न 3. पाठ्यक्रम के उद्देश्य लिखिए। **(छतरपुर 2018, 21)**

उत्तर–पाठ्यक्रम के उद्देश्य–पाठ्यचर्या का शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि समस्त सार्थक कार्यों के लिए कुछ महत्वपूर्ण उद्देश्य विद्यमान रहते हैं। इसलिए पाठ्यचर्या के उद्देश्यों का निर्धारण भी निम्न बिन्दुओं के आधार पर किया जाता है–

1. बालकों का सर्वांगीण विकास। 2. नैतिक चरित्र का निर्माण। 3. मानसिक शक्तियों का विकास। 4. संस्कृति एवं सभ्यता का हस्तांतरण। 5. सृजनात्मक शक्तियों का विकास। 6. शिक्षण स्वरूप का निर्धारण।

उपरोक्त समस्त बिन्दुओं के तहत पाठ्यचर्या का मुख्य उद्देश्य अधिगम को संचालित करने से है अर्थात् शिक्षा से हैं, क्योंकि उपरोक्त समस्त बिन्दुओं का विकास शिक्षा के माध्यम से ही किया

जा सकता है। शिक्षा प्रक्रिया के तीन प्रमुख घटक–(i) शिक्षक, (ii) शिक्षार्थी एवं (iii) पाठ्यचर्या होते हैं। अधिगम प्रक्रिया में तीनों घटकों का विशेष महत्व होता है। अतः पाठ्यचर्या शिक्षा प्रक्रिया में साधन, शिक्षक साध्य एवं शिक्षार्थी साधक का कार्य करते हैं। इस प्रकार, पाठ्यचर्या के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. पाठ्यचर्या शिक्षार्थी के सम्पूर्ण विकास हेतु साधन प्रदान करती है जिसकी सहायता से शिक्षण क्रिया को सम्पादित करना है।

2. पाठ्यचर्या से शिक्षार्थी में मित्रता, सहयोग, सहनशीलता, निष्कपटता, अनुशासन आदि गुणों का विकास कर नैतिक चरित्र का निर्माण करना है।

3. पाठ्यचर्या से शिक्षार्थी की चिन्तन, मनन, तर्क, विवेक एवं निर्णय आदि सभी मानसिक शक्तियों का विकास करना है।

4. पाठ्यचर्या से मानव जाति के अनुभवों को सम्मिलित रूप से स्पष्ट कर संस्कृति एवं सभ्यता का हस्तांतरण एवं विकास करना है।

5. पाठ्यचर्या द्वारा शिक्षार्थी के विकास से संबंधित विभिन्न अवस्थाओं यथा आवश्यकताओं, मनोवृत्तियों, क्षमताओं एवं योग्यताओं के अनुसार सृजनात्मक एवं रचनात्मक शक्तियों का विकास करना है।

6. पाठ्यचर्या द्वारा शिक्षण क्रियाओं तथा शिक्षक व शिक्षार्थी के मध्य अंतः प्रक्रिया के स्वरूप का निर्धारण करना है।

7. पाठ्यचर्या द्वारा ज्ञान तथा खोज की सीमाओं को बढ़ाकर अन्वेषकों का सृजन करना है।

8. पाठ्यचर्या के द्वारा विषयों और क्रियाओं के मध्य संबंध बनाकर शिक्षार्थी को उसके वर्तमान एवं भविष्य के जीवन के लिए उपयोगी बनाना है।

प्रश्न 4. पाठ्यक्रम की प्रकृति का वर्णन कीजिए। **(छिंदवाड़ा 2021; जबलपुर 21; उज्जैन 21; भोपाल 22)**

***अथवा*, पाठ्यचर्या की प्रकृति की विवेचना कीजिए।** **(भोपाल 2022)**

***अथवा*, पाठ्यक्रम का अर्थ एवं प्रकृति की विवेचना कीजिए।** **(ग्वालियर 2022)**

उत्तर–पाठ्यक्रम का अर्थ–प्रश्न क्रमांक 1 देखिए।

पाठ्यक्रम की प्रकृति–पाठ्यक्रम की प्रकृति को शैक्षिक विकास द्वारा समझा जा सकता है। प्राचीनकाल में शिक्षा की प्रकृति पूर्णतः अनौपचारिक थी। उस समय बालकों की शिक्षा परिवार एवं समाज के मध्य होती थी। बालक परिवार एवं समाज के साथ सहयोगी बनकर प्रत्यक्ष अनुभव व निरीक्षण द्वारा शिक्षा प्राप्त करता था, किन्तु सभ्यता के विकास के साथ–साथ मानव के ज्ञान में वृद्धि होती गई और मानव जीवन में विविधताएँ परिलक्षित होती गयीं। जिसके कारण मानव के पास समय एवं साधन का अभाव होने लगा तथा उसको शिक्षा की आवश्यकता उत्पन्न हुई और प्रत्येक विकासशील समाज ने अपने बालकों की शिक्षा के उद्देश्य से इसे विधिवत् एवं क्रमबद्ध बनाने के प्रयास प्रारंभ किये। इन्हीं प्रयासों के फलस्वरूप विद्यालयों का उद्भव एवं स्थापना हुई। इस प्रकार, समाज द्वारा जो उपयोगी एवं महत्वपूर्ण ज्ञान अपने बच्चों को समुचित ढंग से नहीं दिया जा रहा था उसकी जिम्मेदारी अनुभवी विद्वानों को दे दी गयी। इन विद्यालयों में शिक्षा प्रदान करने हेतु जो ज्ञान निश्चित एवं निर्धारित किया गया था उसे पाठ्यचर्या कहा गया।

आधुनिक समय में पाठ्यचर्या की प्रकृति में अत्यधिक परिवर्तन हो गये हैं। जहाँ प्राचीन समय में पाठ्यचर्या का अर्थ पाठ्यवस्तु के रूप में लगाया जाता था, वहीं वर्तमान में पाठ्यचर्या की परिभाषा बहुत व्यापक हो गयी है वर्तमान में पाठ्यचर्या के अंतर्गत वे सभी क्रियाएँ सम्मिलित हैं जिन्हें अतिरिक्त पाठ्यक्रम क्रियाओं के नाम से जाना जाता है।

सभी विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाओं के आधार पर पाठ्यचर्या की प्रकृति को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है–

1. पाठ्यचर्या की प्रकृति में शिक्षार्थी की ज्ञान वृद्धि हेतु नियोजित सभी परिस्थितियाँ तथा उन्हें उचित क्रमबद्ध करने वाले सैद्धान्तिक आधार सम्मिलित होते हैं।

2. पाठ्यचर्या में शिक्षार्थी के वे सभी अनुभव जिन्हें वह कक्षा, प्रयोगशाला, खेल का मैदान, पुस्तकालय, पाठ्येत्तर क्रियाओं द्वारा प्राप्त करता है, समाहित होते हैं।

3. पाठ्यचर्या की प्रकृति सैद्धान्तिक विषयों के साथ–साथ अनुभवों की संपूर्णता भी समाहित होती है जिनको शिक्षार्थी विभिन्न औपचारिक साधनों से प्राप्त करता है।

4. पाठ्यचर्या की प्रकृति में वे सभी अनुभव समाहित होते हैं जो विद्यालय में शिक्षा के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं।

प्रश्न 5. पाठ्यक्रम को प्रभावित करने वाले घटक कौन–कौन से हैं ?

(छतरपुर 2015, 22; जबलपुर 18; इंदौर 22; ग्वालियर 22)

उत्तर–पाठ्यक्रम को प्रभावित करने वाले कारक/घटक–पाठ्यक्रम का सम्पादन शैक्षिक तथा सामाजिक परिस्थितियों में किया जाता है। इसलिए शैक्षिक तथा सामाजिक घटक पाठ्यक्रम को प्रभावित करते हैं। ये घटक निम्नलिखित प्रकार के हैं–

1. शिक्षा व्यवस्था–शिक्षा के इतिहास से यह विदित होता है कि अतीत काल से ही शिक्षा व्यवस्था और पाठ्यक्रम का गहन संबंध रहा है और एक–दूसरे को प्रभावित करते रहे हैं। पाठ्यक्रम प्रायः लचीला तथा परिवर्तनशील रहा है। छोटे बालकों का पाठ्यक्रम अनुभव केन्द्रित रहा है। माध्यमिक स्तर पर विषय केन्द्रित रहा है। शिक्षा व्यवस्था के बदलने के साथ ही पाठ्यक्रम का प्रारूप भी बदल जाता है।

2. परीक्षा प्रणाली–परीक्षा प्रणाली पाठ्यक्रम को प्रभावित करती है। निबन्धात्मक परीक्षा के पाठ्यक्रम का स्वरूप वस्तुनिष्ठ परीक्षा से बिल्कुल ही भिन्न प्रकार का होता है। वस्तुनिष्ठ परीक्षा में पाठ्यक्रम से सूक्ष्म पाठ्य–वस्तु पर ही प्रश्न पूछे जाते हैं, जबकि निबंधात्मक परीक्षा में पाठ्य–वस्तु के व्यापक स्वरूप पर प्रश्न पूछे जाते हैं। निबंधात्मक परीक्षा से उच्च उद्देश्यों का मापन किया जाता है, जबकि वस्तुनिष्ठ से निम्न उद्देश्यों का ही आंकलन किया जाता है।

3. शासन पद्धति–शिक्षा द्वारा राष्ट्र तथा समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है। शासन प्रणाली बदलने से पाठ्यक्रम प्रारूप को बदलना होता है। केन्द्र तथा राज्य स्तर पर सत्ता बदलते ही पाठ्यक्रम के प्रारूप पर प्रभाव पड़ता है। पाठ्यक्रम के विशिष्ट प्रारूप को केन्द्रीय सरकार प्रभावित करती है इसलिए शिक्षा का कोई राष्ट्रीय प्रारूप नहीं है। सभी प्रदेशों के पाठ्यक्रम के प्रारूप विभिन्न स्तरों पर अलग–अलग है।

4. अध्ययन समिति–पाठ्यक्रम के प्रारूप का निर्माण अध्ययन समितियों द्वारा किया जाता है। विभिन्न स्तरों पर अध्ययन समितियों के द्वारा पाठ्यक्रम का निर्माण तथा सुधार किया जाता है। अध्ययन समिति के सदस्यों की समझ, बूझ तथा अनुभवों द्वारा ही पाठ्यक्रम के प्रारूप को विकसित करते हैं। इसलिए इन सदस्यों की अभिरुचियों, अभिवृत्तियों तथा मानसिक क्षमताओं का सीधा प्रभाव पड़ता है। साधारणतः अध्ययन समिति के अध्यक्ष ही पाठ्यक्रम का प्रारूप बनाते हैं और उसे बदलते हैं। अन्य सदस्य मात्र अनुमोदन ही करते हैं।

5. राष्ट्रीय आयोग तथा समितियाँ–शिक्षा सुधार और विकास हेतु राष्ट्रीय स्तर पर आयोग तथा समितियाँ गठित की जाती हैं। भारत में स्वतंत्रता के बाद से अनेक आयोग तथा समितियाँ गठित की गईं। उन्होंने विश्वविद्यालय, माध्यमिक तथा प्राथमिक स्तर पर सुधार के लिए सुझाव दिए और

उन सुझावों को लागू करने का प्रयास किया गया, जिससे पाठ्यक्रम के प्रारूप को भी बदलना पड़ा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में व्यावसायिक शिक्षा को अधिक महत्व दिया गया है इसलिए माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक पाठ्यक्रमों का प्रारूप विकसित किया गया है। शिक्षा के आयोगों तथा समितियों के सुझावों के आधार पर ही पाठ्यक्रम का प्रारूप प्रभावित होता है।

6. सामाजिक परिवर्तन—सामाजिक परिवर्तन में आर्थिक तथा भौतिक परिवर्तन की गति अधिक तीव्र है, इसलिए ये दोनों परिवर्तन भी पाठ्यक्रम को प्रभावित करते हैं। विज्ञान तथा तकनीकी ने सामाजिक जीवन को अधिक प्रभावित किया है। इसलिए व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के साथ तकनीकी के प्रशिक्षण (कम्प्यूटर) आदि, से संबंधित नए पाठ्यक्रम विकसित किए जा रहे हैं। शिक्षा के अंतर्गत दूरवर्ती शिक्षा (Distance education) प्रणाली का विकास हुआ है, जिसमें माध्यमों तथा संप्रेषण विधियों को विशेष महत्व दिया जा रहा है।

सामाजिक एवं पारिवारिक परम्पराएँ तथा अतीत के मूल्य एवं मान्यताएँ भी पाठ्यक्रम के प्रारूप को प्रभावित करती हैं।

पाठ्यक्रम का प्रारूप भावी जीवन की तैयारी की दृष्टि से विकसित किया जाता है। छात्र, परिवार, विद्यालय व्यवस्था, सामाजिक परिवर्तन तथा आवश्यकताओं पाठ्यक्रम के प्रारूप को विकसित करने में सहायक होते हैं, परंतु अतीत कालीन परम्पराओं और भावी जीवन में समन्वय स्थापित करना पड़ता है। छात्र की सामान्य तथा विशिष्ट आवश्यकताओं को ध्यान में रखना होता है।

प्रश्न 6. पाठ्यक्रम के प्रमुख प्रकार कौन–कौन से हैं ? प्रत्येक का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
(छतरपुर 2015, 16, 22; ग्वालियर 21, 22; छिंदवाड़ा 21; जबलपुर 21; रीवा 22; भोपाल 22)

***अथवा*, विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम से आप क्या समझते हैं ? (उज्जैन 2022; छिंदवाड़ा 22)**

***अथवा*, पाठ्यक्रम के प्रकारों के नाम लिखिए एवं एकीकृत पाठ्यक्रम का वर्णन कीजिए।**
(उज्जैन 2022)

***अथवा*, विषय केन्द्रित और कार्य केन्द्रित पाठ्यचर्यों को समझाइए। (जबलपुर 2022)**

उत्तर—पाठ्यक्रम के संगठन के विषय में अलग–अलग दृष्टिकोण होते हैं। इसी आधार पर पाठ्यक्रम भी अनेक प्रकार के होते हैं जो निम्नलिखित हैं—

1. विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम, 2. बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम, 3. कार्य/क्रिया केन्द्रित पाठ्यक्रम, 4. अनुभव केन्द्रित पाठ्यक्रम, 5. कोर पाठ्यक्रम एवं 6. एकीकृत पाठ्यक्रम।

1. विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम (Subject centred curriculum) — विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम उस पाठ्यक्रम को कहते हैं जिसमें विषय को आधार मानकर पाठ्यक्रम को नियोजित किया जाता है। अर्थात् इसमें बालकों की अपेक्षा विषयों को अधिक महत्व दिया जाता है। इस पाठ्यक्रम में विषयों के ज्ञान को पृथक्–पृथक् रूप देने की व्यवस्था होती है। इसमें सभी विषयों के अंतर्गत आने वाले ज्ञान को अलग–अलग निश्चित कर दिया जाता है और उसी के अनुसार, विभिन्न विषयों पर पुस्तकें लिखी जाती हैं जिनसे बालकों को ज्ञान प्राप्त होता है। चूँकि इस प्रकार के पाठ्यक्रम में पुस्तकों पर बल दिया जाता है। अतः इसे **'पुस्तक केन्द्रित पाठ्यक्रम'** भी कहा जाता है।

2. बाल केंद्रित पाठ्यक्रम (Child centred curriculum) **(ग्वालियर 2022)** — बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम का अभिप्राय उस पाठ्यक्रम से है जिसका संगठन बालक की प्रवृत्ति, रुचि, रुझान आवश्यकता आदि को ध्यान में रखकर किया जाता है अर्थात् इस पाठ्यक्रम में विषयों की अपेक्षा बालकों को मुख्य स्थान दिया जाता है। इस पाठ्यक्रम को मनोवैज्ञानिक पाठ्यक्रम भी कह सकते हैं, क्योंकि यह बालक की मनोवैज्ञानिक विशेषताओं पर आधारित होता है। इस पाठ्यक्रम में जो भी विषय

रखे जाते हैं वे बालकों के विकास के स्तर, उनकी रुचियों, रुझानों एवं आवश्यकताओं के अनुकूल होते हैं। वर्तमान समय की सभी शिक्षण विधियों में बाल–केन्द्रित पाठ्यक्रम पर ही जोर दिया जाता है। यह प्रयोगवादी विचारधारा पर आधारित है।

3. कार्य/क्रिया केन्द्रित पाठ्यक्रम (Work /Activity centred curriculum) — कार्य/क्रिया केन्द्रित पाठ्यक्रम अनेक प्रकार के कार्यों पर आधारित होता है अर्थात् इसके अंतर्गत् विभिन्न कार्यों को विशेष स्थान दिया जाता है। बालक को सामाजिक मूल्य के अनेक ऐसे कार्य करने होते हैं जो उनके सर्वांगीण विकास में सहायक होते हैं। अत: कार्य–केन्द्रित पाठ्यक्रम का अभिप्राय: उस पाठ्यक्रम से है जिसमें विभिन्न कार्यों द्वारा छात्रों को शिक्षा देने की योग्यता होती है। इन कार्यों व क्रियाओं का आयोजन छात्रों की रुचि व आवश्यकताओं के अनुसार किया जाता है। कार्यों का चयन शिक्षक एवं शिक्षार्थियों के सहयोग से किया जाता है।

जॉन डीवी का मत है कि कार्यकेन्द्रित पाठ्यक्रम द्वारा बालक समाज उपयोगी कार्यों के करने में रुचि लेने लगेगा जिससे उसके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास होना निश्चित है।

4. अनुभव केन्द्रित पाठ्यक्रम (Experience centred curriculum) — अनुभव केन्द्रित पाठ्यक्रम का अभिप्राय उस पाठ्यक्रम से है जिसमें मानव जाति के अनुभव सम्मिलित किए जाते हैं। दूसरे शब्दों में, अनुभव केन्द्रित पाठ्यक्रम विषयों की अपेक्षा अनुभव पर आधारित होता है। इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य बालकों को प्रेरणा प्रदान करना है ताकि वे अपने जीवन को उपयोगी बना सकें। यह भौतिक तथा सामाजिक वातावरण का अधिक–से–अधिक प्रयोग करता है, क्योंकि इसमें बालकों को स्वाभाविक ढंग से 'अनुभव' प्राप्त करने को मिलते हैं। यही कारण है कि यह पूर्णतया मनोविज्ञान पर आधारित होता है अर्थात् इसका संबंध छात्रों की रुचियों, आवश्यकताओं तथा योग्यताओं से होता है।

5. कोर पाठ्यक्रम (Core curriculum) — कोर पाठ्यक्रम उस पाठ्यक्रम को कहते हैं जिसमें कुछ तो अनिवार्य विषय होते हैं तथा कुछ विषय ऐच्छिक होते हैं। अनिवार्य विषयों का अध्ययन करना प्रत्येक बालक के लिए अनिवार्य होता है तथा व्यक्तिगत ऐच्छिक विषयों को व्यक्तिगत रुचि तथा क्षमता के अनुसार चुना जा सकता है। यह पाठ्यक्रम अमेरिका की देन है, जिसके अंतर्गत् प्रत्येक बालक को व्यक्तिगत तथा सामाजिक दोनों प्रकार की समस्याओं के संबंध में ऐसे अनुभव दिए जाते हैं जिनके द्वारा वह अपने भावी जीवन में आने वाली प्रत्येक समस्या को सरलतापूर्वक सुलझाने हेतु कुशल एवं समाजोपयोगी एवं उत्तम नागरिक बन सकता है। कोर पाठ्यक्रम की आवश्यकता सभी विद्यार्थियों को होती है, लेकिन प्रारंभिक स्तर पर विद्यालय में कोर पाठ्यक्रम की अति आवश्यकता है माध्यमिक स्तर पर विद्यालय के आधे समय में कोर पाठ्यक्रम के कार्यक्रम होते हैं व उच्च शिक्षा स्तर पर इसकी मात्रा और घट जाती है।

6. एकीकृत पाठ्यक्रम (Integrated curriculum) — एकीकृत पाठ्यक्रम से तात्पर्य उस पाठ्यक्रम से है जिसमें उसके विभिन्न विषय एक–दूसरे से इस प्रकार संबंधित होते हैं कि उनके बीच कोई अवरोध नहीं होता बल्कि उनमें एकता होती है। इस प्रकार पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयों के ज्ञान को विभिन्न खण्डों में प्रस्तुत न करके सब विषय मिलाकर ज्ञान को एक इकाई के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

प्रश्न 7. विषय–केन्द्रित पाठ्यक्रम किसे कहते हैं ? इसके गुण एवं सीमाओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर–विषय–केन्द्रित पाठ्यक्रम–प्रश्न क्र. 6 का उत्तर देखिए।

विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम के गुण–इसके प्रमुख गुण निम्न हैं–

1. यह परम्परागत ज्ञान को आगे बढ़ाने का सुविधाजनक एवं सबसे अच्छा साधन है।

2. इससे विद्यार्थी को ज्ञान प्राप्त करने के साथ–साथ उसे सुदृढ़ करने तथा जीवन की विभिन्न स्थितियों में प्रभावी रूप से प्रयुक्त कर सकने में सुविधा होती है।

3. इस प्रकार के संगठन से पाठ्यक्रम से संबंधित सभी पक्ष (शिक्षक, छात्र, विषय विशेषज्ञ, अभिभावक, सामान्य नागरिक, सामाजिक एवं राजनैतिक कार्यकर्ता आदि) भली–भाँति परिचित होते हैं। अतः वे सभी पाठ्यक्रम नियोजन, संवर्धन एवं संशोधन आदि हेतु उचित सहयोग प्रदान कर सकते हैं।

4. इसमें कार्य करने, परिवर्तन करने, संशोधन करने की पर्याप्त सुविधा तथा क्षमता होती है।

5. इसमें पाठ्यक्रम आयोजन, शिक्षण तथा मूल्यांकन में सुविधा रहती है, जबकि विषय विहीन संरचना को समझ पाना कठिन होता है।

6. इस प्रकार के पाठ्यक्रम को शिक्षक एवं छात्र दोनों पसंद करते हैं।

7. इसमें नवीन ज्ञान की खोज करने तथा तथ्यों को उपयोगी क्रम में व्यवस्थित करने में भी सुविधा होती है।

8. इस पाठ्यक्रम में अध्ययन–अध्यापन में सुनिश्चितता होती है।

विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम की सीमायें– इस पाठ्यक्रम की प्रमुख कमियाँ/दोष निम्नलिखित हैं–

1. यह अपेक्षित व्यवहारगत् उद्देश्यों को सीमित कर देता है।

2. इसमें ज्ञान के छोटे–छोटे टुकड़ों में बँट जाने से उसका समुचित उपयोग कर पाना कठिन होता है।

3. इसमें अधिगम अनुभवों का विस्तार क्षेत्र सीमित हो जाता है।

4. यह छात्रों को विशेष रूप से अपरिपक्व तथा मंदगति से सीखने वालों को सार्थक एवं महत्वपूर्ण अधिगम अनुभव उपलब्ध नहीं करा पाता है।

5. इसमें विद्यार्थियों से अध्ययन–विषयों के प्रति बहुत अधिक निष्ठावान होने की अपेक्षा की जाती है।

6. इससे अधिगम का स्थानान्तरण सरलता से तथा प्रभावी रूप से संभव नहीं हो पाता है।

7. इसमें प्रत्येक विषय के लिए समय–सीमा का निर्धारित होना अधिगम में बाधक होता है।

8. इसमें किसी नवीन अन्तर्वस्तु को समाविष्ट करना कठिन होता है।

9. इस प्रकार के पाठ्यक्रम में अमूर्तीकरण एवं तार्किक विवेचन पर अधिक बल दिया जाता है जो अनुकूलन में बाधक भी सिद्ध होते हैं।

10. इसमें लचीला एवं कल्पनापूर्ण शिक्षण असंभव नहीं तो कठिन अवश्य होता है।

11. चूँकि प्राथमिक शिक्षक, सामान्य शिक्षकों के रूप में तैयार किये जाते हैं, विषय–विशेषज्ञों के रूप में नहीं। अतः प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में इस उपागम में विशेष कठिनाई होती है।

12. मानव ज्ञान के बढ़ते हुए विशाल भण्डार के परिणामस्वरूप विषय आधारित पाठ्यक्रमों का संगठन बहुत जटिल होता जा रहा है।

प्रश्न 8. बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम की अवधारणा स्पष्ट कीजिए एवं इसकी विशेषताएँ लिखिये।
(छिंदवाड़ा 2021; ग्वालियर 21, 22)

***अथवा*, विषय केन्द्रित पाठ्यचर्या तथा विद्यार्थी केन्द्रित पाठ्यचर्या में अंतर लिखिए।**
(इंदौर 2022)

उत्तर–विषय केन्द्रित पाठ्यचर्या–प्रश्न क्र. 6 का उत्तर देखिए।

बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम–प्रश्न क्र. 6 का उत्तर देखिए।

बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम की प्रमुख विशेषतायें – इस पाठ्यक्रम की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं–

1. इस पाठ्यक्रम में बालकों की परिवर्तित आवश्यकताओं, रुचियों, अभिरुचियों, संवेगों आदि को आधार बनाया जाता है।

2. यह पाठ्यक्रम क्रियात्मक (Functional) होता है।

3. यह शिक्षार्थियों को सभिप्रायुक्त (Purposeful) अनुभव प्रदान करता है।

4. यह बालकों पर सीखने का उत्तरदायित्व डालता है।

5. मनोविज्ञान इस बात पर बल देता है कि यदि बालक की रुचियों एवं आवश्यकताओं पर ध्यान नहीं दिया जायेगा तो उसका समुचित विकास नहीं हो सकेगा। अतः यह पाठ्यक्रम मनोवैज्ञानिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

6. आधुनिक शिक्षण पद्धतियों; जैसे–मॉण्टेसरी पद्धति, किण्डरगार्टन पद्धति आदि का आधार बाल–केन्द्रित पाठ्यक्रम ही है।

7. यह पाठ्यक्रम प्रयोगवादी विचारधारा पर आधारित है।

प्रश्न 9. कार्य/क्रिया केंद्रित पाठ्यक्रम का विस्तार से वर्णन कीजिए।

उत्तर–कार्य/क्रिया केंद्रित पाठ्यक्रम–प्रश्न क्र. 6 का उत्तर देखिए।

कार्य/क्रिया केंद्रित पाठ्यक्रम के गुण–इस पाठ्यक्रम के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं–

1. इस योजना के अंतर्गत विकसित अधिगम अनुभवों की इकाइयाँ बालकों के लिए महत्वपूर्ण एवं सार्थक होती हैं।

2. इसमें अंतर्वस्तु का चयन वर्तमान उपयोगिता एवं महत्व को ध्यान में रखते हुए किया जाता है।

3. इसमें शिक्षा के अधिक व्यापक क्षेत्रों को समाहित करना संभव होता है, क्योंकि अधिगम अनुभवों में पर्याप्त विविधता होती है।

4. इसमें जीवन की नवीन स्थितियों में अधिगम के उपयोग की पर्याप्त संभावनायें रहती हैं।

5. इस पाठ्यक्रम में अधिगम अनुभवों की विभिन्न इकाइयों का एकीकरण सुविधाजनक ढंग से किया जा सकता है।

6. बालकों की आवश्यकताओं एवं रुचियों पर आधारित होने के कारण इस प्रकार के पाठ्यक्रम को वे पसंद करते हैं।

7. मानव की प्रगति में क्रियाशीलता सर्वाधिक महत्व रखती है। इससे इस पाठ्यक्रम की उपयुक्तता स्वयं सिद्ध है।

क्रिया प्रधान पाठ्यक्रम की सीमायें–बहुत अधिक लोकप्रिय होने तथा अनेक गुणों से युक्त होने पर भी इस प्रकार के पाठ्यक्रम की कुछ सीमायें भी हैं, जो निम्नवत् हैं–

1. इस योजना को अपनाने के लिए अनुकूल सामाजिक एवं शैक्षिक स्थितियाँ प्रायः नहीं मिल पाती हैं।

2. नवीन योजना होने के कारण नवीन पाठ्य–पुस्तकों, शिक्षण संदर्शिकाओं, संदर्भ पुस्तकों, नवीन सहायक सामग्री के निर्माण, शिक्षकों के प्रशिक्षण आदि की पुनः आवश्यकता होती है।

3. इस पाठ्यक्रम के लिए छात्रों को भी तैयार करने की आवश्यकता होती है, क्योंकि वे प्रायः परम्परागत विषय आधारित पाठ्यक्रम से अनुकूलित रहते हैं।

4. नवीन तथा अपरिचित उपागम होने के कारण पाठ्यक्रम नियोजन, संशोधन एवं परिवर्धन के कार्य में अभिभावकों तथा अन्य नागरिकों की समुचित सहायता नहीं मिल पाती है। अतः प्रायः छात्रों को भी असुविधा होती है।

5. इस उपागम में अधिगम के कई महत्वपूर्ण पक्ष छूट जाते हैं।

प्रश्न 10. कोर (समन्वित सामान्य) पाठ्यक्रम की विशेषतायें एवं सीमाएँ स्पष्ट कीजिए।
(जबलपुर 2021; छिंदवाड़ा 21; उज्जैन 21)

उत्तर—कोर पाठ्यक्रम की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं—

1. यह पाठ्यक्रम सभी छात्रों की सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति करने का प्रयास करता है।
2. इसमें विषयवस्तु के पारम्परिक विभाग एवं खण्ड समाप्त कर दिये जाते हैं तथा कई विषयों को एक साथ मिलाकर पढ़ाया जाता है।
3. इसमें समय–विभाग चक्र लचीला होता है तथा कालांश बड़े होते हैं।
4. इसमें छात्रों एवं शिक्षकों के संबंध अधिक घनिष्ठ होते हैं तथा अध्ययन–अध्यापन के साथ–साथ परामर्श भी चलता है।
5. इसमें शिक्षण, समस्या केन्द्रित होता है तथा छात्रों को कार्यों एवं समस्याओं को हल करने का अनुभव प्राप्त होता है।
6. यह पाठ्यक्रम मनोवैज्ञानिक एवं बाल केन्द्रित होता है।
7. इसमें विभिन्न प्रकार के अधिगम अनुभव प्रयुक्त किये जाते हैं।
8. इसमें अधिकतर शैक्षिक कार्यक्रम छात्र और शिक्षक मिलकर आयोजित करते हैं।
9. इसके अंतर्गत व्यापक निर्देशन कार्यक्रम की व्यवस्था रहती है।
10. यह पाठ्यक्रम सबसे अधिक प्रचलित है।

कोर पाठ्यक्रम की सीमायें—गुण्डलेण्ड ने कोर पाठ्यक्रम की सीमाओं के बारे में मत प्रकट करते हुए कहा है कि दो या "दो से अधिक विषयों का सम्मिश्रण शिक्षक पर शिक्षण की आवश्यकताओं का भार बढ़ाता है तथा प्रायः सहयोगियों से सहायता की अपेक्षा करता है।" कोर पाठ्यक्रम की सीमायें निम्नवत् हैं—

1. सामग्री का चयन मुश्किल हो सकता है।
2. कोर पाठ्यक्रम के कार्यान्वयन में विशेष कठिनाई होती है।
3. यह अक्सर आवश्यक सामग्री प्रदान नहीं करता है।
4. यह पाठ्यक्रम उच्च स्तर की कक्षाओं के लिए उपयुक्त नहीं है।
5. चूँकि मुख्य पाठ्यक्रम पारंपरिक पाठ्यक्रम से एक मौलिक प्रस्थान है, लोग इस पाठ्यक्रम की आलोचना करते हैं।

प्रश्न 11. अनुभव आधारित पाठ्यक्रम के बारे में आप क्या जानते हैं ? इसका विस्तार से वर्णन कीजिए।

***अथवा*, अनुभव केन्द्रित पाठ्यचर्या की सीमाएँ लिखिए।** **(इंदौर 2022)**

उत्तर—अनुभव आधारित पाठ्यक्रम—प्रश्न क्र. 6 का उत्तर देखिए।

अनुभव आधारित पाठ्यक्रम की विशेषताएँ—अनुभव आधारित पाठ्यक्रम की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. इसमें जीवन की नवीन स्थितियों में अधिगम के उपयोग की पर्याप्त संभावनाएँ रहती हैं।
2. बालकों की आवश्यकताओं एवं रुचियों पर आधारित होने के कारण इस प्रकार के पाठ्यक्रम को वे पसंद करते हैं।
3. इसके अंतर्गत विकसित अधिगम–अनुभवों की इकाइयाँ बालकों के लिए महत्वपूर्ण एवं सार्थक होती हैं।
4. मानव की प्रगति में क्रियाशीलता सर्वाधिक महत्व रखती है। इससे इस पाठ्यक्रम की उपयुक्तता स्वयं सिद्ध है।
5. इसमें अंतर्वस्तु का चयन वर्तमान उपयोगिता एवं महत्व को ध्यान में रखते हुए किया जाता है।

6. इसमें शिक्षा के अधिक व्यापक क्षेत्रों को समाहित करना संभव होता है, क्योंकि अधिगम अनुभवों में पर्याप्त विविधता होती है।

7. इस पाठ्यक्रम में अधिगम अनुभवों की विभिन्न इकाइयों का एकीकरण सुविधाजनक ढंग से किया जा सकता है।

सीमाएँ– बहुत अधिक लोकप्रिय होने तथा अनेक गुणों से युक्त होने पर भी इस प्रकार के पाठ्यक्रम की कुछ सीमायें भी हैं, जो निम्नवत् हैं–

1. इस योजना को अपनाने के लिए अनुकूल, सामाजिक एवं शैक्षिक स्थितियाँ प्रायः नहीं मिल पाती हैं।

2. नवीन योजना होने के कारण नवीन पाठ्य–पुस्तकों, शिक्षण संदर्शिकाओं, संदर्भ, पुस्तकों, नवीन सहायक सामग्री के निर्माण, शिक्षकों के प्रशिक्षण आदि की पुनः आवश्यकता होती है।

3. इस पाठ्यक्रम के लिए छात्रों को भी तैयार करने की आवश्यकता होती है, क्योंकि वे प्रायः परम्परागत विषय आधारित पाठ्यक्रम से अनुकूलित रहते हैं।

4. नवीन तथा अपरिचित उपागम होने के कारण पाठ्यक्रम–नियोजन, संशोधन एवं परिवर्धन के कार्य में अभिभावकों तथा अन्य नागरिकों की समुचित सहायता नहीं मिल पाती है। अतः प्रायः छात्रों को भी असुविधा होती है।

5. इस उपागम में अधिगम के कई महत्वपूर्ण पक्ष छूट जाते हैं।

क्रिया आधारित पाठ्यक्रम की उपर्युक्त कमियों को दूर करने के उद्देश्य से इस पाठ्यक्रम के कुछ संशोधित रूप जिनमें अनुभव आधारित पाठ्यक्रम, पूर्णतया मुक्त पाठ्यक्रम, आवश्यकता विकास पाठ्यक्रम आदि प्रकाश में आये हैं।

प्रश्न 12. एकीकृत पाठ्यक्रम को परिभाषित कीजिए एवं इसकी विशेषताएँ बताइए। इसके प्रयोग में किन–किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है ?

***अथवा*, पाठ्यक्रम के एकीकृत उपागम के गुण–दोषों की विवेचना कीजिए।** **(ग्वालियर 2021)**

***अथवा*, पाठ्यवस्तु की समीक्षा विस्तार से कीजिए।** **(छिंदवाड़ा 2021)**

उत्तर–एकीकृत पाठ्यक्रम की परिभाषा–हेन्डरसन के अनुसार, "एकीकृत पाठ्यक्रम वह पाठ्यक्रम है, जिसमें विषयों के बीच कोई अवरोध, रुकावट अथवा दीवार नहीं होती है।" अर्थात् इस प्रकार का पाठ्यक्रम उन अनुभवों को देता है, जिन्हें एकीकरण की प्रक्रिया के लिए सुविधाजनक समझा जाता है तथा जिससे बालक उस पाठ्यवस्तु को सीखते हैं, जो अनुभवों को समझने में एवं उनके पुनर्निर्माण में सहायक होती है। इस प्रकार का अनुभव प्रधान पाठ्यक्रम विषयों को अलग-अलग रखने तथा उनको शीर्षकों में बाँटने का अन्त करता है एवं ऐसे विषयों को स्थान देता है जो बालक की रुचि के केन्द्र होते हैं।

एकीकृत पाठ्यक्रम की विशेषताएँ–एकीकृत पाठ्यक्रम की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. इस पाठ्यक्रम के माध्यम से छात्र विभिन्न विषयों का ज्ञान एक साथ प्राप्त करते हैं।

2. इस पाठ्यक्रम की सफलता के लिए शिक्षक को पर्याप्त एवं व्यापक अध्ययन की आवश्यकता होती है।

3. इस पाठ्यक्रम में ज्ञान को समग्र रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

4. इस पाठ्यक्रम में छात्रों के पूर्व–ज्ञान से नवीन ज्ञान को संबंधित करने में आसानी होती है।

5. इस पाठ्यक्रम से बालकों को जीवनोपयोगी शिक्षा मिलती है।

6. इस पाठ्यक्रम से शिक्षकों का उत्तरदायित्व एवं कार्यभार बढ़ जाता है।

7. यह पाठ्यक्रम अनुभव–केन्द्रित होता है।

8. इस पाठ्यक्रम में छात्रों की रुचियों को महत्व दिया जाता है।

एकीकृत पाठ्यक्रम के प्रयोग में कठिनाइयाँ–एकीकृत पाठ्यक्रम के निर्माण एवं प्रयोग में निम्नलिखित कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है–

1. इसमें ज्ञान की एक निश्चित रूपरेखा नहीं बन पाती है।

2. बालकों की रुचियों को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम में एकीकरण बहुत अधिक कठिन है।

3. इस पाठ्यक्रम में सभी विषयों का एक साथ एकीकरण कर सकना असंभव होता है।

4. माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर पर विषयों का एकीकरण उचित नहीं होता है।

5. इस प्रकार के पाठ्यक्रम के शिक्षण में बहुत अधिक समय लगता है तथा शिक्षक का कार्य–भार बढ़ जाता है।

6. इस पाठ्यक्रम के प्रयोग के लिए उपयुक्त शिक्षकों का बहुत अधिक अभाव है।

7. अधिकांश शिक्षक इसके प्रयोग के लिए तैयार नहीं होते हैं तथा इससे बहुत अधिक असुविधा का अनुभव करते हैं।

8. इसके द्वारा छात्रों की विशिष्ट रुचियों का विकास कठिन होता है।

प्रश्न 13. एकीकृत और विषय प्रधान पाठ्यक्रम के बीच अंतर को समझाइए। (छतरपुर 2021)

उत्तर–प्रश्न क्रमांक 12 एवं 7 का उत्तर देखिए।

प्रश्न 14. विद्यालयीन प्रचलित पाठ्यक्रम के गुण–दोषों की व्याख्या कीजिए।

(ग्वालियर 2021)

उत्तर–वर्तमान पाठ्यक्रम की विशेषताएँ/गुण–

1. उदार शिक्षा–पुरानी निरंकुश शिक्षा के स्थान पर उदार शिक्षा का विकास हुआ है। पुरानी शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक को ही सब कुछ माना जाता था और वह दंड या पुरस्कार देने के लिए अधिकृत था। उस शिक्षण में छात्रों को कोई स्वतंत्रता नहीं थी। शिक्षा कुछ विषयों तक ही सीमित थी, परंतु अब अधिकांश लोगों ने उदार शिक्षा को अपनाया है और उचित माना है। उदारवादी शिक्षाशास्त्रियों का कहना है कि शिक्षा का अर्थ सीखने वाले के मस्तिष्क को स्वतंत्रता प्रदान करना है और बिना किसी भेदभाव के सबको शिक्षा प्रदान करना चाहिए। पुराने पाठ्यचर्या के विपरीत आधुनिक पाठ्यचर्या में प्राकृतिक एवं आधुनिक विज्ञान और आधुनिक शाखा पर जोर दिया जाता है। इस पाठ्यचर्या में रटने की जगह समझने पर जोर दिया जाता है, जिससे सीखने वाला अपनी सीखी हुई बातों को स्वयं अभिव्यक्त कर सकें। आज की पाठ्यचर्या धर्मनिरपेक्षता पर विशेष जोर देते हैं।

2. भूमण्डलीय शिक्षा–आज विश्व के सभी देश अपनी आवश्यकताओं के लिए एक–दूसरे पर निर्भर हैं। विभिन्न देशों के संबंध का आज एक जाल बन गया है। ऐसे में इन संबंधों को मजबूत बनाने के लिए भूमण्डलीय शिक्षा आवश्यक हो गई है। मानव जीवन के किसी भी पक्ष को लिया जाए तो पता चलता है कि उसकी पूर्ति बिना भूमण्डलीय सहायता के नहीं हो सकती। पेयजल, कपड़े, यातायात, कर नीति, मुद्रास्फीति, रोजगार, समाचार पत्र की विषय–वस्तु, पुस्तकों की कीमत, ईंधन आपूर्ति, आतंकवाद और शांति आदि सभी भूमण्डलीय अंतर्निर्भरता से प्रभावित है।

सामयिक विश्व की आवश्यकताओं और व्यवस्थाओं को समझने के लिए भूमण्डलीय शिक्षा उत्तरदायी है। छात्रों को अपने में जीवन में ऐसे अनेक उदाहरण मिल सकते हैं, जिनमें भूमण्डलीय शिक्षा की आवश्यकता है। ऐसे में उन्हें विश्व के बारे में विस्तार से जानना आवश्यक है। फिर स्वयं वे विश्व के ही एक अंग है। इसलिए अब ऐसे पाठ्यचर्या की आवश्यकता है जो विश्व के विषय में जानकारी प्रदान करें। छात्रों को अब विश्व में हो रहे परिवर्तनों की गति को समझने की आवश्यकता है। परिवर्तनों की तैयारी के लिए कार्ययुक्त कौशलों के विकास एवं अभ्यास की आवश्यकता है। ये

कौशल निर्णय निर्धारण, समस्या समाधान, सृजनात्मक चिंतन, भविष्य की परियोजना आदि ही कर सकते हैं जो समूह प्रक्रियाओं में सहभागिता को प्रोत्साहित करते हो।

भूमण्डलीय शिक्षा की पाठ्यचर्या अधिगमकताओं को भूमण्डलीय ज्ञान प्रदान करती है। भूमण्डलीय शिक्षा के निम्नलिखित पाँच उद्देश्य होते हैं–

(1) व्यवस्था चेतना का विकास, (2) भविष्य के प्रति चेतना, (3) दुनिया भर में स्वास्थ्य के प्रति चेतना, (4) लगन के प्रति चेतना, (5) तैयारी और प्रक्रिया के प्रति चेतना। छात्रों के लिए इन सबकी प्राप्ति आवश्यक है।

3. अंतर्विषयगत विषय–वस्तु–आधुनिक युग के अनेक पाठ्यचर्या अंतर्विषयगत से बहुत दूर है। विभिन्न सामाजिक और प्राकृतिक विज्ञानों से विभिन्न विषय; जैसे–सामाजिक अध्ययन, वातावरणीय अध्ययन, जैव–रसायन, व्यापार अध्ययन, व्यापार गणित आदि का जन्म हुआ है। पाठ्यचर्या में अंतर्विषयगत उपागम छात्रों को विभिन्न विषयों को अच्छी तरह समझने में सहायता करते हैं। ये मानव समाज की अनेक समस्याओं को प्रभावशाली ढंग से हल करने में भी सहायता देती है। प्रत्येक नवयुवक विभिन्न विषयों के सामान्य विचारों और अवधारणाओं की जानकारी प्राप्त करना चाहता है। ऐसे में अंतर्विषयगत विषय–वस्तु का महत्व बढ़ जाता है।

4. धर्मनिरपेक्षता एवं शिक्षा–आज सभी समाज के लोग विभिन्न धर्मों और विचारों में विश्वास करते हैं। एक प्रजातांत्रिक समाज धर्मनिरपेक्षता में अटूट विश्वास रखते हैं, जिसके द्वारा वे अपने विचारों और धर्मों में स्वतंत्रता महसूस करते हैं और राज्य भी इनके धर्मों में हस्तक्षेप नहीं करते हैं। किसी भी विद्यालय में विभिन्न विचारों और धर्मों के छात्र अध्ययन करते हैं। किसी विद्यालय को एक धर्म या विश्वास में ढालना खतरनाक हो सकता है और उससे संस्था की छवि खराब हो सकती है। यही कारण है कि प्रत्येक राज्य अपने औपचारिक पाठ्यचर्या के द्वारा छात्रों को धर्मनिरपेक्षता का पाठ सिखाता है। 20 वीं शताब्दी के प्रारंभ में जब शिक्षा के धर्मनिरपेक्षीकरण पर बल दिया गया तो सभी ने इसका समर्थन किया। उदारवाद ने तो इसको और अधिक बढ़ावा दिया और आशा की कि इसके द्वारा सार्वभौमिक समझ को वैज्ञानिक ढंग से विकसित किया जा सकता है और राजनैतिक तथा आर्थिक क्षेत्र के प्रति सजगता जागृत की जा सकती है।

5. मनोविज्ञान और पाठ्यचर्या –पाठ्यचर्या के निर्माण के समय मनोवैज्ञानिक विशेषताओं की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है, क्योंकि ये विशेष विषय के अधिगम को प्रभावित करते हैं। पाठ्यचर्या की रचना करते समय मानव विकास, संप्रत्यय निर्माण, विभिन्न प्रकार के विषय–वस्तु का अधिगम, अभिप्रेरणात्मक कारकों, शैक्षिक तकनीकी और मूल्यांकन विधियों का ध्यान रखना पड़ता है। किसी विषय के विषय–वस्तु का संगठन करते समय पाठ्यचर्या निर्माता तार्किक और मनोवैज्ञानिक अपीलों और प्रबंध को अपने मस्तिष्क में रखता है। अधिगम की भिन्नता की आवश्यकता और व्यक्तिगत भिन्नता आदि अधिगम अनुभवों के चुनाव के आधार होते हैं। इस प्रकार मनोविज्ञान का अध्ययन पाठ्यचर्या निर्धारण को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है।

प्रश्न 15. परम्परागत एवं प्रगतिशील पाठ्यक्रम में अंतर स्पष्ट कीजिए। (छतरपुर 2021)

उत्तर–परम्परावादी पाठ्यक्रम एवं प्रगतिशील पाठ्यक्रम में अंतर–

क्र.	परम्परावादी पाठ्यक्रम	प्रगतिशील पाठ्यक्रम
1.	इसमें पाठ्यक्रम पूर्णता/सम्पूर्ण के अंश से प्रारंभ होकर निम्नतर अंश पर आकर समाप्त होता है तथा इसमें आधारभूत कौशलों व युक्तियों पर बल दिया जाता है।	इसमें पाठ्यक्रम बड़े सम्प्रत्ययों को समाहित करने पर बल देता है तथा सम्पूर्ण/पूर्णता से प्रारंभ होकर समस्त भागों को पाठ्यक्रम में समायोजित करता है।

2.	इसमें पाठ्यक्रम में शामिल पदों का अक्षरश: पालन करने पर बल दिया जाता है।	इसमें छात्रों को रुचि व उनके द्वारा पूछे प्रश्नों को महत्व दिया जाता है।
3.	इसमें अध्ययन सामग्री के रूप में पाठ्य–पुस्तकें व कार्य–पुस्तिका को ही माना जाता है।	इसमें अध्ययन सामग्री के रूप में प्राथमिक संसाधनों व हस्त कौशल युक्त निर्मित सामग्रियों को ही माना जाता है।
4.	इसमें ज्ञान आंतरिक रूप से दृष्टिगोचर होता है।	इसमें ज्ञान गत्यात्मक होता है जो अनुभवों के द्वारा परिवर्तित होता है।
5.	इसमें छात्र प्राय: अकेले कार्य करते रहते हैं।	इसमें छात्र प्राय: समूह के रूप में कार्य करते रहते हैं।
6.	इसमें अधिगम का मुख्य केन्द्र वैयक्तिक कौशल रहना, कंठस्थ करना, बार–बार पढ़ना आदि पर निर्भर करता है।	इसमें अधिगम का मुख्य केन्द्र उच्चस्तरीय संज्ञानात्मक कौशल, विश्लेषण, निरीक्षण, अन्वेषण, संश्लेषण आदि पर निर्भर करता है।
7.	इसमें नवीन ज्ञान की प्राप्ति हेतु पूर्व ज्ञान को सदैव प्रामाणिक माना जाता है। माना जाता है तो कभी–कभी उसमें अपेक्षित सुधार भी किया जाता है।	इसमें नवीन ज्ञान की प्राप्ति हेतु पूर्व ज्ञान को परिवर्तित पर्यावरण के परिप्रेक्ष्य में सही भी
8.	इसमें अध्ययन की पुनरावृत्ति हेतु अधिक बोध हेतु विद्यार्थी सामान्यत: अकेले अपने ऊपर निर्भर रहता है।	इसमें अधिगम अन्त:क्रिया पर आधारित होकर ज्ञात कराता है कि विद्यार्थी वास्तव में कितना जानते हैं।
9.	इसमें अध्यापक उपलब्धि के तौर पर आँकड़ों को प्रसारित करता है और उसी से विद्यार्थी ज्ञान प्राप्त करता है।	इसमें अध्यापक विद्यार्थी से वार्तालाप करता है तथा उसको अपने ज्ञान का निर्माण या सृजन करने में सहायता प्रदान करता है।
10.	इसमें अध्यापक की भूमिका निर्देशात्मक व सत्तात्मक में केन्द्रित होती है।	इसमें अध्यापक की भूमिका अंतर्क्रियात्मक व सहयोगात्मक होती है।
11.	इसमें मूल्यांकन सही उत्तरों को देखकर होता है।	इसमें मूल्यांकन में विद्यार्थी के कार्य, निरीक्षण, दृष्टिकोण, परीक्षण व परिश्रम को सम्मिलित किया जाता है।
12.	इसमें ज्ञान प्राप्ति हेतु संरचनात्मक गणना पर अधिक बल दिया जाता है।	इसमें नवीन ज्ञान की प्राप्ति हेतु व्यावहारिक कार्यों पर विशेष बल दिया जाता है।
13.	इसमें बालक को सीखने की प्रवृत्ति में यह माना गया है कि बालक बिना किसी वयस्क या बड़े के बिना नहीं सीख सकता है।	इसमें बालक को सीखने की प्रवृत्ति स्वयं में विकसित करनी पड़ती है, बड़े मात्र सहयोग करते हैं। बालक स्वयं सीखता है।

प्रश्न 16. पाठ्यक्रम के क्षेत्र के बारे में विस्तृत रूप से समझाइए। (उज्जैन 2021)

उत्तर–पाठ्यक्रम के क्षेत्र– पाठ्यक्रम की व्यापक अवधारणा को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम के क्षेत्र को सीमाओं में बाँधना अत्यंत कठिन कार्य है। फिर भी कुछ शिक्षा शास्त्रियों ने पाठ्यक्रम के क्षेत्र को निम्न बिन्दुओं में सीमांकित करने का प्रयास किया है–

1. छात्रों का व्यक्तिगत बोध एवं उसके अनुरूप शिक्षण व्यवस्था—पाठ्यक्रम द्वारा बालकों का व्यक्तित्व विकास एवं ज्ञानवर्धन किया जाता है। प्रत्येक बालक की अभिरुचि व आवाज क्षमताएँ भिन्न–भिन्न होती है तथा पाठ्यक्रम प्रत्येक बालक के व्यक्तिगत बोध के अनुरूप ही शिक्षण व्यवस्था प्रदान करता है।

2. शिक्षा के लक्ष्यों व उद्देश्यों का निर्धारण— जिस प्रकार शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाता है। ठीक उसी प्रकार, पाठ्यक्रम बालकों के लिए कुछ निश्चित उद्देश्यों का निर्धारण भी करता है तथा उन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए बालकों को प्रेरित करता है।

3. अधिगम हेतु व्यवस्था— अधिगम एक जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। जिस प्रकार ठहरे हुए पानी में अनेक गंदगी एवं बीमारियाँ पनपने लगती है। उसी प्रकार जब व्यक्ति अधिगम कार्य बंद कर देता है तो उसमें भी रूढ़िवादिता आ जाती है। इस प्रकार पाठ्यक्रम समय–समय पर बालकों के नवीन एवं विभिन्न प्रकार के अधिगम हेतु सुविधा प्रदान करता है।

4. नवीन प्रवृत्तियों का साहचर्य—पाठ्यक्रम एक व्यापक अवधारणा का रूप लेता जा रहा है। अतः वर्तमान समय में प्रचलन में आने वाली अनेक नवीन प्रवृत्तियों का साहचर्य भी इसके क्षेत्र में आता है।

5. बालकों के संज्ञानात्मक विकास का पोषण—पाठ्यक्रम का उद्देश्य बालकों का सर्वांगीण विकास एवं ज्ञानवर्धन करना भी होता है और वह बालकों को विभिन्न प्रकार के ज्ञान प्रदान करके उनका संज्ञानात्मक विकास करता है।

6. समस्त कार्यक्रमों एवं बालकों के कार्यों का मूल्यांकन—जैसा कि पूर्व विदित है पाठ्यक्रम विषय–वस्तुओं का समावेश मात्र न होकर विभिन्न क्रियाओं एवं कार्यकलापों का भी समन्वय है। पाठ्यक्रम बालकों को ज्ञान प्रदान करने के साथ–ही–साथ उनके कार्यों एवं अन्य सभी कार्यक्रमों का मूल्यांकन भी करता है।

7. शैक्षणिक स्रोतों का उपयोग—पाठ्यक्रम बालकों के अधिगम के लिए व्यवस्था ही नहीं प्रदान करता, अपितु बालकों को विभिन्न प्रकार का ज्ञान प्रदान करने हेतु आने को शैक्षणिक स्रोतों का भी उपयोग करता है। अनेक पुरातन शैक्षिक अभिलेखों में से बालकों के लिए उपयोगी विषय–वस्तु प्रदान करता है।

8. बालकों के सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य का संवर्धन—मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा समाज में रहते हुए उसे कुछ अधिकारों का उपभोग एवं कर्त्तव्य का निर्वहन करना होता है। इसके अतिरिक्त एक बालक पूर्ण रूप से स्वस्थ तभी माना जा सकता है। जब वह मानसिक एवं मनोवैज्ञानिक रूप से सुदृढ़ हो पाठ्यक्रम के द्वारा बालकों का सामाजिक विकास एवं मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य का संवर्धन किया जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पाठ्यक्रम का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। विद्यालय में रहते हुए बालक जो शैक्षिक क्रियाएँ करते हैं, जो पाठ्य–सहगामी क्रियाएँ करते हैं तथा जो अभिरुचि की पूर्ति से संबंधित कार्य करते हैं। उन प्रवृत्तियों के आधार पर ही पाठ्यक्रम का क्षेत्र विस्तृत होता चला जाता है।

प्रश्न 17. शिक्षक के लिए पाठ्यक्रम की उपयोगिता बताइये। **(ग्वालियर 2022)**

उत्तर—शिक्षकों के लिए पाठ्यक्रम की उपयोगिता—अच्छा पाठ्यक्रम शिक्षकों के लिए निम्नांकित प्रकार से उपयोगी सिद्ध होगा—

1. उद्देश्य तथा लक्ष्य जानने में— भली–भाँति निर्मित पाठ्यक्रम किसी भी स्कूल स्तर एवं कक्षा विशेष संबंधी अपने विषय के शिक्षण उद्देश्यों तथा लक्ष्यों से अच्छी प्रकार परिचित कराने में

अध्यापकों की सहायता कर सकता है। निर्धारित उद्देश्यों तथा लक्ष्यों की जानकारी न केवल उन्हें पाठ्यक्रम के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों से परिचित कराती है, अपितु उन्हें इन लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की प्राप्ति के संदर्भ में उनकी जिम्मेदारियों का भी ज्ञान कराती है। इस प्रकार पाठ्यक्रम अध्यापकों को उनके कार्य तथा उत्तरदायित्व निभाने में स्पष्ट दिशा प्रदान करता है।

2. अधिगम अनुभवों का ज्ञान—पाठ्यक्रम अध्यापकों को उन लाभप्रद अधिगम अनुभवों को जानने में सहायता करता है जो उन्हें विद्यार्थियों को उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रदान करने हैं।

3. नीतियों, प्रविधियों एवं क्रियाओं का सुझाव— अध्यापकों के शिक्षण के उद्देश्य एवं विषय-वस्तु जानने में सहायता करने के पश्चात् पाठ्यक्रम उनका क्रियान्वयन करने के लिए उपयुक्त नीतियाँ, विधियाँ, प्रविधियाँ एवं क्रियाएँ प्रयुक्त करने का सुझाव देता है।

4. मूल्यांकन की उपयुक्त विधियों एवं प्रविधियों का ज्ञान— भली-भाँति निर्मित पाठ्यक्रम मूल्यांकन की प्रभावशाली विधियाँ एवं प्रविधियाँ जानने का अवयव होता है। अध्यापक को विद्यार्थियों की शिक्षण अधिगम क्रियाओं की प्रगति जानने के लिए पाठ्यक्रम की आवश्यकता होती है। जब कोई भी पाठ्यक्रम शिक्षण अधिगम परिणामों के निरंतर एवं व्यापक मूल्यांकन के लिए प्रयुक्त की जाने वाली विविध विधियों एवं तकनीकों का विवरण प्रस्तुत करता है तो अध्यापक को इनका प्रयोग करके अपनी शिक्षण विधियों, नीतियों एवं प्रविधियों तथा अध्यापक व्यवहार में उचित परिवर्तन करने के लिए जरूरी प्रतिपुष्टि तथा पुनर्बलन मिलता रहता है।

5. नियोजन करने में सहायक— पाठ्यक्रम अध्यापक के नियोजन करने तथा व्यवस्थित रूप से आगे बढ़ने में सहायता करता है।

6. भली-भाँति तैयारी— पाठ्यक्रम के फलस्वरूप अध्यापक भली-भाँति तैयारी करके कक्षा में आता है, इससे वह विद्यार्थियों में लोकप्रिय बनता है।

7. सही मार्ग— यदि कोई विद्यार्थी पथभ्रष्ट हो रहा है तो अध्यापक उसे सही रास्ते पर लाने के योग्य हो जाता है।

प्रश्न 18. पाठ्यक्रम की आवश्यकता एवं महत्व को लिखिए। **(छतरपुर 2022)**

उत्तर— पाठ्यक्रम की आवश्यकता— शिक्षा की आवश्यकता और पाठ्यक्रम समान है। परंतु शिक्षा की ऐतिहासिक समीक्षा से विदित होता है कि ये आवश्यकताएँ बदलती रही हैं। इसलिये इन सभी आवश्यकताओं का उल्लेख यहाँ पर किया गया है—

1. ज्ञान प्राप्त करने के लिए अन्य जीवों से प्रमुख भिन्नता मानवी ज्ञान की दृष्टि मानी जाती है।
2. मानसिक पक्षों का प्रशिक्षण तथा विकास करने के लिए विभिन्न विषयों के शिक्षण से मानसिक पक्षों का प्रशिक्षण किया जाता है।
3. व्यवसाय तथा नौकरियों के लिए तैयार करना।
4. विद्यार्थियों में अभिरूचियाँ उत्पन्न करने के लिए विद्यार्थियों की क्षमताओं के अनुरूप उनका विकास करना।
5. प्रजातंत्र में सामाजिक क्षमताओं का विकास करना एवं ऐसे नागरिकों को तैयार करना जो प्रजातंत्र को नेतृत्व प्रदान कर सकें।
6. विद्यार्थियों को व्यवसायों के लिये प्रशिक्षण देकर तैयार करना, नई शिक्षा नीति की प्राथमिकता है।
7. आम मानवीय गुणों के विकास के लिये शिक्षा को महत्व दिया जाता है जिससे आत्मानुभूति का विकास किया जाये।
8. सामाजिक आवश्यकताओं के लिये नागरिकों को तैयार करना तथा सौंदर्यानुभूति गुणों का विकास करना।

9. प्रमुख आवश्यकता आज जीने की है कि आज परिस्थितियों में जीवित रह सके। इसके लिए प्रशिक्षण दिया जाये।

10. विद्यार्थियों को भावी जीवन के लिए तैयार कर सकें। शिक्षा भावी जीवन–यापन के लिए दी जाती है।

11. तकनीकी विकास तथा वैज्ञानिक आविष्कारों के लिये भी तैयार करना।

शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है जो सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक नियंत्रण के लिए प्रभावी यंत्र है। इसलिये समाज की राष्ट्र की भावी आवश्यकताओं एवं परिवर्तन के लिये पाठ्यक्रम का विकास करना प्रमुख आवश्यक है।

प्रश्न 19. परम्परागत पाठ्यक्रम के क्या दोष हैं ? (छतरपुर 2022)

उत्तर–परम्परागत या पारम्परिक या मुक्त पाठ्यक्रम–जैसा कि नाम से ही प्रतीत हो रहा है, यह पाठ्यक्रम वह होता है, जिसमें विद्यार्थियों को स्वतंत्र रूप से ज्ञान प्राप्ति के अधिक अवसर प्राप्त होते हैं। 'करके सीखो' भी इस प्रकार के पाठ्यक्रम का ही एक भाग है।

परम्परागत पाठ्यक्रम के दोष–परम्परागत पाठ्यक्रम के दोष निम्नलिखित हैं–

1. संकीर्ण धारणा–सेकण्डरी शिक्षा आयोग के अनुसार वर्तमान पाठ्यक्रम संकुचित धारणा पर आधारित है। पारस्परिक विषय–वस्तु ने पाठ्यक्रम को सीमित कर दिया है। यह विद्यार्थियों को केवल कॉलेज में प्रवेश करने के लिए तैयार करता है, जीवन के लिए नहीं। इसमें न तो वर्तमान समाज की समस्याएँ सम्मिलित हैं और न ही उनका समाधान सम्मिलित हैं।

2. पुस्तकीय एवं यांत्रिक–पारस्परिक पाठ्यक्रम पुस्तकीय एवं यांत्रिक है। इसमें व्यवहार पक्ष की अपेक्षा शैक्षणिक एवं सैद्धांतिक पक्ष पर अधिक बल दिया जाता है। सैद्धांतिक पक्ष में भी असंबंधित विषय रखे जाते हैं जो सीखने के ग़लत मनोविज्ञान पर आधारित होते हैं। अधिकांश विषय बच्चों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं तथा रुचियों के अनुकूल नहीं होते।

3. एकरूपता एवं कठोरता–पारम्परिक पाठ्यक्रम में एकरूपता एवं कठोरता है। सभी विद्यार्थियों को एक ही तथ्य का अध्ययन करना पड़ता है और उनकी रूचियों, आवश्यकताओं एवं शक्तियों की विभिन्नता की ओर ध्यान नहीं दिया जाता।

4. बोझिल एवं अत्यधिक–पारम्परिक पाठ्यक्रम बोझिल एवं अत्यधिक है।

5. परीक्षा का बोलबाला–पारम्परिक पाठ्यक्रम में परीक्षा का अत्यधिक बोलबाला है। परीक्षा का डर स्कूल कार्य को अत्यधिक भयावह बना देता है। परीक्षायें न तो विश्वस्त है, न ठोस, न वस्तुनिष्ठ और न ही व्यापक है।

6. अमनोवैज्ञानिक–पारम्परिक पाठ्यक्रम अमनोवैज्ञानिक है क्योंकि यह व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुकूल नहीं। न तो यह विद्यार्थी केन्द्रित है और न ही क्रिया केन्द्रित।

7. सांस्कृतिक विरासत की अवहेलना–पारम्परिक पाठ्यक्रम में सांस्कृतिक विरासत की अवहेलना की गयी है। यह खेद का विषय है कि हमारे स्कूलों में भारतीय लोकगीतों, पौराणिक कथाओं, संगीत तथा नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के लिए कोई स्थान नहीं। अतः भारतीय संस्कृति के अनुसार पाठ्यक्रम में सुधार होना चाहिए।

8. स्मृति पर बल–पारम्परिक पाठ्यक्रम विद्यार्थियों से अत्यधिक स्मृति कार्य की माँग करता है। विद्यार्थियों को पाठ्य–पुस्तकों तथा गाइडों में दी गयी सामग्री को स्मरण करने को कहा जाता है। पुस्तकें एक प्रकार से विद्यार्थियों के आगे सीमा रेखा खींच देती है जिनमें आगे जाने की उन्हें अनुमति नहीं दी जाती। विद्यार्थी परीक्षा में पास होने के लिए ज्ञान को रट लेते हैं। परीक्षा समाप्त होने के पश्चात् वे फिर कोरे ही रह जाते हैं अर्थात् सब कुछ भूल जाते हैं। उनमें आत्म–निर्भरता, मानसिक चेतना एवं मौलिकता को विकसित करने का प्रयास नहीं किया जाता।

9. अप्रगतिशील—पारम्परिक पाठ्यक्रम अप्रगतिशील है क्योंकि यह आधुनिक, वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति के साथ कदम मिलाकर नहीं चलता। यह स्थिर है और समाज की बदलती हुई आवश्यकताएँ पूरी नहीं करता।

10. औपचारिक स्कूली शिक्षा—पारम्परिक पाठ्यक्रम मुख्यतः औपचारिक स्कूली शिक्षा पर आधारित है। इसमें अनौपचारिक एवं अंशोपचारिक विधियों तथा अंशोपचारिक शिक्षा अभिकरणों को बहुत महत्व दिया जा रहा है।

11. नैतिक शिक्षा की अवहेलना—पारम्परिक पाठ्यक्रम नैतिक शिक्षा की उपेक्षा करता है, जिसके परिणामस्वरूप चारित्रिक ह्रास हो रहा है और अनुशासनहीनता बढ़ रही है।

12. शिक्षा के अनौपचारिक अभिकरणों से तालमेल नहीं—पारम्परिक पाठ्यक्रम का शिक्षा के अनौपचारिक अभिकरणों (जैसे—प्रेस, रेडियो, दूरदर्शन तथा अन्य सामाजिक संगठन जो शिक्षा के कार्यों में लगे हुए हैं) के साथ को कोई तालमेल नहीं होता।

प्रश्न 20. कोविड–19 के युग के दौरान पाठ्यचर्या संबंधित उदय हुए किन्हीं पाँच मुद्दों का वर्णन कीजिए। **(इन्दौर 2023)**

उत्तर—कोविड-19 के दौरान पाठ्यचर्या संबंधित उदय हुए मुद्दे निम्नलिखित हैं—

1. कोविड के कारण स्कूलों के बंद होने से बच्चे असमान रूप से प्रभावित हुए क्योंकि महामारी के दौरान सभी बच्चों के पास सीखने के लिए जरूरी अवसर, साधन या पहुँच नहीं थी।

2. लाखों विद्यार्थियों के लिए स्कूलों का बंद होना उनकी शिक्षा में अस्थायी तौर पर व्यवधान भर नहीं, बल्कि अचानक से इसका अंत होता है।

3. शिक्षा को तमाम सरकारों की पुनर्निर्माण योजनाओं का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा होना चाहिए ताकि दुनिया भर में हर बच्चे को निःशुल्क शिक्षा सुलभ की जा सके।

4. स्कूल बंद होने से ऑनलाइन शिक्षा प्लेटफार्म की माँग बढ़ गई।

5. वीडियो कॉन्फ्रेंस और ऑनलाइन कक्षाओं की सुविधा के लिए एक मंच की आवश्यकता महामारी द्वारा बनाई गई थी।

6. विद्यालयों के बंद होने से वर्चुअल क्लासरूम पोर्टल की आवश्यकता पैदा हुई और गूगल क्लासरूम (Google Classroom) ने कई स्कूलों के लिए उस उद्देश्य को पूरा किया।

7. महामारी के दौरान ऑनलाइन शिक्षण हेतु कोर्सेरा (Coursera), जूम (Zoom), गूगल क्लासरूम (Google Classroom) का उपयोग किया जा रहा था।

प्रश्न 21. पुस्तक समीक्षा के आधार बिन्दु बताइये। **(भोपाल 2022)**

उत्तर—पुस्तक समीक्षा में किसी पुस्तक का सम्यक् विश्लेषण किया जाता है। इस विश्लेषण से पाठक को पुस्तक विशेष के विभिन्न पहलुओं की जानकारी मिलती है। पुस्तक समीक्षा में एक पुस्तक की पूरी छानबीन की जाती है। समीक्षक पाठक को पुस्तक से परिचित कराता है। इस क्रम में वह पुस्तक के लेखक, विषय–वस्तु, शिल्प प्रकाशन स्तर आदि पर प्रकाश डालता है। इसके साथ ही वह सम्पूर्ण रूप से पुस्तक का आलोचनात्मक मूल्यांकन भी करता है।

पुस्तक समीक्षा का पहला और प्राथमिक दायित्व पाठकों को पुस्तक से परिचित कराना है। लेकिन परिचय का अर्थ पुस्तक की विषय–वस्तु का सारांश भर देना नहीं है। निश्चय ही पुस्तक की विषय–वस्तु के बारे में जानने की उत्सुकता ही पाठकों को पुस्तक की समीक्षा पढ़ने के लिए प्रेरित करती है। पुस्तक की समीक्षा पुस्तक की विषय–वस्तु, संरचना और भाविक सर्जनात्मक का ज्ञान देती है।

साहित्य में पुस्तक समीक्षा की अहम भूमिका है। समीक्षा पाठक और पुस्तक को एक–दूसरे से जोड़ती है। समीक्षा से पाठक को प्रकाशित होने वाली पुस्तक की जानकारी मिलती है। साहित्य संस्कृति, विज्ञान, समाज, विज्ञान, खेलकूद आदि क्षेत्रों से संबद्ध पुस्तक की जानकारी समीक्षा के

माध्यम से पाठकों तक पहुँचती है। समीक्षा लेखक को पाठक से जोड़ने का सामाजिक दायित्व भी निभाती है। साथ ही इसकी मदद से पाठक किसी लेखक या कृति के बारे में अपनी समझ विकसित कर सकता है और अपनी राय बना सकता है।

पुस्तक समीक्षा के आधार बिन्दु–पुस्तक समीक्षा के आधार बिन्दु निम्न हैं–

1. वस्तुनिष्ठता–एक अच्छी समीक्षा की पहली शर्त है वस्तुनिष्ठता। पुस्तक समीक्षा पढ़कर पाठक को यह महसूस होना चाहिए कि इसमें पुस्तक के साथ न्याय किया गया है और समीक्षक ने अनावश्यक रूप से भर्त्सना और स्तुति नहीं की है। समीक्षा कहीं पुस्तक का विज्ञापन तो नहीं बन रही है। केवल प्रशंसात्मक, प्रचारात्मक और परिचायात्मक लेखन समीक्षा को विज्ञापन का रूप दे देता है। समीक्षा व्यक्तिगत राग–द्वेष से मुक्त होनी चाहिए और उसमें निहित मूल्यांकन संतुलित होना चाहिए।

2. पूर्वाग्रह से मुक्त–पुस्तक समीक्षा की इस विशेषता का उल्लेख एक अच्छे समीक्षक के गुण के अंतर्गत भी किया जा चुका है। पहले उसका उल्लेख समीक्षक के संदर्भ में किया गया, अब समीक्षा के संदर्भ में किया जा रहा है हालाँकि दोनों एक–दूसरे से अभिन्न हैं। पुस्तक समीक्षा वस्तुनिष्ठ होनी चाहिए। यह वस्तुनिष्ठता तभी आ सकती है, जब समीक्षा पूर्वाग्रह से मुक्त हो। पूर्वाग्रह समीक्षक के व्यक्तिगत और विषयगत दोनों ही दृष्टिकोण से प्रभावित हो सकता है।

3. प्रासंगिकता–समीक्षा की जीवंतता के लिए उसका प्रासंगिक होना जरूरी है। एक सजग पाठक लगातार नयी पुस्तकों की जानकारी प्राप्त करते रहना चाहता है। अतः नयी पुस्तकों की समीक्षा यथाशीघ्र होनी चाहिए। समीक्षा में विलंब होने से उसके अप्रासंगिक हो जाने का खतरा रहता है। वस्तुतः समीक्षा की प्रासंगिकता, पुस्तक की प्रासंगिकता से जुड़ी हुई है।

4. केंद्रीय बिन्दु की पहचान–समीक्षा का मुख्य उद्देश्य पाठक को पुस्तक के मूल कथ्य से परिचित कराना होता है, इसे केंद्रीय विषय, केंद्रीय बिन्दु, मुख्य विचार आदि भी कहते हैं। पुस्तक का सिर्फ सारांश प्रस्तुत करना समीक्षा नहीं होता। उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक में वर्णित कथा का दुहराना भी समीक्षा नहीं है। समीक्षा में पुस्तक के केंद्रीय विषय को सहज रूप में उजागर करना है। पाठक समीक्षा के द्वारा पुस्तक की विषय–वस्तु के संबंध में समीक्षक की विशेषज्ञतापूर्ण राय जानना चाहता है। इसलिए अच्छी समीक्षा केंद्रीय बिन्दु या केंद्रीय कथ्य को उभारने का कार्य करती है।

5. सोद्देश्यता–पुस्तक समीक्षा पुस्तक और पाठक के बीच पुल का काम करती है। पुस्तक समीक्षा पाठक को पुस्तक से जोड़ती है। पुस्तक समीक्षा के माध्यम से वह पुस्तक से पहला परिचय प्राप्त करता है। वह उसकी विषय–वस्तु से परिचित होता है, उसके महत्व और प्रासंगिकता को जानकर यह तय करता है कि उसे यह पुस्तक पढ़नी चाहिए या नहीं। इसलिए यह जरूरी है कि समीक्षा सोद्देश्यपूर्ण हो। समीक्षा लिखते समय समीक्षक को ध्यान रखना चाहिए कि वह एक दायित्वपूर्ण कार्य कर रहा है।

6. निजता–प्रत्येक समीक्षक का दृष्टिकोण और उसकी लेखन शैली अलग–अलग होती है इसकी झलक समीक्षा में मिलती है। समीक्षा में सहजता और स्पष्टता होनी चाहिए। पुस्तक समीक्षा आलोचना का प्रथम चरण है।

7. भाषागत और शैलीगत विशेषताएँ–समीक्षा की भाषा सहज, सरल और समूह में चलने लायक होनी चाहिए। समीक्षा का उद्देश्य होता है पाठकों को पुस्तक की जानकारी देना। समीक्षा की भाषा के साथ–साथ उसकी शैली भी सुपाठ्य और आकृष्ट करने वाली होनी चाहिए। लेखन शैली की यह परिपक्वता समीक्षक के विस्तृत ज्ञान और प्रस्तुति की कुशल क्षमता पर निर्भर होती है। समीक्षा जितनी अधिक सहज और संप्रेष्य होगी, उसकी महत्ता उतनी ज्यादा होगी। भाषा और शैली की दुरूहता में जकड़ी समीक्षा कभी भी श्रेष्ठ समीक्षा नहीं हो सकती।

प्रश्न 22. बुनियादी शिक्षा के सिद्धांतों को संक्षेप में लिखिए। **(उज्जैन 2022)**

उत्तर–बुनियादी शिक्षा का अर्थ–बुनियादी शिक्षा का तात्पर्य ऐसी शिक्षा से है जिसमें बालक के संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास हो और जिसमें बालक शारीरिक एवं मानसिक रूप से अपना समग्र विकास करे, इसमें व्यावहारिक ज्ञान आवश्यक है। बुनियादी शिक्षा का एक अन्य उद्देश्य है शिक्षार्थियों का चारित्रिक एवं नैतिक विकास करना। इसी कारण इस शिक्षा में शिक्षार्थियों की नैतिकता का अत्यधिक ध्यान रखा जा रहा है। नैतिक शिक्षा के बारे में गाँधीजी का यह कहना था कि ''मैंने हृदय की संस्कृति या चरित्र के निर्माण को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है।''

महात्मा गाँधी जी द्वारा भारत को जो देन है उसमें बुनियादी शिक्षा अत्यंत महत्वपूर्ण और बहुमूल्य है। इसे वर्धा योजना, नयी तालीम, बुनियादी तालीम अथवा बेसिक शिक्षा के नामों से भी जाना जाता है। गाँधीजी ने 23 अक्टूबर, 1937 को ''बुनियादी शिक्षा'' की योजना बनायी जिसे राष्ट्रव्यापी व्यावहारिक रूप बाद में दिया गया। बुनियादी शिक्षा का आधार सामाजिक है क्योंकि उसमें बालक के सामाजिक गुणों का विकास करने का प्रयास किया गया है। हस्तशिल्प के द्वारा उनमें आत्मसंयम, आज्ञा–पालन, सहयोग, सहिष्णुता आदि गुणों का विकास किया जाता है। बुनियादी शिक्षा से बालकों को कर्त्तव्य–पालन, परस्पर सहयोग, सदाचार, राष्ट्रभक्ति, श्रम का महत्व आदि गुणों से परिचय कराती है। इस शिक्षा से लोकतंत्र प्रणाली में अपने कर्त्तव्य व दायित्व को पूर्ण करने तथा उनका सही ढंग से पालन करने की सीख देती है।

बुनियादी शिक्षा के सिद्धांत–बुनियादी शिक्षा के सिद्धांत निम्न हैं–

1. जन साधारण की शिक्षा–भारत में अधिकांश साधारण जनता अज्ञानता के अन्धकार से आवृत है। यही कारण है कि बुनियादी शिक्षा का सर्वप्रथम सिद्धांत जनसाधारण को शिक्षित बनाना निर्धारित किया गया है। गाँधीजी के निम्नलिखित कथन के अनुसार कार्य किया जा रहा है–''जन साधारण की अशिक्षा भारत का पाप और कलंक है। उसका अंत किया जाना अनिवार्य है।''

2. निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा–गाँधीजी ने भारत के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की।

3. स्वावलंबी शिक्षा–गाँधीजी ने बुनियादी शिक्षा के आधारभूत सिद्धांत की ओर संकेत करते हुए कहा–''सच्ची शिक्षा स्वावलंबी होनी चाहिये।'' इसका अभिप्राय यह है कि शिक्षा से पूँजी के अतिरिक्त वह सब धन मिल जाना चाहिए जो उसे प्राप्त करने में व्यय किया जाए। बुनियादी शिक्षा दो प्रकार से स्वावलंबी है–(1) बुनियादी शिक्षा प्राप्त करने वाला बालक किसी हस्तशिल्प को सीखकर, उसे अपने भावी जीवन के निर्वाह का साधन बनाए और (2) विद्यालय के बालकों के द्वारा बताई जाने वाली वस्तुओं को बेचकर धन अर्जन करें। इस प्रकार बालक अपने विद्यालय–जीवन और भावी–जीवन दोनों में अपने ऊपर निर्भर होकर स्वावलंबी बन सकते है।

4. सामाजिक शिक्षा–बुनियादी शिक्षा के द्वारा एक ऐसे समाज का नव–निर्माण करने का प्रयत्न किया जा रहा है जो स्वार्थ एवं शोषण विहीन हो, जो प्रेम एवं न्याय पर आधारित हो और जिसके मूल मंत्र सत्य एवं अहिंसा हो। यही कारण है कि बुनियादी विद्यालयों में बालकों को इसी प्रकार के समाज में रहने का प्रशिक्षण दिया जाता है।

5. शिक्षा का माध्यम मातृभाषा–बुनियादी शिक्षा का माध्यम मातृभाषा है। इतिहास हमें बताता है कि देश की संस्कृति का विनाश करने के लिए उसके साहित्य का विनाश किया जाता है। इसी सिद्धांत का अनुगमन करके, अंग्रेजों ने हमारे देश में अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाया। बुनियादी शिक्षा में अंग्रेजी को कोई स्थान नहीं दिया गया और मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया गया।

6. हस्तशिल्प की शिक्षा–बुनियादी शिक्षा में हस्तशिल्प का विशेष स्थान है और सब विषयों की शिक्षा उसी माध्यम से दी जाती है। हस्तशिल्प को केंद्रीय स्थान में रखने का कारण है कि बच्चे को एक उपयोगी हस्तशिल्प सिखाकर उसे जल्द ही उत्पादन करने योग्य बनाया जा सकता है।

7. शारीरिक श्रम—बुनियादी शिक्षा में हस्तशिल्प के माध्यम से शारीरिक श्रम को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। इससे चार निम्नांकित लाभ होते हैं—(1) इससे बालकों की शिक्षा का व्यय निकल आता है। (2) इससे उनको किसी व्यवसाय का प्रशिक्षण प्राप्त हो जाता है। (3) इससे उनमें आत्मविश्वास उत्पन्न होता है और शारीरिक श्रम के प्रति घृणा नहीं रह जाती है। (4) बालक के शरीर के अंगों का विवेकपूर्ण प्रयोग उसके मस्तिष्क को विकसित करने की सर्वोत्तम और शीघ्रतम विधि है।

प्रश्न 23. पाठ्यक्रम की कमजोरियों को समझाइये। (उज्जैन 2022)

उत्तर—पाठ्यक्रम की कमजोरियाँ—पाठ्यक्रम की निम्न कमजोरियाँ हैं—

1. संकुचित आधार—हमारे देश में वर्तमान पाठ्यक्रम का आधार शुरू से ही संकुचित रहा है। भारत एक विकासशील राष्ट्र है। भारत का पाठ्यक्रम जिस स्वास्थ्य राष्ट्रीय संस्कृति पर आधारित होना चाहिए उस पर वर्तमान में पाठ्यक्रम आधारित हो सका है। जब हम अपने पाठ्यक्रम की ओर दृष्टि डालते हैं तो हमें उसकी रूपरेखा ऐसी मालूम पड़ती है जैसे मानों कोई टेढ़ा—मेढ़ा, ऊँचा—नीचा क्षीण मार्ग अंधकार में जाकर विलीन हो गया हो। जबकि पाठ्यक्रम का स्वरूप उस विस्तृत मार्ग की तरह होना चाहिए जो स्वस्थ सामाजिक वातावरण की चहल—पहल में जाकर विलीन हुआ हो। पाठ्यक्रम एक क्षीण मार्ग की तरह होता है, जिसमें कुछ गिनी—चुनी पुस्तकें ही सन्निहित होती है जिससे विद्यार्थी का ज्ञान संकुचित रह जाता है। पाठ्यक्रम संकुचित होने के कारण विद्यार्थी का भविष्य अंधकारमय हो जाता है।

2. पुस्तकीय स्वभाव—पाठ्यक्रम पूर्णतः पुस्तकों में लिखी गई बातों पर निर्भर होता है, जिसे विद्यार्थियों को पढ़कर रट लेना होता है जबकि बालकों की शक्तियाँ अपने विकास के लिए स्वतंत्र और सक्रिय वातावरण चाहती है। ये सक्रिय वातावरण पाठ्यक्रम में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं परन्तु हमारे पाठ्यक्रम में दिनों—दिन पुस्तकों का बोझ बढ़ता जा रहा है।

3. सैद्धांतिक—जीवन में काम आने वाले जिन अनुभवों एवं सामाजिक कुशलता को हम स्वयं कार्य करके अपने आप प्राप्त कर सकते हैं उन्हें भी वर्तमान पाठ्यक्रम हमें पुस्तकों से रटवाता है। पाठ्यक्रम का काम केवल किसी विषय का ज्ञान प्राप्त कराना ही नहीं बल्कि उस ज्ञान को व्यवहार रूप में परिणत करने का अनुभव प्रदान करना भी है।

4. तकनीकी तथा व्यावसायिक विषयों की कमी—प्रचलित पाठ्यक्रम में तकनीकी तथा व्यावसायिक शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं है। इससे न तो हमारे बालकों में इसके प्रति महत्व की भावना जागृत हो रही है और न ही देश की वास्तविक औद्योगिक उन्नति हो पा रही है।

5. अनुपयोगी—पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करने वाला पाठ्यक्रम जीवनोपयोगी कैसे हो सकता है। पाठ्यक्रम में जीवनोपयोगी शिक्षा प्रदान करने वाले साधनों एवं क्रियाओं का पूर्ण अभाव है।

6. जीवन के साथ संबंध नहीं—पाठ्यक्रम में उन समस्याओं, क्रियाओं एवं अनुभवों के लिए स्थान होना चाहिये जिनका बालक के भविष्य के जीवन से संबंध होता है। एक तरह से पाठ्यक्रम में एक ऐसा वातावरण होना चाहिए जो बालक के भविष्य के सामाजिक जीवन के बिल्कुल अनुरूप हो परन्तु हमारा पाठ्यक्रम सामाजिक जीवन से कुछ भी संबंध नहीं रखता है।

7. अध्यापकों का असहयोग—हमारे यहाँ पाठ्यक्रम निर्माण में अध्यापकों से कोई सहयोग नहीं लिया जाता। अध्यापक ही एक ऐसा व्यक्ति होता है जिसके पास विद्यालय के जीवन और सामाजिक जीवन दोनों का अनुभव होता है। पाठ्यक्रम बनाने वाला दूसरा होता है और उसे क्रियान्वित करने वाला दूसरा, फिर पाठ्यक्रम की असफलता निश्चित है।

8. सह—संबंध का अभाव—हमारा पाठ्यक्रम का निर्माण इस तरह से किया गया है, जिसमें विषयों का आपस में कोई संबंध नहीं है। जो कि वर्तमान मनोवैज्ञानिक विचारों के विपरीत है। पाठ्यक्रम व्यवस्था में कोई उपयुक्त मनोवैज्ञानिक विधि न होने के कारण हमारा पाठ्यक्रम एक इकाई का रूप नहीं पा सका है।

9. वैयक्तिक विभिन्नता की उपेक्षा— हमारे देश में बहुधन्धी विद्यालयों के न होने के कारण छात्रों को अपनी रुचि और योग्यता के अनुसार विकास करने का मौका नहीं मिल पाता। बहुत से विद्यार्थियों को अपने पसंद का विषय उपलब्ध न होने के कारण दूसरा विषय पढ़ना पड़ता है जो उनकी रुचि का नहीं होता है।

10. पाठ्यक्रम का परीक्षा–केन्द्रित होना— हमारे पाठ्यक्रम के मूल्यांकन का तरीका परीक्षा–केन्द्रित है। इस लक्ष्य को हासिल करने के लिये कभी–कभी विद्यार्थी और अध्यापक दोनों ही गलत तरीकों का प्रयोग करते है। रटकर परीक्षा देने वाले विद्यार्थी को योग्य माना जाता है भले ही उसे व्यावहारिक ज्ञान कुछ भी न हो।

11. निष्क्रियता— पुस्तकीय शिक्षा पर बल देने वाला पाठ्यक्रम निष्क्रिय होता ही है। हमारे पाठ्यक्रम में उन सृजनात्मक और रचनात्मक क्रियाओं के लिए कोई स्थान नहीं है, जिनसे बालकों की निजी योग्यताओं का विकास एवं प्रदर्शन का अवसर मिलता है।

12. नैतिक तथा योग शिक्षा का अभाव— प्रचलित पाठ्यक्रम में योग तथा नैतिक शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं है। परिणामस्वरूप बालकों में अनुशासनहीनता तथा चरित्रहीनता दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इसके लिए नैतिक तथा योग शिक्षा की आवश्यकता है।

13. अनावश्यक विषयों का भार— हमारा पाठ्यक्रम छात्रों के लिए एक भार–सा है। उसमें अनेक विषय ऐसे हैं, जो भविष्य के लिए उतने उपयोगी नहीं जान पड़ते जितने परिश्रम से उन्हें रटा जाता है।

14. जनतंत्र के लिये अयोग्य— प्रचलित पाठ्यक्रम में जनतंत्रीय आदर्शों का समावेश नहीं है। अतः इसके द्वारा बालकों में जनतंत्रीय भावना का विकास कर पाना असंभव है।

15. परम्परानुगामी— पाठ्यक्रम परम्परा पर आधारित है, जिसकी उपयोगिता का ज्ञान किसी को भी नहीं है। परंपरा पर निर्भर होने के कारण प्रगतिशीलता की कमी है।

16. कठोरता— हमारा पाठ्यक्रम इतना लोचदार नहीं है कि समय–समय पर उसमें आसानी से संशोधन किया जा सके।

17. विश्वविद्यालयों का दबाव— हमारा पाठ्यक्रम एक तरह से अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रखता। स्कूल में पढ़ते समय उनके सामने कॉलेज में पढ़ना लक्ष्य होता है। परन्तु कुछ विद्यार्थी आर्थिक क्षमता के अभाव में कॉलेज में शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

प्रश्न 24. ''पाठ्य पुस्तक की समीक्षा'' किस प्रकार की जाती है ?

(जबलपुर 2022; छिंदवाड़ा 22)

उत्तर–पुस्तक को पढ़ने के बाद पुस्तक के बारे में बताना पुस्तक की समीक्षा कहलाता है। यह किसी को पुस्तक को पढ़ने या ना पढ़ने के लिए प्रेरित करती है। किसी किताब का लेख कहानी पर आपकी प्रतिक्रिया होती है जो अच्छी या बुरी हो सकती है, इसे पुस्तक समीक्षा में बताया जाता है। कई सकारात्मक समीक्षाओं वाली पाठ्यपुस्तक गुणवत्ता सुधारने में मदद करेगी। समीक्षाओं से की गई त्रुटियों और सुझाए गए सुधारों के बारे में जानेंगे। पाठ्यपुस्तक की समीक्षा उसकी विश्वसनीयता को बढ़ाता है।

पाठ्यपुस्तक समीक्षा पाठ्यपुस्तक में प्रस्तुत सामग्री की गुणवत्ता का मूल्यांकन है। पाठ्यपुस्तक कक्षाओं के दौरान उल्लेखित जानकारी को पूरक, विस्तारिक और गहरा करती है और विद्यार्थियों को विषय को बेहतर ढंग से समझने में मदद करती है। पाठ्यपुस्तक समीक्षा में समीक्षक सुलभ और समझने योग्य भाषा का उपयोग करके पाठ्य–पुस्तक के प्रत्येक अनुभाग का वर्णन करता है। समीक्षा में न केवल पाठ्य–पुस्तक सामग्री का विवरण शामिल होना चाहिए, बल्कि पाठ्यपुस्तक के महत्व और

एक निश्चित दर्शकों के लिए इसकी उपयोगिता का भी मूल्यांकन करना चाहिए। यदि आप पाठ्य-पुस्तक की समीक्षा लिखना सीख जाएँगे तो आप आसानी से अच्छी और बुरी पाठ्यपुस्तकों में अंतर कर पाएँगे।

पाठ्य–पुस्तक समीक्षा का उद्देश्य–पाठ्यपुस्तक समीक्षा का मुख्य उद्देश्य यह दिखाना है कि पाठ्यपुस्तक पाठक के लिए उपयोगी होगी या नहीं। समीक्षा से पाठक को यह समझने में मदद मिलेगी कि पाठ्यपुस्तक खरीदने और पढ़ने लायक है या नहीं। इसके अलावा, समीक्षक किसी विशेष शैक्षणिक संस्थान के भीतर एक निश्चित पाठ्यक्रम के दौरान पाठ्य–पुस्तक की प्रयोज्यता की पहचान कर सकता है। एक नियम के रूप में, एक पाठ्य–पुस्तक समीक्षा मानदंडों की एक सूची का मूल्यांकन करती है जो पाठ्यपुस्तक की गुणवत्ता निर्धारित करती है।

पाठ्य–पुस्तक समीक्षा लेखन चरण–पाठ्य–पुस्तक समीक्षा लेखन के निम्नलिखित चरण हैं–

चरण 1. उस तर्क से प्रारंभ करें जो पाठक को पाठ्यवस्तु का परिचय देगा। पाठ्यपुस्तक के शीर्षक और इसके निर्माण में भाग लेने वाले लेखकों का उल्लेख करें। इसके अलावा, पाठ्यपुस्तक के घटकों और तत्वों की सूची बनाएँ और क्या इसमें अन्य भाग, कार्य–पुस्तिकाएँ और अतिरिक्त चीजें हैं। पाठ्यपुस्तक के आकार और प्रारूप का मूल्यांकन करें।

चरण 2. सामग्री की गुणवत्ता का वर्णन करें। सैद्धांतिक जानकारी के दायरे, अभ्यास की गुणवत्ता, कवर किए गए विषयों की संख्या और लेखकों की भाषा और शैली का विश्लेषण करें। अतिरिक्त सामग्री और सहायक छवियों (फोटो, टेबल, आँकड़े आदि) का मूल्यांकन करें। बताएँ कि पाठ्यपुस्तक की संरचना किस प्रकार सामग्री, सीखने में सहायता करती है। अपने दृष्टिकोण के समर्थन में पाठ्यपुस्तक से उदाहरण प्रस्तुत करें।

चरण 3. इच्छित दर्शकों के दृष्टिकोण से लिखें और वर्णन करें कि पुस्तक उनके लिए कैसे उपयोगी होगी। कल्पना कीजिए कि आपसे नए विद्यार्थियों या आपके बाद पाठ्यक्रम शुरू करने वाले विद्यार्थियों के लिए पाठ्यपुस्तकों की एक सूची बनाने के लिए कहा गया था। पाठ्य पुस्तक की ताकत और कमजोरियों का विश्लेषण करें। वर्णन करें कि किन बिंदुओं को कवर नहीं किया गया या अतिरिक्त उदाहरणों की आवश्यकता है। संरचना, सामग्री, सटीकता, स्पष्टता, संगठन और त्रुटियों पर विचार करें। सुनिश्चित करें कि पाठ्य–पुस्तक एक निश्चित पाठ्यक्रम के लिए लागू है और इसके अनुभागों को कक्षाओं के भीतर आसानी से सौंपा जा सकता है।

चरण 4. निष्कर्ष में अपने लेखन को सारांशित करें और बताएँ कि क्या पाठ्यपुस्तक इच्छित दर्शकों के लिए सहायक होगी। पाठ्य–पुस्तक को व्यापकता, सामग्री, प्रासंगिकता, स्पष्टता, संरचना और इंटरफेस के लिए रैंकिंग दें। अपनी अपेक्षाओं के बारे में बताएँ और क्या वे पूरी हुई ? अपनी पढ़ने की रणनीतियों को साझा करें, जो विद्यार्थियों को पाठ्य–पुस्तक का अधिक प्रभावी ढंग से उपयोग करने और जानकारी को अधिक कुशलता से समझने में मदद कर सकती है।

चरण 5. जैसे ही आप पहला ड्राफ्ट पूरा कर लें, गलतियों के लिए इसकी जाँच करें। सुनिश्चित करें कि आपका पाठ तार्किक और पठनीय है। जाँचें कि क्या आपने सभी आवश्यक प्रश्नों के उत्तर दे दिए हैं ?

अध्याय 2

पाठ्य–वस्तु, पाठ्य–पुस्तकें एवं पाठ्यक्रम अस्तित्व के मुद्दे एवं समस्याएँ

लघु एवं दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. पाठ्य–वस्तु (Syllabus) से क्या तात्पर्य है ? पाठ्य–वस्तु को परिभाषित कीजिए। **(उज्जैन 2022)**

***अथवा*, "पाठ्यक्रम पाठ्यचर्या का एक भाग है।" इस कथन की पुष्टि कीजिए।** **(इंदौर 2022)**

***अथवा*, पाठ्यचर्या व पाठ्यक्रम आपस में किस प्रकार संबंधित हैं ?** **(इंदौर 2023)**

उत्तर–पाठ्य–वस्तु के लिए "सिलेबस" (Syllabus) शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। जब–जब पाठ्यक्रम शब्द पाठ्य–विषयों के सीमित अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है तब–तब इन दोनों अर्थों में समानता होती है, लेकिन पाठ्यक्रम (Curriculum) शब्द की संकल्पना में व्यापकता आ जाने के फलस्वरूप इन शब्दों के प्रयोग में भी भिन्नता आ गई है।

पाठ्यक्रम में निर्धारित पाठ्य–विषयों से संबंधित क्रियाओं का ही समावेश होता है। इस प्रकार पाठ्यक्रम के अंतर्गत किसी विषय–वस्तु का विवरण शिक्षण के लिए तैयार किया जाता है जिसे शिक्षक छात्रों को पढ़ाता है।

पाठ्यक्रम, पाठ्यचर्या का महत्वपूर्ण अंग होता है। औपचारिक शिक्षा में पाठ्यक्रम का उपयोग शिक्षण के उपकरण के रूप में किया जाता है। पाठ्य–वस्तु मुख्यतया शिक्षार्थियों के ज्ञानात्मक पक्ष से संबंधित है।

पाठ्य–वस्तु की परिभाषाएँ–

चाण्डलर के अनुसार–"पाठ्य–वस्तु वह साधन है जिसके द्वारा अधिगम का संगठन एवं संरचना शिक्षक से शिक्षक को एवं शिक्षक से शिक्षार्थी को संप्रेषित की जाती है। कार्य संरचना के रूप में अनुदेशन के क्षेत्र में संगठित दस्तावेज है।"

हेनरी के अनुसार–"पाठ्य–वस्तु केवल मुद्रित संदर्शिका है जो यह बताता है कि शिक्षार्थी को क्या सीखना है एवं इसकी तैयारी पाठ्यचर्या विकास के कार्य का तर्क सम्मत सोपान है।"

बुचानन के अनुसार–"पाठ्य–वस्तु, अनुदेशन पद्धति में उच्च रूप में औपचारिक, प्राधिकार उन्मुख उपकरण है जो शिक्षक व शिक्षार्थी द्वारा लिये जाने वाले निर्णय का नियंत्रण करते हैं तथा अन्य पद्धतियों में औपचारिक दस्तावेज है जो सामान्य निर्देशक के रूप में कार्य करते हैं।"

निष्कर्ष रूप में पाठ्य–वस्तु पूरे शैक्षिक सत्र में विभिन्न विषयों में शिक्षक द्वारा शिक्षार्थियों को दिया जाने वाला निश्चित ज्ञान है। पाठ्य–वस्तु शिक्षण की विषय–वस्तु का निर्धारण करता है। पाठ्य–वस्तु शिक्षकों को शिक्षार्थी अधिगम को प्रभावी बनाने में सहायता प्रदान करता है। इसमें आवश्यक सामग्री की सूची होती है जिनसे पाठ्यचर्या को क्रियान्वित किया जाता है।

प्रश्न 2. पाठ्य–पुस्तकों से क्या आशय है ? पाठ्य–पुस्तकों को परिभाषित कीजिए। **(जबलपुर 2021; छतरपुर 21)**

उत्तर– पाठ्य–पुस्तकें–अनुदेशात्मक सामग्री के रूप में सर्वाधिक प्रयोग की जाने वाली सामग्री पाठ्य–पुस्तकें ही हैं। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में पाठ्य–पुस्तकों का महत्व सर्वविदित है।

पाठ्यक्रम की वास्तविक रूपरेखा को पाठ्य–पुस्तकों द्वारा ही विस्तार मिलता है जिससे वह शिक्षक एवं छात्र दोनों के लिए सुगम हो पाता है। सीखने के अनुभवों में पाठ्य–पुस्तकों का महत्वपूर्ण स्थान है। पुस्तकों के माध्यम से अतीत के ज्ञान तथा अनुभवों को संचित किया जाता है जिससे आने वाली पीढ़ी उसका उपयोग करके लाभान्वित हो सके।

पाठ्य–पुस्तकों में किसी विषय विशेष का संगठित ज्ञान एक स्थान पर रखा जाता हैं। इस प्रकार अच्छी पाठ्य–पुस्तकें शिक्षण प्रक्रिया में निर्देशन का कार्य करती हैं। अध्ययन–अध्यापन की दृष्टि से शिक्षक और शिक्षार्थी के लिए यह महत्वपूर्ण साधन है। पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम एवं पाठ्य-पुस्तकें परस्पर एक–दूसरे से संबंधित होते हैं। पाठ्य–पुस्तकें शिक्षा क्षेत्र की रीढ़ की हड्डी कही जाती हैं। व्यक्ति के सामाजिक एवं वैज्ञानिक विकास में महत्वपूर्ण भमिका का निर्वाह करती हैं।

पाठ्य–पुस्तक का अर्थ– किसी विषय के ज्ञान को जब एक स्थान पर पुस्तक के रूप में संगठित ढंग से प्रस्तुत किया जाता है तो उसे पाठ्य–पुस्तक की संज्ञा प्रदान की जाती है। पाठ्य-पुस्तक के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए कुछ विद्वानों के कथनों को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है-

पाठ्य–पुस्तकों की परिभाषाएँ–

1. वेस्टबेरी के अनुसार–"शैक्षिक एवं पाठ्यचर्या विकास में पाठ्य–पुस्तक चयन एवं लेखन मुख्य रूप में शामिल रहता है। यह अनेक प्रकार के कार्य करती है।"

2. बेकन के अनुसार–"पाठ्य–पुस्तक कक्षा प्रयोग के लिए विशेषज्ञों द्वारा तैयार एवं शिक्षण विधियों से सुसज्जित पाठ्यक्रम का संगठित रूप है।"

3. हैरोलिकर के अनुसार–"पाठ्य–पुस्तक ज्ञान, भावनाओं, क्रियाओं तथा प्रवृत्तियों का संपूर्ण योग है।"

4. लेंज के अनुसार–"पाठ्य–पुस्तक अधिगम क्षेत्र की किसी शाखा की प्राथमिक विषय–वस्तु का संगठित रूप है।"

5. डगलस के अनुसार–"अध्यापकों के बहुमत ने अंतिम विश्लेषण के आधार पर पाठ्य-पुस्तक को वे क्या और किस प्रकार पढ़ायेंगे की आधारशिला माना है।"

6. हाल–क्वेस्ट के अनुसार–"पाठ्य–पुस्तक शिक्षण अभिप्रायों के लिए व्यवस्थित जनजातीय चिंतन का एक अभिलेख है।"

उपरोक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि प्रभावशाली शिक्षक (Effective teacher) एवं शिक्षण (Teaching) के लिए पाठ्य–पुस्तक की अहम् भूमिका होती है। शिक्षकों को आधुनिकतम ज्ञान (Innovative knowledge) पुस्तकों के माध्यम से ही प्राप्त होता है।

प्रश्न 3. पाठ्य–पुस्तकों की आवश्यकता एवं महत्व स्पष्ट कीजिए।

(जबलपुर 2021; छतरपुर 21; रीवा 21

***अथवा*, पाठ्यपुस्तक से क्या तात्पर्य है ? इसकी आवश्यकता एवं महत्व समझाइए।**

(छिंदवाड़ा 2022

उत्तर–पाठ्य–पुस्तक–उपर्युक्त प्रश्न क्रमांक 1 देखिए।

पाठ्य–पुस्तकों की आवश्यकता एवं महत्व को निम्नांकित कारणों से स्वीकार किया जाता है

(1) पाठ्य–पुस्तक में निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार विषय का संगठित ज्ञान एक स्थान पर मिल जाता है।

(2) पाठ्य–पुस्तकें शिक्षकों एवं छात्रों के लिए मार्गदर्शक का कार्य करती हैं।

(3) पाठ्य–पुस्तकों के द्वारा छात्रों एवं शिक्षकों को यह जानकारी मिलती है कि किसी कक्षा स्तर के लिए कितनी विषय–वस्तु का अध्ययन–अध्यापन करना है।

(4) इनके द्वारा छात्रों एवं शिक्षकों के समय की बचत होती है।

(5) छात्रों का मानसिक स्तर इतना ऊँचा नहीं होता है कि वे विद्यालय में पढ़ाई गई विषय–वस्तु को एक ही बार में आत्मसात् कर सकें। इन्हें विषय–वस्तु को कई बार पढ़ना एवं दोहराना पड़ता है। अतः पाठ्य–पुस्तक की आवश्यकता होती है।

(6) योग्य शिक्षकों का ज्ञान भी अव्यवस्थित होता है। अतः उसे व्यवस्थित करने में पाठ्य–पुस्तक सहायक होती है। इसी प्रकार छात्रों के अपूर्ण ज्ञान को परिवर्धित एवं पूर्णता प्रदान करने में यह सहायक होती है।

(7) पाठ्य–पुस्तकों के माध्यम से स्वाध्याय द्वारा ज्ञान प्राप्त करने में छात्रों को प्रेरणा प्राप्त होती है।

(8) पाठ्य–पुस्तक के आधार पर कक्षा–कार्य तथा मूल्यांकन संभव होता है।

(9) पाठ्य–पुस्तक के आधार पर प्रत्येक राज्य में प्रत्येक कक्षा में एक निश्चित पाठ्य–वस्तु का अध्यापन संभव होता है तथा इससे छात्रों का मूल्यांकन सामूहिक रूप से किया जा सकता है।

(10) पाठ्य–पुस्तकें छात्रों को विषयवस्तु को संकलित करने में सहायता प्रदान करती है।

(11) इनके माध्यम से छात्रों की स्मरण एवं तर्कशक्ति का विकास होता है।

(12) पाठ्य–पुस्तकें मंदबुद्धि तथा प्रतिभाशाली दोनों प्रकार के बालकों के लिए उपयोगी होती हैं।

(13) ये परीक्षा के समय छात्रों की सहायक होती हैं।

(14) पाठ्य–पुस्तकें शिक्षक को कक्षा स्तर के अनुसार शिक्षण कार्य करने का बोध कराती हैं।

(15) पाठ्य–पुस्तकों से अध्ययन–अध्यापन में एकरूपता आती है।

(16) पाठ्य–पुस्तकों में विषय के पाठ्यक्रम की संपूर्ण रूप में व्याख्या की जाती है जिससे शिक्षक उपयुक्त अधिगम अनुभव प्रदान कर सकता है।

(17) विभिन्न शिक्षा आयोगों द्वारा भी पाठ्य–पुस्तकों की आवश्यकता एवं महत्व को स्वीकार किया गया है।

(18) पाठ्य–पुस्तक में विषय–वस्तु को तार्किक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है जिससे छात्रों के लिए विषय–वस्तु सरल एवं सुगम हो जाती है।

प्रश्न 4. पाठ्य–पुस्तक के प्रकार एवं विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

***अथवा*, अच्छी पाठ्य–पुस्तक की प्रमुख विशेषताएँ समझाइए।** **(ग्वालियर 2021, 22; उज्जैन 22)**

***अथवा*, पाठ्य–पुस्तकों के विभिन्न प्रकारों को समझाइए।** **(उज्जैन 2021)**

***अथवा*, पाठ्य–पुस्तक की विशेषताएँ लिखिए।** **(जबलपुर 2022)**

उत्तर– पाठ्य–पुस्तक के प्रकार–पाठ्य–पुस्तकों को सामान्यतया तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. सामान्य पाठ्य–पुस्तकें (General Text-books) — ये पुस्तकें किसी विशेष विषय पर सामान्य अध्ययन की दृष्टि से लिखी जाती हैं। इनमें किसी निर्धारित पाठ्यक्रम को आधार नहीं बनाया जाता है तथा प्रकरणों को विषय–सामग्री की उपलब्धता एवं उपयोगिता की दृष्टि से विस्तार प्रदान किया जाता है। ये पुस्तकें विशेष रुचि वाले विद्वानों द्वारा लिखी जाती हैं। ये पुस्तकें शिक्षकों एवं विद्यार्थियों के लिए सहायक पुस्तकों का कार्य करती हैं। इनका प्रयोग उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं या उनसे ऊपर की कक्षाओं में किया जाता है।

2. पाठ्यक्रम पर आधारित पाठ्य–पुस्तकें (Text-books According to Curriculum) — इस प्रकार की पाठ्य–पुस्तकें किसी निश्चित पाठ्यक्रम के आधार पर किसी निश्चित कक्षा–स्तर के लिए लिखी गई होती हैं। यद्यपि इन पुस्तकों का विस्तार क्षेत्र सीमित होता है, किन्तु विद्यार्थियों के लिए

बहुत उपयोगी होती हैं, क्योंकि ये पाठ्यक्रम से सीधे जुड़ी हुई होती हैं। इन पाठ्य–पुस्तकों के निर्माण में शिक्षण उद्देश्यों को विशेष महत्व दिया जाता है। विद्यार्थियों में इन्हीं पुस्तकों का सर्वाधिक प्रचलन होता है। इस प्रकार की पाठ्य–पुस्तकें सभी कक्षाओं में प्रयुक्त की जाती हैं।

3. संदर्भ पुस्तकें (Reference Books) — ये विशिष्ट प्रकार की पुस्तकें होती हैं तथा इनमें विस्तृत ज्ञान का समावेश होता है। इनमें तथ्यों, प्रत्ययों, सूत्रों, घटनाओं आदि की व्याख्या महानता से की जाती है। शिक्षक इनका प्रयोग संदर्भों के रूप में करता है, इसलिए इन्हें संदर्भ पुस्तकें कहा जाता है। उच्च कक्षाओं के शिक्षण में इन पुस्तकों का अध्ययन एवं प्रयोग उपयुक्त होता है।

पाठ्य–पुस्तक की प्रमुख विशेषताएँ–पाठ्य–पुस्तक की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(1) विषय–वस्तु का प्रस्तुतीकरण बालकों के मानसिक स्तर के अनुरूप। (2) व्याख्या, स्पष्टीकरण, उदाहरणों आदि की सहायता से विषय का सरलीकरण। (3) विषय–वस्तु का संगठन तार्किक एवं मनोवैज्ञानिक। (4) भाषा शैली में सरलता, स्पष्टता, मौलिकता एवं प्रवाहशीलता। (5) अन्य लेखकों, विद्वानों के संदर्भ स्पष्ट, विश्वसनीय एवं वैध हों। (6) विद्यार्थियों में स्वयं पढ़ने की रुचि विकसित कर सकने की क्षमता। (7) मुखपृष्ठ सचित्र, आकर्षक एवं सोद्देश्य हो। (8) आकार सुविधाजनक हों। (9) अध्याय के अन्त में विद्यार्थियों द्वारा स्वतः मूल्यांकन हेतु अभ्यास प्रश्नों का समावेश। (10) अध्यायों के आकार बालकों के स्तर एवं क्षमताओं के अनुरूप। (11) विषय–वस्तु से किसी की भी भावनाओं को आघात न पहुँचना अर्थात् धर्मनिरपेक्षता की भावना पर ध्यान। (12) विषय–वस्तु का प्रस्तुतीकरण शिक्षण उद्देश्यों एवं मूल्यों के अनुरूप। (13) विषय–वस्तु से संबंधित आधुनिकतम घटनाओं, तथ्यों एवं समस्याओं पर बल। (14) विषय–वस्तु के अनुकूल चित्रों, मानचित्रों, रेखाचित्रों आदि का प्रस्तुतीकरण। (15) विषय–सूची, शब्दावली, संदर्भ ग्रंथ–सूची, निर्देश नियमावली आदि का समावेश। (16) अध्यायों के आकार, बालकों के स्तर एवं क्षमताओं के अनुरूप। (17) चिन्तन एवं नवीन विचारों का प्रस्तुतीकरण।

प्रश्न 5. अच्छी पाठ्य–पुस्तक के निर्माण हेतु सुझावों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

उत्तर–शिक्षा व्यवस्था में पाठ्य–पुस्तकों के महत्व को देखते हुए अनेक संस्थाओं ने अच्छी पाठ्य–पुस्तकों के निर्माण एवं सुधार कार्यक्रम अपनाए हैं। इन कार्यक्रमों में पाठ्य–पुस्तकों के निर्माण के मूलभूत सिद्धांतों, मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों, अधिगम के नियमों, शिक्षण विधियों एवं शिक्षण सूत्रों आदि को ध्यान में रखकर विभिन्न विषयों की पाठ्य–पुस्तकों की रचना पर बल दिया जाता है। हमारे देश में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) द्वारा इस दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास किये गये हैं। अच्छी पुस्तकों के निर्माण हेतु कुछ महत्वपूर्ण सुझाव निम्न हैं–

(1) पाठ्य–पुस्तकों की रचना पाठ्यक्रम के उद्देश्यों के अनुरूप की जानी चाहिए।

(2) पाठ्य–पुस्तकों का राष्ट्रीयकरण होना चाहिए, जिससे अच्छी पाठ्य–पुस्तकें प्रकाशित हो सकें।

(3) मौलिक रूप से रचना करने वाले लेखकों को ही पाठ्य–पुस्तकों को लिखने का अधिकार हो।

(4) पाठ्य–पुस्तकों में सुधार हेतु राष्ट्रीय स्तर पर एक पाठ्य–पुस्तक समिति का गठन किया जाय जो समय–समय पर उनमें गुणात्मक सुधार हेतु लेखकों एवं प्रकाशकों को उपयुक्त परामर्श देती रहे।

(5) पाठ्य–पुस्तक को प्रकाशित करने से पूर्व उसकी पाण्डुलिपि का अध्ययन विषय विशेषज्ञों की एक समिति द्वारा कराया जाना चाहिए।

(6) योग्य एवं अनुभवी लेखकों को सरकार द्वारा पाठ्य–पुस्तक के निर्माण हेतु प्रोत्साहित किया जाय।

(7) पाठ्य–पुस्तकों को मात्र परीक्षा की दृष्टि से ही न लिखा जाय, क्योंकि इससे विषय–वस्तु की रूपरेखा संकुचित हो जाती है तथा अनेक व्यावहारिक पक्षों की उपेक्षा हो जाती है।

(8) उच्चतर माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के स्तर पर एक पाठ्य–पुस्तक के स्थान पर अच्छे स्तर की कई पुस्तकों को निर्माण किया जाय।

(9) पाठ्य–पुस्तकों की रचना में पूर्ण रूप से राष्ट्रीयता की छाप होना चाहिए।

(10) पाठ्य–पुस्तकों की विषय–वस्तु किसी संप्रदाय या वर्ग विशेष की भावनाओं को ठेस पहुँचाने वाली नहीं होनी चाहिए।

(11) पाठ्य–पुस्तकों में सुधार हेतु राष्ट्रीय स्तर पर एक पाठ्य–पुस्तक समिति का गठन किया जाय जो कि समय–समय पर उनमें गुणात्मक सुधार हेतु लेखकों एवं प्रकाशकों को उपयुक्त परामर्श देती रहें।

(12) पाठ्य–पुस्तकों के मूल्यों पर सरकार द्वारा नियंत्रण रखा जाना चाहिए तथा मूल्य कम रखने के लिए प्रकाशकों को सहायता अनुदान दिया जाना चाहिए।

(13) पाठ्य–पुस्तक में आवश्यकतानुसार चित्र, मानचित्र, चार्ट, ग्राफ, आँकड़ों आदि का प्रयोग अवश्य किया जाना चाहिए।

(14) पाठ्य–पुस्तकों के निर्माण एवं चयन में व्यक्तिगत, वर्गगत एवं राजनीतिक हस्तक्षेप स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए।

प्रश्न 6. किन मानदण्डों के आधार पर पाठ्य–पुस्तकों का चयन किया जाना चाहिए ?

***अथवा*, पाठ्य–पुस्तक का चुनाव करते समय किन मूल सिद्धांतों को ध्यान में रखना चाहिए ? समझाइए।** **(छतरपुर 2021)**

उत्तर–किसी पुस्तक का चयन करते समय अनेक बातों का ध्यान रखना होता है। सामान्यतया पुस्तक का नाम, लेखक का नाम, उसकी बाह्य आकृति एवं मूल्य प्रथम दृष्टि में लोगों का ध्यान आकृष्ट करते हैं। ये सभी पुस्तक के चयन के आधार अवश्य हैं, किन्तु किसी पाठ्य–पुस्तक के चयन के लिए ये बहुत अधिक प्रामाणिक मानदण्ड नहीं हैं। इनके अतिरिक्त पाठ्य–पुस्तकों के चयन में अन्य कई महत्वपूर्ण पक्षों पर भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है। अतः पाठ्य–पुस्तकों के चयन में निम्नांकित मानदण्डों का अनुसरण किया जाना चाहिए–

1. पाठ्य–पुस्तक का नाम–इसकी उपयुक्तता एवं ग्राह्ता।

2. लेखक–उसकी योग्यता, अनुभव एवं प्रसिद्धि, उसके विचारों में स्पष्टवादिता, निष्पक्षता एवं मौलिकता, उसकी विषय विशेषज्ञता, मनोविज्ञान का ज्ञान, शिक्षण विधियों का ज्ञान एवं प्रगतिशील विचारधारा आदि।

3. विषय–सूची–पाठ्यक्रम के अनुसार उसका महत्व एवं क्षेत्र, उसकी ग्राह्ता।

4. अंतर्वस्तु का चयन एवं संगठन–इसके अंतर्गत निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देने की आवश्यकता होती है–

(1) पाठ्यक्रम के उद्देश्यों के अनुरूप अंतर्वस्तु का चयन।

(2) छात्रों की रुचि, योग्यता, मानसिक स्तर, संवेगात्मक स्तर एवं प्रवृत्तियों से अंतर्वस्तु की अनुकूलता।

(3) अंतर्वस्तु की सामाजिक उपयुक्तता, सामाजिक एवं आर्थिक विकास तथा नागरिकों में नवजागरण कर सकने की क्षमता।

(4) अंतर्वस्तु के संगठन की मनोवैज्ञानिकता अध्यायों का क्रम बालकों के मानसिक विकासक्रम के अनुसार।

(5) अंतर्वस्तु के संगठन की शिक्षण विधियों से अनुकूलता।

(6) अंतर्वस्तु के चयन में प्रजातान्त्रिक आदर्शों एवं मूल्यों का ध्यान।

5. प्रस्तुतीकरण–प्रस्तुतीकरण निम्नांकित गुणों से युक्त होना चाहिए–

(1) छात्रों में स्वतः अध्ययन करने की आदत विकसित कर सकने की क्षमता, (2) छात्रों में विषय के प्रति रुचि विकसित कर सकने की क्षमता, (3) अन्य विषयों से अच्छा सहसंबंध, (4) शिक्षण विधियों के अनुकूल, (5) शिक्षण सूत्रों के अनुरूप, (6) सीखने के नियमों एवं सिद्धान्तों का अनुसरण,

(7) निर्देशित अध्ययन के अवसर प्रदान करने की सम्भावना, (8) छात्रों के मानसिक एवं संवेगात्मक स्तर के अनुकूल, (9) व्यक्तिगत भिन्नता की आवश्यकताओं की पूर्ति की सम्भावना, (10) बालकों के मानसिक विकास में सहायक, (11) उपयुक्त एवं सरल भाषा–शैली।

6. उदाहरण एवं चित्र–(1) शाब्दिक एवं प्रदर्शनात्मक उदाहरण, (2) तालिकाओं, ग्राफ, रेखाचित्र, मानचित्र आदि की स्पष्टता, आकर्षकता एवं शुद्धता, (3) आँकड़ों, उद्धरणों एवं संदर्भों की पर्याप्त संख्या, उनकी विश्वसनीयता एवं वैद्यता।

7. शैक्षिक सहायक साधन–अभ्यासार्थ प्रश्न, उपयुक्त निर्देश, प्रस्तावना, परिशिष्ट आदि की यथार्थता एवं उपयुक्तता, सहायक पुस्तकों की सूची आदि का समुचित समावेश।

8. पाठ्य–पुस्तक की बाह्य आकृति–पाठ्य–पुस्तकों के चयन के समय पुस्तक के आकार, पृष्ठ संख्या, कागज, मुद्रण, जिल्दसाजी, आवरण पृष्ठ की आवश्यकता आदि तथ्यों पर भी ध्यान देना चाहिए।

9. प्रकाशन–(1) पुस्तक के प्रकाशक की विश्वसनीयता एवं प्रसिद्धि, (2) प्रकाशन की तिथि।

10. मूल्य–पुस्तक का मूल्य जनसामान्य को ध्यान में रखकर निर्धारित किया जाना चाहिए तथा यथासम्भव न्यूनतम होना चाहिए।

प्रश्न 7. पाठ्य–पुस्तक तथा पाठ्य–वस्तु में क्या सम्बन्ध है? समझाइए।

(इंदौर 2017, 18; रीवा 22; छतरपुर 22)

उत्तर– पाठ्य–वस्तु एवं पाठ्य–पुस्तक में अंतः सम्बन्ध–पाठ्य–वस्तु तथा पाठ्य–पुस्तक एक–दूसरे के बगैर अधूरे हैं। पाठ्यक्रम के बगैर पाठ्य–पुस्तक का निर्माण नहीं किया जा सकता है। इनके अंतःसम्बन्ध को निम्न बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है–

(1) पाठ्यक्रम निर्धारित पाठ्य–विषयों के शिक्षण हेतु अन्तर्वस्तु, उसके ज्ञान की सीमा, छात्रों द्वारा प्राप्त किये जाने वाले कौशल तथा शैक्षिक सत्र में पढ़ाये जाने वाले व्यक्तिगत पहलुओं एवं निष्कर्षों की विस्तृत जानकारी प्रदान करता है। जबकि पाठ्य–पुस्तक विषयों के ज्ञान को एक स्थान पर पुस्तक के रूप में संगठित ढंग से प्रस्तुत करने का काम करती है।

(2) यह शिक्षकों एवं छात्रों के लिए मार्गदर्शक का कार्य करती है तथा छात्रों एवं शिक्षकों को जानकारी प्राप्त होती है कि विषय–वस्तु का अध्यापन किस प्रकार करना चाहिए।

(3) यह बताती है कि किस स्तर पर छात्रों को किस विषय का कितना ज्ञान देना है, जबकि पाठ्य–पुस्तकें उस संरचना पर कार्य करके एवं संरचना को वास्तविकता में परिणित करती है।

(4) पाठ्य–पुस्तकें सदैव पाठ्य–वस्तु के शैक्षिक उद्देश्यों को ध्यान में रखकर बनायी जाती हैं।

(5) पाठ्य–वस्तु भले ही प्रत्यक्ष हो, पाठ्य–पुस्तकों के अभाव में शिक्षण कार्य अबाध रूप से नहीं चल सकता है, क्योंकि किसी भी पाठ्य–वस्तु को अधिक समय तक स्मृति में संजोकर नहीं रखा जा सकता है। पाठ्य–पुस्तकें ही विषय–वस्तु को संकलित करने में तथा भूल जाने पर स्मृति तक पुनः लाने में सहायता करती हैं।

(6) पाठ्य–पुस्तक के आधार पर ही विषय–वस्तु का कक्षा कार्य तथा मूल्यांकन सम्भव हो जाता है। पाठ्य–वस्तु को अंशों में तथा इकाइयों में विभक्त करके पाठ्य–पुस्तकें निर्मित की जाती हैं, जिसकी सहायता से शिक्षक शिक्षण देता है। इसके बाद वह छात्र की परीक्षा या टेस्ट लेकर पाठ्य–वस्तु का मूल्यांकन करता है।

(7) पाठ्य–पुस्तकों में पाठ्यवस्तु को तार्किक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। पाठ्य–वस्तु को आकार दिया जाता है और शिक्षकों को कक्षा स्तर के अनुसार शिक्षण कार्य करने का बोध कराया जाता है।

(8) पाठ्य–पुस्तकें कक्षा शिक्षण की अनेक कमियों को भी दूर करती हैं, क्योंकि कक्षा शिक्षण के समय शिक्षक सभी छात्रों पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान नहीं दे सकता है, जबकि पाठ्य–पुस्तकों की सहायता से छात्र व्यक्तिगत रुचि और गति के साथ अध्ययन कर सकता है।

(9) पाठ्य–वस्तु ज्ञान का एक खाका (नक्शा, मानचित्र) होता है। योग्य शिक्षकों का ज्ञान भी अव्यवस्थित होता है। अतः पाठ्य–पुस्तकों के अभाव में योग्य शिक्षक न तो ठीक से पढ़ा सकते हैं और न ही छात्र उस ज्ञान को संकलित रख सकते हैं।

(10) दूर–दराज के क्षेत्रों में रहने वाले तथा पत्राचार के माध्यम से शिक्षण ग्रहण करने वाले छात्रों को पाठ्य–वस्तु पुस्तकों के रूप में ही प्राप्त होते हैं जिससे वे स्वाध्याय के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करते हैं।

(11) पाठ्य–वस्तु, पाठ्य–पुस्तक के रूप में उपलब्ध हो जाने पर प्रत्येक छात्र को यह स्पष्ट हो जाता है कि उसे परीक्षा की तैयारी के लिए कितना पाठ्य–वस्तु पढ़नी है और किस प्रकार पढ़ना है, इन्हें (पाठ्यवस्तु को) कई बार पढ़ना तथा दोहराना पड़ता है। इसमें पाठ्य–पुस्तकें उनकी सहायता करती हैं।

अतः हम कह सकते हैं कि पाठ्य–वस्तु तथा पाठ्य–पुस्तक एक–दूसरे के बगैर अधूरे हैं। अर्थात् पाठ्य–वस्तु एवं पाठ्य–पुस्तक एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

प्रश्न 8. प्रचलित पाठ्य–पुस्तकों की कमियाँ/दोष लिखिए।

उत्तर– पाठ्य–पुस्तकों की उल्लेखित विशेषताओं के बावजूद इनमें कुछ कमियाँ भी विद्यमान हैं जो इस प्रकार हैं–

1. अप्रचलित सूचनाएँ–छात्रों के लिए मान्य पाठ्य–पुस्तकें पारम्परिक और पुरानी हैं। इनके साथ छात्र विषय के व्यापक ज्ञान में रुचि नहीं ले सकते हैं।

2. अनुसंधान की कमी– प्रचलित पाठ्य–पुस्तकों में आधुनिक प्रयोगों व खोजों को नहीं लिखा गया है। इनमें वास्तविक क्रियाओं, प्रयोगों तथा सामाजिक समस्याओं को स्थान नहीं दिया गया है। इनको पढ़ने से छात्र केवल सैद्धांतिक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। प्रायोगिक ज्ञान से वे वांछित रह जाते हैं।

3. किशोरावस्था की आवश्यकताओं की कमी–हमारी शिक्षण विधि शिक्षक केन्द्रित है, इस कारण पाठ्य–पुस्तकें किशोरों की आवश्यकताओं रुचियों एवं अभिवृत्तियों पर जोर नहीं देती है। मनोवैज्ञानिक विचार से यह एक निराशाजनक परिस्थिति है।

4. अवसर की कमी–शिक्षा के क्षेत्र में प्रचलित पाठ्य–पुस्तकें कठोरता तथा एक समानता को प्रोत्साहन देती हैं। यह पाठ्य–वस्तु को रटने की जगह देती है, तर्क एवं अवसर को विकसित नहीं करती है।

5. गुणवत्ताहीन प्रस्तुतीकरण–वर्तमान पाठ्य–पुस्तकें पाठ्य–वस्तु के अनुसार लिखी जाती है। यह बालक की भाषा, रुचि, मानसिक स्तर एवं स्थानीय स्थितियों के अनुरूप नहीं हैं। यह छात्रों को सीखने के लिए प्रेरित नहीं करती है। प्रस्तुतीकरण में इस कमी के कारण छात्र के विकास एवं शिक्षक की शिक्षण विधि पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है।

6. संकीर्ण आदर्शों को प्रसारित करती है– वर्तमान पाठ्य–पुस्तक संकीर्ण विचारों एवं आदर्शों को प्रसारित करती है। वे बालक को जातीय अन्तर विद्वेष, पारस्परिक घृणा एवं संकीर्ण राष्ट्रीयता–वाद की शिक्षा देती है। इसलिए पाठ्य–पुस्तकों का अध्ययन समाज के लिए लाभदायक न होकर हानिकारक है।

7. उच्च मूल्य– दूसरे देशों की तुलना में हमारे देश में उपलब्ध पाठ्य–पुस्तकें उच्च मूल्य की होती हैं। क्योंकि भारतीय प्रकाशक ज्यादा–से–ज्यादा मुनाफा कमाना चाहते हैं। उच्च मूल्य के कारण कई छात्र पाठ्य–पुस्तकें खरीद नहीं पाते हैं। पाठ्य–पुस्तकों की कमी उनके विकास में बाधक होती है।

प्रश्न 9. भारत में स्कूली पाठ्यक्रम के प्रमुख मुद्दे व समस्याएँ क्या हैं ?

(भोपाल 2022; रीवा 22)

***अथवा*, वर्तमान में पाठ्यक्रम की मुख्य चुनौतियाँ एवं समस्याएँ कौन–कौन सी हैं ? बताइए।**

(छतरपुर 2021; छिंदवाड़ा 22; जबलपुर 22)

***अथवा*, माध्यमिक स्तर पर वर्तमान पाठ्यक्रम की चुनौतियाँ एवं समस्याओं की व्याख्या कीजिए।**

(ग्वालियर 2021)

***अथवा*, विद्यालयी पाठ्यचर्या के मुद्दे और समस्याओं की विवेचना कीजिए।**

(भोपाल 2022)

***अथवा*, पाठ्यक्रम के क्रियान्वयन संबंधी समस्याएँ कौन–सी हैं ?** **(छिंदवाड़ा 2022)**

उत्तर– माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार, हमारे प्रचलित माध्यमिक पाठ्यक्रम में निम्नलिखित दोष हैं–

1. संकुचित आधार–माध्यमिक शिक्षा के प्रचलित पाठ्यक्रम का निर्माण बालक की मनोवैज्ञानिक विशेषताओं तथा क्षमताओं एवं सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ण अवहेलना करते हुए केवल विश्वविद्यालयों की शिक्षा को दृष्टि में रखते हुए किया गया है। अतः इसका आधार अथवा दृष्टिकोण अत्यन्त संकुचित है।

2. पुस्तकीय एवं सैद्धांतिक ज्ञान पर बल– प्रचलित पाठ्यक्रम पुस्तकीय एवं सैद्धांतिक ज्ञान पर ही बल देता है। ऐसे पुस्तकीय एवं सैद्धांतिक ज्ञान को प्राप्त करके बालक व्यावहारिक जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने में असफल हो जाते हैं।

3. विषयों से अधिक बोझल–प्रचलित पाठ्यक्रम के अन्तर्गत आवश्यकता से अधिक विषयों को स्थान दिया गया है, चाहे वे बालकों के लिए उपयोगी हो अथवा नहीं। इन विषयों को बालकों की रुचियों तथा योग्यताओं के अनुसार भी छाँटा नहीं गया है।

4. विषयों में सह–संबंध–पाठ्यक्रम में जो विषय सम्मिलित किए गए हैं, उनमें आपस में सह–संबंध नहीं है। इन विषयों में समन्वय स्थापित करके नहीं पढ़ाया जाता है। इसके फलस्वरूप पाठ्यक्रम प्रभावहीन हो जाता है।

5. विविधता का अभाव–बालक तथा बालिकाओं की आवश्यकताएँ अलग–अलग होती हैं। उनके लिए पाठ्यक्रम भी अलग–अलग होना चाहिए। परन्तु वर्तमान पाठ्यक्रम उनकी विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयास नहीं करता है। इस प्रकार पाठ्यक्रम में विविधता का अभाव है।

6. परीक्षा केन्द्रित–प्रचलित पाठ्यक्रम का एक मात्र उद्देश्य बालक को परीक्षा के लिए तैयार करना है, अतः सभी शिक्षक परीक्षा में आने वाली सम्भावित विषय सामग्री को बताने में तथा बालक उसके रटने में हर समय जुट रहते हैं। इससे बालकों को किसी विषय का वास्तविक ज्ञान नहीं हो पाता है।

7. लचीलेपन का अभाव–पाठ्यक्रम को **नम्यता** (Flexibility) के सिद्धांत को लेकर नहीं बनाया गया है। इसमें लचीलेपन का अभाव है।

8. जीवन से असम्बन्धित– माध्यमिक शिक्षा आयोग के ही शब्दों में–"माध्यमिक पाठ्यक्रम का जीवन से कोई संबंध नहीं है, यह बालकों को जीवन के लिए तैयार करने में असफल रहा है, वहाँ से बाहर की दुनिया का उन्हें कोई अभ्यास नहीं कराता, जिसमें वे शीघ्र ही प्रवेश करने वाले हैं।"

9. सामाजिक जीवन से असम्बन्धित– प्रचलित पाठ्यक्रम में सम्मिलित विषयों का सामाजिक जीवन से संबंध नहीं है। बालक को इसमें सामाजिक जीवन की मुख्य–मुख्य क्रियाओं से परिचय नहीं हो पाता।

10. स्थानीय आवश्यकताओं की उपेक्षा– पाठ्यक्रम में छात्रों की स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में नहीं रखा गया है। नगर तथा ग्रामवासियों की आवश्यकताएँ भिन्न–भिन्न होती हैं, परन्तु इस पाठ्यक्रम में भिन्न–भिन्न वातावरण के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था नहीं की गई है।

11. समान पाठ्यक्रम– किशोरावस्था में व्यक्तिगत विभिन्नताएँ स्पष्ट हो जाती हैं, पर प्रचलित पाठ्यक्रम इन व्यक्तिगत विभिन्नताओं की अवहेलना करते हुए प्रत्येक बालक के लिए एक–सी ही विषय–वस्तु प्रस्तुत करता है। यह अमनोवैज्ञानिक है।

12. तकनीकी तथा व्यावसायिक विषयों की कमी–प्रचलित पाठ्यक्रम में तकनीकी तथा व्यावसायिक शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं है। इससे न तो हमारे बालकों में इसके प्रति महत्व की भावना जाग्रत हो रही है और न ही देश की वास्तविक औद्योगिक उन्नति हो पा रही है।

13. नैतिक तथा योग शिक्षा का अभाव– प्रचलित पाठ्यक्रम में योग तथा नैतिक शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं है। परिणामस्वरूप बालकों में अनुशासनहीनता तथा चरित्रहीनता दिन–प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। इसके लिए नैतिक तथा योग शिक्षा की आवश्यकता है।

प्रश्न 10. पाठ्यचर्या/पाठ्यक्रम एवं पाठ्य–वस्तु में अंतर स्पष्ट कीजिए।

***अथवा*, पाठ्य–वस्तु और विषय–वस्तु के अंतः संबंध को समझाइए।**

उत्तर–पाठ्यचर्या/पाठ्यक्रम एवं पाठ्य–वस्तु में अंतःसंबंध–पाठ्यचर्या/पाठ्यक्रम को 'Curriculum' तथा विषय–वस्तु को 'Syllabus' कहा जाता है। पाठ्यचर्या में ज्ञानात्मक, भावात्मक, क्रियात्मक तीनों पक्षों से संबंधित तथ्य स्पष्ट होते हैं। जबकि विषय–वस्तु में केवल ज्ञानात्मक पक्ष से संबंधित तथ्य की क्रमबद्धता होती है। इस प्रकार पाठ्यचर्या व्यापक होता है और विषय–वस्तु संकुचित होता है। **उदाहरणार्थ–**यह कहा जाए कि हाई स्कूल की पाठ्यचर्या तो इसके अंतर्गत माध्यमिक स्तर में पढ़ायें जाने वाले समस्त विषय के पढ़ने योग्य तथ्यों को क्रमिक रूपरेखा, शिक्षक के लिए निर्देश, पाठ्य–सहभागी क्रियाकलापों का विवरण आदि सभी समाहित होगा। जबकि पाठ्य–वस्तु माध्यमिक स्तर में पढ़ायें जाने वाले किसी एक विषय से संबंधित होगा। पाठ्यक्रम एवं पाठ्य–वस्तु में अंतर व्यक्त करते हुए **राबर्ट डोन्टर्स** ने ठीक ही लिखा है कि "पाठ्यचर्या विद्यालय में वर्ष भर विभिन्न विषयों में शिक्षक द्वारा शिक्षार्थियों को दिए जाने वाले ज्ञान की मात्रा के विषय में निश्चित जानकारी प्रस्तुत करता है, जबकि पाठ्य–वस्तु यह प्रदर्शित करता है कि शिक्षक किस प्रकार की शैक्षिक प्रवृत्तियों के माध्यम से पाठ्यचर्या की जरूरतों को पूरा करेगा।"

पाठ्यचर्या/पाठ्यक्रम एवं पाठ्य–वस्तु में अंतर–

आधार	पाठ्यक्रम/पाठ्यचर्या	पाठ्य–वस्तु
अर्थ	पाठ्यक्रम के अंतर्गत् वे सभी परिस्थितियाँ आती है जिनका प्रत्यक्ष संगठन व चयन बालकों के व्यक्तित्व में विकास लाने हेतु तथा व्यवहार में परिवर्तन लाने हेतु विद्यालय द्वारा चयन किया जाता है।	विषय–वस्तु से तात्पर्य किसी एक विशेष विषय की क्रमबद्ध अध्ययन सामग्री से है, जो कक्षाओं में पढ़ाई जाती है।
परिभाषा	**मुनरो के अनुसार**–"पाठ्यक्रम में वे सब क्रियायें सम्मिलित हैं जिनका हम शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के हेतु विद्यालय में उपयोग करते हैं।"	**हेनरी के अनुसार**–"पाठ्यक्रम केवल मुद्रित संदर्शिका है, जो यह बताता है कि शिक्षार्थी को क्या सीखना है एवं इसकी तैयारी पाठ्यचर्या विकास के कार्य का तर्क सम्मत सौपान है।"

अवधि	पाठ्यक्रम की अवधि सत्र के प्रारंभ से अंत तक होती है।	विषय–वस्तु का अध्ययन कक्षा में निश्चित कालखण्ड (अवधि में) कराया जाता है।
क्षेत्र	इसका क्षेत्र बहुत विस्तृत एवं व्यापक है।	इसका क्षेत्र बहुत सीमित होता है।
प्रकृति	यह बालक की क्रियाओं एवं अनुभवों का एक संगठन है, अतः व्यावहारिक है।	यह पुस्तकीय ज्ञान है जो व्यावहारिक नहीं है।
उद्देश्य	इसका उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास करना है।	इसका उद्देश्य केवल विषय का ज्ञान देना है।
स्वरूप	पाठ्यक्रम में व्यवसाय, ज्ञानोपार्जन, अभ्यास तथा क्रिया सम्मिलित है।	पाठ्यवस्तु में किसी विशेष विषय से संबंधित सीमित सामग्री कक्षा के स्तर के अनुसार होती है।
सिद्धांत	यह बालक के सर्वांगीण विकास के सिद्धांत पर आधारित होता है।	यह विषय संबंधित सैद्धांतिक ज्ञान पर आधारित है।
दृष्टिकोण	इसका दृष्टिकोण व्यापक है जो बालक के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र का विकास करता है।	इसका दृष्टिकोण संकुचित होता है।
आधार	यह शिक्षा के दर्शन एवं उद्देश्य, वातावरण, सामाजिक, कुशलता, बालक की आवश्यकताओं एवं रुचियों तथा अनेक तथ्यों पर आधारित हैं।	पाठ्यवस्तु का आधार विषय से संबंधित सिद्धांत, इतिहास आदि होते हैं।
प्रभाव	यह बालक के प्रत्येक क्षेत्र के विकास को प्रभावित करता है।	यह केवल विशिष्ट विषय के ज्ञान को प्रभावित करता है।
निर्धारण	परिवार, परम्परायें, धार्मिक संगठन, शिक्षक, शिक्षार्थी, समाज की प्रकृति, विभिन्न सामाजिक एवं राजनैतिक संगठन पाठ्यक्रम निर्माण के निर्धारक तत्व है।	विषय–वस्तु/पाठ्य–वस्तु पूर्व निर्धारित होती है।
क्रियाएँ	पाठ्यक्रम के अंतर्गत वे सभी अनुभव आ जाते हैं। जिन्हें छात्र विद्यालय जीवन में प्राप्त करता है तथा जिनमें कक्षा के अंदर व बाहर आयोजित की जाने वाली पाठ्य–सहगामी क्रियाएँ सम्मिलित है।	पाठ्य–वस्तु निर्धारित पाठ्य–विषयों से संबंधित क्रियाओं का ही समावेश होता है।
शिक्षण में योगदान	पाठ्यक्रम, पाठ्य–वस्तु को देने के लिए प्रयुक्त विधि का निर्धारण करता है।	पाठ्य–वस्तु शिक्षण की विषय–वस्तु का निर्धारण करती है।
महत्व	यह बालक का शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक, नैतिक, संवेगात्मक तथा आध्यात्मिक विकास करता है।	यह बालकों को केवल परीक्षा हेतु विषय का ज्ञान प्रदान करता है जिसका उपयोग जीवन के हर क्षेत्र में संभव नहीं है।

प्रश्न 11. पाठ्यक्रम एवं पाठ्यचर्या में अंतर स्पष्ट कीजिए।
(उज्जैन 2021; छिंदवाड़ा 22; जबलपुर 22; ग्वालियर 22)

***अथवा*, पाठ्यचर्या किस प्रकार पाठ्यक्रम से अलग है ?** **(भोपाल 2022)**

उत्तर–पाठ्यक्रम एवं पाठ्यचर्या में अंतर–

क्र.	पाठ्यक्रम	पाठ्यचर्या
1.	यह वह मार्ग है जिस पर चलकर लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है।	पाठ्यचर्या लक्ष्य पर पहुँचने का स्थान है।
2.	पाठ्यक्रम में पाठ्यवस्तु का व्यवस्थित स्वरूप है जो कई विद्वानों के सहयोग से निर्मित होता है।	पाठ्यचर्या गन्तव्य स्थान तक पहुँचने तक की प्रक्रिया का विषय ज्ञान है।
3.	इसका अध्ययन क्षेत्र संकुचित होता है, जिसमें मात्र इस बात का ज्ञान होता है कि विविध स्तरों पर बालकों को विभिन्न विषयों का लगभग कितना ज्ञान प्राप्त हुआ।	इसका अध्ययन क्षेत्र पाठ्यक्रम की तुलना में अत्यंत व्यापक होता है जो छात्र के जीवन के लगभग सभी पक्षों से संबंधित होता है।
4.	पाठ्यक्रम में रटने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करके परीक्षा में सफल होना ही मुख्य लक्ष्य माना जाता है।	पाठ्यचर्या तथ्यों को रटने की उपेक्षा करता है एवं बालक के सर्वांगीण विकास को प्राथमिकता देता है।

प्रश्न 12. पाठ्यचर्या विकास को प्रभावित करने वाले कारक कौन–से हैं ? लिखिए।
(जबलपुर 2022; ग्वालियर 22)

उत्तर–पाठ्यचर्या विकास को प्रभावित करने वाले कारक– पाठ्यक्रम का सम्पादन शैक्षिक तथा सामाजिक परिस्थितियों में किया जाता है। इसलिए शैक्षिक तथा सामाजिक घटक पाठ्यक्रम को प्रभावित करते हैं। यहाँ पर पाठ्यक्रम विकास को प्रभावित करने वाले कारकों का विवेचन किया गया है–

1. शिक्षा व्यवस्था–शिक्षा के इतिहास से यह विदित होता है कि अतीत काल से ही शिक्षा व्यवस्था और पाठ्यक्रम का गहन संबंध रहा है और एक–दूसरे को प्रभावित करते रहे हैं। पाठ्यक्रम प्रायः लचीला तथा परिवर्तनशील रहा है। छोटे बालकों का पाठ्यक्रम अनुभव केन्द्रित रहा है। माध्यमिक स्तर विषय केन्द्रित रहा है। शिक्षा व्यवस्था के बदलने के साथ पाठ्यक्रम का प्रारूप भी बदल जाता है।

2. परीक्षा प्रणाली–परीक्षा प्रणाली पाठ्यक्रम को प्रभावित करती है। निबंधात्मक परीक्षा के पाठ्यक्रम का स्वरूप वस्तुनिष्ठ परीक्षा से बिल्कुल ही भिन्न प्रकार का होता है। वस्तुनिष्ठ परीक्षा में पाठ्यवस्तु के सूक्ष्म पाठ्यवस्तु पर ही प्रश्न पूछे जाते हैं। जबकि निबंधात्मक परीक्षा में पाठ्यवस्तु के व्यापक स्वरूप पर प्रश्न पूछे जाते हैं। निबंधात्मक परीक्षा से उच्च उद्देश्यों का मापन किया जाता है जबकि वस्तुनिष्ठ से निम्न उद्देश्यों का ही आकलन किया जाता है।

3. शासन पद्धति–शिक्षा द्वारा राष्ट्र तथा समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है। शासन प्रणाली बदलने से पाठ्यक्रम के प्रारूप को बदलना होता है। केन्द्र तथा राज्य स्तर पार्टी की सत्ता बदलने से भी पाठ्यक्रम के प्रारूप पर प्रभाव पड़ता है। पाठ्यक्रम के विशिष्ट प्रारूप केन्द्रीय सरकार प्रभावित करती है। रूस में शासन सत्ता बदलने से पाठ्यक्रम का प्रारूप बिल्कुल ही बदला जा रहा है। भारत राज्य या प्रदेश द्वारा पाठ्यक्रम व्यवस्थित की जाती है। इसलिए शिक्षा का राष्ट्रीय प्रारूप नहीं है। सभी प्रदेशों के पाठ्यक्रम के प्रारूप विभिन्न स्तरों पर अलग–अलग है।

4. अध्ययन समिति–पाठ्यक्रम के प्रारूप का निर्माण अध्ययन समितियों द्वारा किया जाता है। विभिन्न स्तरों पर अध्ययन समितियों के द्वारा पाठ्यक्रम का निर्माण तथा सुधार किया जाता है। अध्ययन समिति के सदस्यों की सूझबूझ तथा अनुभवों द्वारा ही पाठ्यक्रम के प्रारूप को विकसित करते हैं। इसलिये इन सदस्यों की अभिरुचियों, अभिवृत्तियों तथा मानसिक क्षमताओं का सीधा प्रभाव

पड़ता है। साधारणतः अध्ययन समिति के अध्यक्ष ही पाठ्यक्रम का प्रारूप बनाते हैं और बदलते है अन्य सदस्य मात्र अनुमोदन ही करते हैं।

5. राष्ट्रीय शिक्षा आयोग तथा समितियाँ—शिक्षा में सुधार और विकास हेतु राष्ट्रीय स्त आयोग तथा समितियाँ गठित की जाती हैं। भारत में स्वतंत्रता के बाद से अनेक आयोग तथा समितिय गठित की गई। उन्होंने विश्वविद्यालय, माध्यमिक तथा प्राथमिक स्तर पर सुधार के लिए सुझाव दि और उन सुझावों को लागू करने का प्रयास किया गया जिससे पाठ्यक्रम के प्रारूप को भी बदलन पड़ा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में व्यावसायिक शिक्षा को अधिक महत्व दिया है। इसलिए माध्यमिक स्त पर व्यावसायिक पाठ्यक्रमों का प्रारूप विकसित किया गया है। शिक्षा के आयोगों तथा समितियों के सुझाव के आधार पर भी पाठ्यक्रम का प्रारूप प्रभावित होता है।

6. सामाजिक परिवर्तन—सामाजिक परिवर्तन में आर्थिक परिवर्तन की गति अधिक तीव्र है इसलिए ये आर्थिक तथा भौतिक परिवर्तन की गति अधिक तीव्र है इसलिये ये आर्थिक तथा भौतिक परिवर्तन भी पाठ्यक्रम को प्रभावित करते हैं। विज्ञान तथा तकनीकी ने सामाजिक जीवन को अधिक प्रभावित किया है। इसलिए व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के साथ तकनीकी के प्रशिक्षण (कम्प्यूटर) आदि संबंधी नये पाठ्यक्रम विकसित किये जा रहे हैं। शिक्षा के अंतर्गत दूरवर्ती शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ है जिसमें माध्यमों तथा सम्प्रेषण विधियों को विशेष महत्व दिया जाता है।

प्रश्न 13. आधुनिक शिक्षा में राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना (एन.सी.एफ.) के योगदान की चर्चा कीजिए। **(ग्वालियर 2022)**

उत्तर—राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना, 2005 (NCF), राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के अनुसार ''राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली को विकसित करने का एक साधन है तथा शैक्षिक घटकों के साथ–साथ यह भारत की भौगोलिक एवं सांस्कृतिक वातावरण की विविधता का उत्तरदायित्व निभाते हुए मूल्यों के सामान्य आधार निश्चित कर सके।''

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 प्रारंभ करने के लिए 21 फोकस समूह बनाए गए जिन्होंने विद्यालयीन शिक्षा का गहनता से अध्ययन किया और राष्ट्रीय स्तर पर चर्चा करने के पश्चात् इन्हें एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा प्रकाशित किया गया। इस पाठ्यचर्या के कुछ प्रारंभिक निर्णय निम्नलिखित हैं—

यह पाठ्यचर्या, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 के महत्वपूर्ण निर्णय जैसे–मातृभाषा शिक्षा संबंधित निर्णय, शिक्षा का माध्यम, शिक्षा के विभिन्न स्तरों के लिए सामान्य संरचना 10 + 2 सामाजिक सशक्ति, धर्म निरपेक्षता, राष्ट्रीय एकता और उनसे संबंधित तमाम शैक्षिक प्रविधि उसी प्रकार बनी रहेगी। इस पाठ्यचर्या में आधारभूत भाग, परिप्रेक्ष्य, अधिगम और ज्ञान, विषय संबंधित परिचर्चा तथा संगठन आदि पर बल दिया गया है।

राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना, 2005 (NCF) का विद्यालयीन शिक्षा में योगदान—राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना का विद्यालयीन शिक्षा में निम्नलिखित योगदान है—

(1) एन.सी.एफ. 2005 में विद्यालयीन शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर चर्चा की गई है।

(2) इसके लिए 21 केन्द्र समूह (focus group) बनाए गए थे।

(3) एन.सी.एफ. 2005 का मूल आधार भारतीय संविधान है– धर्म निरपेक्ष, समतावादी बहुलतावादी, समाज जो सामाजिक न्याय व समानता के प्रमुख मूल्यों पर आधारित है।

(4) ज्ञान और सूचना में विभेद करना।

(5) शिक्षण रटने के स्थान पर बोध के लिए।

(6) बालक को संसार के ज्ञान के लिए क्रिया एक प्रमुख साधन है। विद्यार्थियों को स्व–अध्ययन का अवसर मिले, प्राकृतिक संसार तथा सामाजिक वातावरण की खोज कर सके।

(7) विद्यार्थी स्वयं ज्ञान का निर्माण कर सके।

(8) पाठ्यचर्या समता, समावेशी शिक्षा के लिए।

(9) पाठ्यचर्या का बोझ कम किया जाए।

(10) पर्यावरण शिक्षा को अन्य स्कूली विषयों के साथ एकीकृत किया जाए।
(11) एक मानवीय, छात्र–मित्रवत् मूल्यांकन प्रणाली विकसित की जाए।
(12) ग्रेडिंग पर बल दिया जाए।
(13) विद्यालय प्रणाली और अन्य नागरिक समूह में भागीदारी बनाई जाए।
(14) विवेचनात्मक शिक्षा शास्त्र पर बल दिया जाए।
(15) शिक्षा में गुणवत्ता और उत्तरदायित्व को निश्चित किया जाए।
(16) अधिगम में विद्यार्थी की सक्रियता सुनिश्चित करना।
(17) अधिगम में चिंतन की सरलता की उपलब्धता।
(18) अधिगम में शैक्षिक तकनीकी की भव्यता।
(19) समृद्ध, सम्पोषित, अनुभावात्मक अधिगम वातावरण उपलब्ध कराना।
(20) सम्प्रेषण एवं सहभागिता को प्रोत्साहित करना।

प्रश्न 14. पाठ्यचर्या निर्माण किस प्रकार पाठ्यचर्या विकास से अलग है ? (इंदौर 2023)

उत्तर–पाठ्यचर्या निर्माण और पाठ्यचर्या विकास में अंतर–

क्र.	पाठ्यचर्या निर्माण	पाठ्यचर्या विकास
1	यह किसी कक्षा विशेष के विषय विशेष की पाठ्यचर्या को अंतिम रूप देने की प्रक्रिया है। यह पाठ्यचर्या का उपयोगी आवश्यकता आधारित तथा समग्र रूप देने से संबंधित है।	पाठ्यचर्या विकास पाठ्यचर्या प्रारूप के निर्धारण के बाद पाठ्यचर्या के नियोजन विषयवस्तु व अधिगम अनुभवों के चयन व नियोजन, शिक्षण अधिगम विधियों एवं मूल्यांकन की आयोजना है।
2	पाठ्यचर्या निर्माण पाठ्यचर्या प्रारूप व पाठ्यचर्या विकास के बाद उसे समग्र रूप देने की प्रक्रिया है।	पाठ्यचर्या विकास पाठ्यचर्या निर्माण की द्वितीय सीढ़ी है।
3	पाठ्यचर्या निर्माण के अंतर्गत पाठ्यचर्या की रूपरेखा को अंतिम रूप दिया जाता है।	पाठ्यचर्या विकास में आवश्यकता व अनुभव आधार का कार्य करते हैं।
4	पाठ्यचर्या निर्माण में स्थिति विश्लेषण, लक्ष्य और विषय सामग्री का चयन सोपान आते हैं।	पाठ्यचर्या विकास निरंतर गतिवान, अंतहीन चक्रीय प्रणाली है जिसमें शिक्षण उद्देश्य, अनुदेशात्मक प्रारूप है। मूल्यांकन पृष्ठ पोषण सम्मिलित है।
5	पाठ्यचर्या निर्माण निरंतर बदलाव व सुधार करता रहता है।	पाठ्यचर्या विकास में पाठ्यचर्या का बदलाव और पाठ्यचर्या में सुधार सम्मिलित है।
6	पाठ्यचर्या निर्माण में पाठ्यक्रम प्रारूप तथा पाठ्यक्रम विकास दोनों समाहित हैं।	पाठ्यचर्या विकास में अधिगम अनुभव तथा आवश्यकताओं के आधार पर होता है।
7	पाठ्यचर्या निर्माण विभिन्न आधारों तथा सिद्धांतों के आधार पर तैयार होता है।	पाठ्यचर्या विकास में वे सभी तत्व आ जाते हैं जो शिक्षा के विस्तार और विकास के लिए आवश्यक है।

8	पाठ्यचर्या निर्माण में पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धांतों का ध्यान रखा जाता है ताकि समुचित पाठ्यचर्या निर्मित हो सकें।	पाठ्यक्रम विकास मूलतः पाठ्यचर्या के नियोजन पाठ्यचर्या के संगठन और संपादन से जुड़ा है।
9	पाठ्यचर्या निर्माण प्रारूप व विकास का परिणाम है।	पाठ्यक्रम विकास नियोजन संगठन व संपादन है।
10	यह पाठ्यचर्या निर्माण का अंतिम चरण है।	यह पाठ्यचर्या निर्माण का द्वितीय चरण है।

प्रश्न 15. किस प्रकार मनोविज्ञान पाठ्यचर्या को आधार प्रदान करता है ? कोई दो उदाहरण दीजिए। **(इन्दौर 2023)**

उत्तर—मनोवैज्ञानिक आधार में बालकों की स्वाभाविक प्रवृत्तियों, क्षमताओं, रुचियों, योग्यताओं अथवा आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम का निर्धारण किया जाता है अर्थात् मनोवैज्ञानिक आधार में बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम का निर्धारण किया जाता है जिसमें बालकों की रुचियों को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम का निर्माण तथा जिससे बालक रुचिपूर्वक क्रियाएँ सम्पूर्ण कर सकें।

मनोविज्ञान के विकास ने शिक्षा के हर एक पक्ष को प्रभावित किया है। शिक्षा के मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति ने शिक्षा के उद्देश्यों, शिक्षण पद्धति, पाठ्यक्रम, शिक्षा के संगठन, अनुशासन की अवधारणा, शिक्षक की भूमिका आदि सभी पक्षों को नया आयाम प्रदान किया है। मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के अनुसार शिक्षा बाल केन्द्रित होनी चाहिए तथा शिक्षा के द्वारा बालक के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन आना चाहिए। मनोविज्ञान मानव विकास के विभिन्न पक्षों की खोज एवं उनके अध्ययन में निरंतर लगा हुआ है। इसके साथ ही खेल मनोविज्ञान, नैतिक विकास का मनोविज्ञान, चिंतन–मनोविज्ञान आदि का अध्ययन भी किया जा रहा है। इन सबका पाठ्यक्रम पर प्रभाव पड़ा है तथा निरंतर पड़ रहा है। मनोविज्ञान के अध्ययन से यह ज्ञात करने का भी प्रयास किया जाता रहा है कि शिक्षक विद्यार्थियों के साथ कैसा व्यवहार करते हैं तथा उनकी अधिगम तत्परता को ध्यान में रखते हुए अंतर्वस्तु को किस रूप में व्यवस्थित करते हैं। यहाँ पर यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि मनोविज्ञान के विकास से पूर्व विद्यार्थी की अधिगम तत्परता की बात शिक्षकों के ध्यान में आती रही होगी, इसमें बहुत अधिक संदेह है। विभिन्न नवीन शिक्षण विधियाँ भी मनोविज्ञान के सिद्धांतों पर ही आधारित है।

मनोविज्ञान के विकास के परिणामस्वरूप अनेक देशों में बालकों की आवश्यकताओं के आधार पर पाठ्यक्रम निर्माण का प्रयास किया गया है। संयुक्त राज्य अमेरिका में तो विकास आवश्यकता पाठ्यक्रम के रूप में एक नई दृष्टि विकसित हुई है। इसके अंतर्गत शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण बालकों के सामान्य विकास और उसे बल प्रदान करने वाली स्थितियों के लिए आवश्यक जैविक एवं मनोवैज्ञानिक उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया जाता है। इसी प्रकार अनुभव आधारित पाठ्यक्रम भी मनोविज्ञान की ही देन है।

पाठ्यक्रम की पृष्ठभूमि में मनोवैज्ञानिक दृष्टि सर्वत्र व्याप्त रहती है फिर भी इसके प्रमुख निर्धारक निम्नलिखित मनोवैज्ञानिक तत्वों को माना जा सकता है–

(1) परिपक्वता एवं विकास,
(2) व्यक्तिगत भिन्नता,
(3) अभिरुचि,
(4) अभिप्रेरणा,
(5) अधिगम प्रक्रिया एवं अधिगम का स्थानांतरण,
(6) मानव प्रकृति एवं उसमें परिवर्तन।

प्रश्न 16. दूरस्थ शिक्षा व मुक्त शिक्षा के मध्य क्या अंतर है ? **(इंदौर 2023)**

उत्तर–दूरस्थ शिक्षा और मुक्त शिक्षा के मध्य अंतर–देश और दुनिया में लगातार प्रगति हो रही है तथा इस प्रगति में शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। प्रत्येक देश की प्रगति के लिए उसके नागरिकों का शिक्षित होना जरूरी होता है। इसके साथ ही शिक्षा व्यक्ति के व्यक्तित्व चरित्र, ज्ञान के विकास में भी काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कई लोग मानते हैं कि दूरस्थ शिक्षा और मुक्त शिक्षा यह दोनों ही शिक्षण का एक ही प्रकार है। लेकिन ऐसा नहीं है क्योंकि इन दोनों के बीच परस्पर अर्थ, स्वरूप और व्यवसाय की दृष्टि से अंतर देखा जा सकता है। आइए जानते हैं कि आखिर मुक्त शिक्षा और दूरस्थ शिक्षा क्या है ?

दूरस्थ शिक्षा क्या है ? दूरस्थ शिक्षा के नाम से ही पता चलता है कि यह शिक्षा किसी दूरी पर रहकर हासिल की जा सकती है। इस तरह की शिक्षा में शिक्षा देने वाले तथा शिक्षा हासिल करने वाले के बीच दूरी विद्यमान होती है। इस तरह की शिक्षा में शिक्षक और विद्यार्थियों के बीच दूरी के साथ विद्यार्थी और शिक्षण संस्था के बीच भी दूरी होती है।

मुक्त शिक्षा क्या है ? हमारे बीच ऐसे कई लोग होते हैं जो कई कारणों जैसे–सामाजिक, आर्थिक, नौकरी या फिर कुछ परिस्थितियों की वजह से अपनी पढ़ाई को जारी नहीं रख पाते। इन लोगों के लिए मुक्त विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान की जाने वाली मुक्त शिक्षा, अपनी शिक्षा को जारी रखने का एक बेहतर विकल्प उपलब्ध करवाता है। मुक्त शिक्षा में विद्यार्थी किसी आयु सीमा के बिना किसी भी पाठ्यक्रम में प्रवेश ले सकते हैं। इसका लाभ वे भी ले सकते हैं जिन्होंने अपनी पढ़ाई छोड़ दी है तथा वे आगे अपनी पढ़ाई को जारी रखने के इच्छुक है। मुक्त शिक्षा हेतु कुछ शिक्षण संस्थान निर्धारित होते हैं।

दूरस्थ शिक्षा और मुक्त शिक्षा के बीच अंतर–मुक्त शिक्षा और दूरस्थ शिक्षा के बीच निम्नलिखित अंतर होते हैं–

(1) मुक्त शिक्षा के लिए कुछ विश्वविद्यालय होते हैं जहाँ से शिक्षा हासिल की जा सकती है। वहीं दूरस्थ शिक्षा विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा प्रदान की जा सकती है। दूरस्थ शिक्षा हासिल करने के लिए शिक्षण संस्थानों में नहीं जाना पड़ता।

(2) मुक्त शिक्षा हासिल करने वाले विद्यार्थियों के पास विकल्प होता है कि वे अपना अध्ययन केन्द्र और परीक्षा केन्द्र स्वयं चुन सकते हैं जबकि दूरस्थ शिक्षा में विद्यार्थियों को अध्ययन केन्द्र, परीक्षा केन्द्र चुनने का विकल्प नहीं मिलता है क्योंकि वे ऑनलाइन माध्यम से पढ़ाई करते हैं।

(3) मुक्त शिक्षा में विद्यार्थी अपने साथियों और शिक्षकों के साथ सामाजिक संपर्क स्थापित करता है लेकिन दूरस्थ शिक्षा में ऐसा नहीं होता।

(4) दूरस्थ शिक्षा के लिए कोई दिन निर्धारित नहीं है आप अपनी सुविधानुसार शिक्षा कर सकते हैं। वहीं ऑनलाइन शिक्षा में शनिवार और रविवार को शिक्षा दी जाती है।

(5) मुक्त शिक्षा में विद्यार्थियों की उपस्थिति महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है क्योंकि जो विद्यार्थी व्यावहारिक पाठ्यक्रमों में होते हैं उन्हें कक्षा में 75 फीसदी उपस्थिति दर्ज करवानी होती है जबकि दूरस्थ शिक्षा में कोई भी नियमित उपस्थिति की जरूरत नहीं होती।

(6) मुक्त शिक्षा में आपको पुस्तकालय की सुविधा मिलती है जबकि दूरस्थ शिक्षा में आपको यह सुविधा नहीं मिलती।

(7) मुक्त शिक्षा आपको प्रयोगशाला की सुविधा मुहैया करवाता है लेकिन दूरस्थ शिक्षा ऐसा नहीं करता।

(8) दूरस्थ शिक्षा की तुलना में मुक्त शिक्षा की डिग्री ज्यादा मायने रखती है।

निष्कर्ष–ऊपरी तौर पर देखा जाए तो मुक्त शिक्षा और दूरस्थ शिक्षा की प्रणाली एक–दूसरे से काफी मिलती–जुलती है क्योंकि इन दोनों का उद्देश्य ही सभी लोगों को समान अवसर प्रदान करना है जिससे सामाजिक व शैक्षणिक असमानता को दूर किया जा सके। यह उन विद्यार्थियों के लिए काफी अच्छा विकल्प साबित होता है जो अपनी शिक्षा किसी शिक्षण संस्थानों द्वारा पूरी करने में सक्षम नहीं हो पाते। यह दोनों ही तरह की शिक्षा लोगों को ज्ञान और कौशल हासिल करने के समान अवसर उपलब्ध करवाती है।

प्रश्न 17. मुक्त विद्यालय शिक्षा की पाँच सीमाएँ लिखिए। (इंदौर 2023)

उत्तर–मुक्त विद्यालय शिक्षा की सीमाएँ निम्नलिखित हैं–

1. जिंदगी में अनुशासन की कमी–विद्यालयी जीवन विद्यार्थियों के जीवन में एक अनुशासन बनाकर रखती है। प्रतिदिन सुबह जल्दी उठने से दिन की अच्छी शुरुआत होती है। लेकिन अगर विद्यार्थी स्कूल नहीं जाते हैं तो वो यह सभी अच्छी आदतें नहीं सीख पाते जो नियमित अनुशासन से आती है।

2. एक्स्ट्रा करीकुलर रिकॉर्ड में कमी आना –विद्यार्थियों के प्रतिदिन विद्यालय न जाने से न केवल पढ़ाई का ही नुकसान होता है बल्कि इसके साथ–साथ वे अन्य सहायक गतिविधियाँ भी नहीं सीख पाते जो भावी जीवन में बहुत सहायक होती है।

3. नई चीजें सीखने का सुनहरा मौका गँवाना–विद्यालय में विद्यार्थियों में पढ़ाई के साथ–साथ कई नई चीजें सीखने के अवसर मिलते हैं। जैसे कि खेल प्रतियोगिताएँ, ओलम्पियाड में भाग लेने के अवसर और स्किल्स ट्रेनिंग इत्यादि। अगर विद्यार्थी नियमित विद्यालय नहीं जाएँगे तो उन्हें ऐसे अवसर नहीं मिल पायेंगे जहाँ उन्हें अपनी प्रतिभा दिखाने का मौका मिले।

4. अध्ययन का लय बिगड़ जाना–बच्चा अगर एक दिन भी विद्यालय नहीं जाता है तो कक्षा में पढ़ाए गए विषय को समझने में मुश्किल होती है जिसके चलते उन्हें आगे पढ़ने में मुश्किल होती है और अध्ययन की लय बिगड़ जाती है।

5. सामाजिक सम्पर्क नहीं बन पाते–नियमित विद्यालयों में विद्यार्थी एक–दूसरे के साथ इंटरैक्ट करते हैं तथा विद्यालयीन गतिविधियों में भाग लेते हैं। लेकिन यह सब गतिविधियाँ जिनसे विद्यार्थी संचार कौशल, प्रबंधन कौशल, नेतृत्व क्षमता जैसी महत्वपूर्ण बातें सीखते हैं सिर्फ विद्यालय में नियमित रूप से उपस्थित होने से ही हासिल कर सकते हैं।

प्रश्न 18. समाज और संस्कृति किस प्रकार पाठ्यचर्या के निर्धारक तत्व हैं ? उपर्युक्त उदाहरणों द्वारा स्पष्ट कीजिए। (इंदौर 2023)

उत्तर–वर्तमान में अन्य कार्यों के समान संस्कृति की शिक्षा देने का कार्य भी परिवार से अधिक विद्यालय में ही होता है। भिन्न–भिन्न देशों के विद्यालयों में देश की संस्कृति के अनुरूप बालकों को शिक्षा दी जाती है। पाठ्य पुस्तकों के माध्यम से उनको समूह के विचारों, आदर्शों और मूल्यों आदि से परिचित कराया जाता है। विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रमेत्तर कार्यक्रमों के द्वारा उन्हें संस्कृति के विभिन्न अंगों की शिक्षा दी जाती है। इन पाठ्यक्रमेत्तर कार्यक्रमों में नाना प्रकार के खेलों, नाटकों, सामूहिक गान और नृत्य, वाद–विवाद प्रतियोगिताओं, देश–विदेश का भ्रमण आदि के द्वारा बालक को समूह की संस्कृति से परिचित कराया जाता है।

यूँ तो प्रत्येक समाज में परिवार और विद्यालय नई पीढ़ी को समाज की सामान्य संस्कृति सिखाते हैं किंतु किसी भी समाज में विभिन्न वर्गों और स्तरों के व्यक्तियों की संस्कृति में न्यूनाधिक अंतर देखा जाता है। अस्तु, बालक को न केवल समाज की सामान्य संस्कृति बल्कि उसके विशेष वर्ग और सामाजिक आर्थिक स्तर की विशेष संस्कृति की भी शिक्षा दी जाती है। इस प्रकार संस्कृति की शिक्षा में वृहद् संस्कृति की शिक्षा के साथ–साथ उपसंस्कृतियों की शिक्षा भी आवश्यक होती है

संस्कृति की शिक्षा से जैसा कि पीछे बताया जा चुका है, व्यक्ति को अपने प्राकृतिक और सामाजिक परिवेश से समायोजन करने में सहायता मिलती है। इससे बालक का सामाजिक व्यक्तित्व निर्माण होता है और वह दूसरों से व्यवहार करना सीखता है। इससे उसे जीविकोपार्जन करने तथा जीवन में आवश्यक अन्य कार्यों में भी महत्वपूर्ण सहायता मिलती है। इससे वह सामाजिक संस्थाओं को अपनाता है और उनके अनुरूप व्यवहार करता है। इससे उसे जीवन में प्रत्येक अवसर पर व्यवहार के स्पष्ट प्रतिमान मिल जाते हैं। इस प्रकार वह समाज का एक उत्तरदायी सदस्य बनता है।

संस्कृति और शिक्षा का घनिष्ठ संबंध इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि शिक्षा का एक प्रमुख लक्ष्य बालक को उसकी सामाजिक विरासत तथा संस्कृति प्रदान करना है। प्रत्येक मानव समूह में हजारों सालों के विकास के परिणामस्वरूप संस्कृति के विभिन्न अंगों का विकास होता है। यह संस्कृति प्रत्येक पीढ़ी द्वारा नई पीढ़ी को सौंप दी जाती है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति किसी–न–किसी संस्कृति में जन्म लेता है। इस सांस्कृतिक विरासत से उसे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कार्य करने के निश्चित प्रतिमान और प्राप्त करने के मूल्य मिल जाते हैं और उसे हर समय नए सिरे से प्रयोग नहीं करने पड़ते। अस्तु, संस्कृति का मनुष्य के जीवन में अत्यधिक महत्व है। संस्कृति के विभिन्न अंगों की शिक्षा से मनुष्य को निम्नलिखित लाभ होते हैं–

(1) प्राकृतिक परिवेश से समायोजन।
(2) सामाजिक परिवेश से समायोजन।
(3) व्यक्तित्व का विकास।
(4) समाजीकरण।
(5) स्वाभाविक शक्तियों का विकास।
(6) वयस्क जीवन की तैयारी।
(7) योग्य नागरिकों का निर्माण।
(8) समाज सुधार को प्रोत्साहन।
(9) सामुदायिक भावना का विकास।
(10) राष्ट्रीय भावना का विकास।
(11) सब धर्मों का सम्मान।
(12) कर्त्तव्यों की चेतना।
(13) अंतर्सांस्कृतिक अवबोध बढ़ाना।
(14) सामुदायिक रुचियों और परम्पराओं को बनाए रखना।
(15) राजनीतिक आकांक्षाओं की समानता।

प्रश्न 19. दस वर्षीय सृजनात्मक विद्यार्थी हेतु पाठ्यचर्या विकसित कीजिए। (इंदौर 2023)

उत्तर–सृजनात्मकता विकसित करने हेतु ब्रेनस्टॉर्मिंग (Brainstorming) अर्थात् मस्तिष्क उद्वेलन शिक्षण अधिगम की एक खेल विधि होती है। इस विधि द्वारा विद्यार्थियों में शिक्षण अधिगम के प्रति जिज्ञासा, उत्सुकता, प्रेरणा तथा उद्दीपन को उत्पन्न किया जाता है जिससे विद्यार्थियों में सीखने के प्रति जिजीविषा और अधिक बढ़ जाती है। उनकी बोधक्षमता तथा बोधगम्यता को भी बढ़ाया जा सकता है।

ब्रेन स्टॉर्मिंग एक प्रकार से शिक्षण अधिगम में खेल तकनीक का प्रयोग है। इससे विद्यार्थियों की सृजनात्मकता को भी बढ़ाने में अप्रत्याशित सफलता प्राप्त की जा सकती है। जैसे कि खेल भावना से खेल–खेल में सीखना विद्यार्थियों में सृजनात्मकता के लक्षणों को विकसित करते हैं।

सृजनात्मक विद्यार्थी हेतु पाठ्यचर्या विकसित करते हुए ध्यान देने योग्य अग्रांकित सुझाव सहायक सिद्ध हो सकते हैं–

1. उत्तर देने की स्वतंत्रता—विद्यार्थियों को उत्तर देने के लिए पर्याप्त स्वतंत्रता प्रदान करनी चाहिए। उन्हें समस्या के समाधान के लिए अधिक–से–अधिक विचारों का चिंतन करने के लिए उत्साहित करना चाहिए।

2. अहं अभिव्यक्ति के लिए अवसर—विद्यार्थी तभी सृजनात्मक कार्यों में निश्चित रूप से जुटते हैं जब उनमें उनका अहं निहित हो अर्थात् जब वे अनुभव करे कि उन्हीं के प्रयासों से ही अमुक सृजनात्मक कार्य संभव हो सका है। अतः हमें बच्चों को ऐसे अवसर प्रदान करने चाहिए।

3. मौलिकता तथा लचीलेपन को प्रोत्साहित करना—विद्यार्थियों में किसी भी रूप में विद्यमान मौलिकता को प्रोत्साहित करना चाहिए। तथ्यों का अंधाधुंध अनुसरण करना, नकल करना, निष्क्रिय भाव से ज्ञान प्राप्त करना, रटना आदि। सृजनात्मक अभिव्यक्ति में बाधक होते हैं। अतः उन पर यथासंभव नियंत्रण रखना चाहिए।

4. झिझक व डर को दूर करना—कई बार डर तथा हीन भावना से मिश्रित झिझक सृजनात्मक अभिव्यक्ति में बाधा डालती है। कई बार हमने लोगों को यह कहते सुना है कि मैं बोलने में झिझकता हूँ। इस प्रकार के डर या झिझक के कारणों या उनके कारणों को यथासंभव दूर करने का प्रयास करना चाहिए।

5. सृजनात्मक अभिव्यक्ति के लिए उचित वातावरण एवं अवसर प्रदान करना—बच्चों में सृजनात्मकता को बढ़ावा देने के लिए स्वस्थ एवं उचित वातावरण की व्यवस्था करना अत्यंत आवश्यक है। बच्चे की जिज्ञासा तथा सहनशीलता को किसी भी सूरत में दबाना नहीं चाहिए। नियमित कक्षा कार्य को भी इस प्रकार व्यवस्थित किया जा सकता है जिससे बच्चों में सृजनात्मक चिंतन का विकास हो।

6. बच्चों में स्वस्थ आदतों का विकास करना—श्रमशीलता, आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वास आदि कुछ ऐसे गुण हैं जो सृजनात्मकता में सहायक होते हैं। बच्चों में इन गुणों का निर्माण करना चाहिए। इसके अतिरिक्त उन्हें अपनी सृजनात्मक अभिव्यक्ति पर हो रही आलोचना के विरुद्ध खड़े रहने का भी प्रशिक्षण देना चाहिए।

7. समुदाय के सृजनात्मक साधनों का प्रयोग करना—बच्चों को सृजनात्मक कक्षा केन्द्रों तथा वैज्ञानिक एवं औद्योगिक निर्माण केन्द्रों की यात्रा करनी चाहिए। इससे उन्हें सृजनात्मक कार्य करने की प्रेरणा मिलेगी। कभी–कभी कलाकारों, वैज्ञानिकों को भी बुलाकर बच्चों से उन्हें मिलवाना चाहिए। इस प्रकार बच्चों के ज्ञान विस्तार में सहायता मिल सकती है और उनमें सृजनशीलता को बढ़ावा दिया जा सकता है।

8. अपना उदाहरण एवं आदर्श प्रस्तुत करना—यह कथन सत्य है कि "अपना उदाहरण सिद्धांत से अच्छा होता है।" बच्चे हमेशा अनुसरण करते हैं जो अध्यापक और माता पिता हमेशा घिसे–पिटे रास्ते पर चलते हैं, जीवन में खतरे मोल लेकर मौलिकता नहीं दिखाते, कोई नया काम नहीं करते, वे अपने बच्चों में सृजनात्मकता का विकास नहीं कर सकते।

9. सृजनात्मक चिंतन के अवरोधों से बचना—परम्परावादिता, शिक्षण की त्रुटिपूर्ण विधियों, असहानुभूतिपूर्ण व्यवहार बालकों में व्याप्त अनावश्यक चिंता एवं कुण्ठा न बदल जाने वाली स्थिर व परम्परागत कार्य, आदतें, पुराने विचारों, आदर्शों और वस्तुओं के प्रति दुराग्रह और नवीन के प्रति भय व विरक्ति की भावना आदि अनेक कारण और परिस्थितियाँ हैं जिनमें बालकों में सृजनात्मकता के विकास व पोषण में बाधा पहुँचाती है। इससे बचने के लिए हर संभव प्रयत्न करना चाहिए।

10. पाठ्यक्रम का उचित आयोजन—पाठ्यक्रम अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन लाने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अतः विद्यालय पाठ्यक्रम को इस प्रकार आयोजित किया जाना चाहिए कि वह बालकों में अधिक–से–अधिक सृजनात्मकता विकसित करने में सहायक सिद्ध हो सके। कुछ उपाय इस दिशा में अधिक लाभान्वित हो सकते हैं—

(1) संप्रत्ययों को पाठ्यक्रम का आधार बनाना।

(2) बालकों की सामान्यभूत आवश्यकताओं की जगह उनकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति।

(3) ''सत्य खोजा जाता है वह स्वयं प्रकट नहीं होता है।'' यह दृष्टिकोण प्रकट करना।

11. मूल्यांकन प्रणाली में सुधार—जब तक परीक्षा और मूल्यांकन के ढाँचे में अनुकूल परिवर्तन नहीं आता तब तक किसी भी शिक्षा व्यवस्था के द्वारा सृजनात्मकता का पोषण नहीं किया जा सकता। इसके लिए हमें रटन्त स्मृति केन्द्रित व एक विध चिंतन, घिसे–पिटे एक से उत्तर अथवा अनुक्रियाओं की माँग आदि सृजनशीलता को नष्ट करने वाली बातों के स्थान पर परीक्षा प्रणाली में उन सभी बातों का समावेश करना चाहिए जिनके द्वारा विद्यार्थियों को ऐसे अधिगम अनुभव अर्जित करने के लिए प्रोत्साहन मिले जो सृजनात्मकता का पोषण व विकास करते हो।

प्रश्न 20. पाठ्यचर्या निर्माण, पाठ्यचर्या विकास एवं पाठ्यचर्या प्रारूप को परिभाषित कीजिए।
(जबलपुर 2022)

उत्तर—पाठ्यचर्या निर्माण, पाठ्यचर्या विकास एवं पाठ्यचर्या प्रारूप की परिभाषा निम्नांकित प्रकार से है—

पाठ्यचर्या निर्माण में विविध सिद्धांतों एवं शिक्षा के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर कार्य किया जाना चाहिए। पाठ्यचर्या की प्रक्रिया में तथ्यों, प्रसंगों एवं विचारकों के मतों का वर्णन करना चाहिए। पाठ्यचर्या के निर्माण में वैधता, विश्वसनीयता, मानकीकरण का निर्धारण शैक्षिक उद्देश्यों के अनुरूप होना चाहिए।

पाठ्यचर्या निर्माण की प्रक्रिया—पाठ्यचर्या निर्माण हेतु निम्नांकित बिंदुओं को ध्यान में रखना आवश्यक है—

(1) सर्वप्रथम ध्यान देना होगा कि पाठ्यचर्या का निर्माण किस कक्षा के लिए किया जा रहा है।

(2) जिस स्तर के बालकों के लिए पाठ्यचर्या का निर्माण किया जाना है, उनका पूर्व ज्ञान का स्तर क्या है ?

(3) पाठ्यचर्या को ज्ञानात्मक, भावात्मक, क्रियात्मक पक्षों में बाँटकर निर्धारण किया जाना चाहिए।

(4) विद्यार्थियों की वर्तमान आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर मनोवैज्ञानिक स्तर पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

(5) समाज, संस्कृति, सभ्यता, राष्ट्रीयता एवं अंतर्राष्ट्रीयता की भावना को ध्यान में रखकर पाठ्यचर्या निर्माण की प्रक्रिया की जानी चाहिए।

(6) पाठ्यचर्या के निर्माण में विविध सिद्धांतों एवं शिक्षा के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर कार्य किया जाना चाहिए।

(7) पाठ्यचर्या निर्माण की प्रक्रिया में तथ्यों, प्रसंगों एवं विचारकों के मतों का वर्णन करना चाहिए।

(8) पाठ्यचर्या के निर्माण में वैधता, विश्वसनीयता, मानकीकरण का निर्धारण शैक्षिक उद्देश्यों के अनुरूप होना चाहिए।

(9) बालक के सर्वांगीण विकास के लिए पाठ्यचर्या में पर्याप्त क्रियाओं को स्थान दिलाने के लिए मूल्यांकन पद्धति को अपनाना चाहिए।

(10) शिक्षक के लिए शिक्षण संकेत का निर्माण करना।

(11) विद्यार्थी को सैद्धांतिक रूप के साथ व्यावहारिक रूप में भी पाठ्यचर्या बताई जानी चाहिए।

(12) बालक के सर्वांगीण विकास हेतु पाठ्यचर्या निर्माण प्रक्रिया में सहयोगात्मक दृष्टि को ध्यान में रखकर कार्य करना चाहिए।

(13) पाठ्यचर्या निर्माण की प्रक्रिया सरल होनी चाहिए। पाठ्यचर्या निर्माण प्रक्रिया के उपरांत ही पाठ्यचर्या अपने वास्तविक स्वरूप को धारण करती है।

पाठ्यचर्या का विकास—पाठ्यचर्या विकास को एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया माना जाता है, जो अंतहीन है। विद्यालय में अधिगम अवसरों के नियोजन के द्वारा विद्यार्थियों के व्यवहार में ऐसा परिवर्तन लाना जो पाठ्यचर्या के उद्देश्यों के अनुरूप हो और विद्यार्थियों की वास्तविक किंतु सर्वांगीण उन्नति का मूल्यांकन करना पाठ्यक्रम विकास के अंतर्गत आता है।

पाठ्यचर्या के विकास हेतु निम्नांकित बिंदुओं को ध्यान में रखा जाना आवश्यक है—

(1) विद्यार्थियों की वर्तमान आवश्यकता, रुचि किन क्षेत्रों से संबंधित है। इसमें विद्यार्थियों के मनोवैज्ञानिक पक्षों पर भी ध्यान दिया जाता है। जैसे—व्यक्तिगत भिन्नता, रुचि, बाल—विकास की अवस्था, परिपक्वता, बुद्धि, सृजनात्मकता आदि।

(2) पाठ्यचर्या का प्रकार किस कोटि का होगा। जैसे—क्रिया प्रधान, हस्तशिल्प प्रधान, विषय प्रधान, व्यवसाय प्रधान आदि।

(3) पाठ्यचर्या निर्माण के विविध सिद्धांत का अनुपालन।

(4) पाठ्यचर्या के विषयों में अंतर्वस्तु के क्रम का निर्धारण करना, प्रायः यह सरल से जटिल की ओर होती है।

(5) पाठ्यचर्या के लिए पाठ्य सहगामी क्रियाओं का चयन करना।

पाठ्यचर्या विकास के प्रमुख सोपान—

(1) शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण।

(2) निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु उपयुक्त अधिगम अनुभवों का चयन।

(3) अधिगम अनुभवों को प्रस्तुत करने के लिए उपयुक्त अंतर्वस्तु का चयन।

(4) अध्ययन—अध्यापन प्रक्रिया की दृष्टि से चयनित अधिगम अनुभवों एवं अंतर्वस्तु का संगठन

(5) सम्पूर्ण प्रक्रिया का उद्देश्यों की प्राप्ति की दृष्टि से मूल्यांकन।

पाठ्यचर्या प्रारूप—पाठ्यचर्या प्रारूप शब्द अंग्रेजी के शब्द करीकुलम डिजाइन का हिन्दी पर्याय है। पाठ्यचर्या प्रारूप का शाब्दिक अर्थ पाठ्यचर्या की व्यवस्थित रूपरेखा है जिसमें पाठ्यचर्या के निर्माण से मूल्यांकन तक की प्रक्रिया का क्रमवार विवरण होता है। पाठ्यचर्या प्रारूप वह ढाँचा या रूपरेखा है जिसमें विद्यालय के शैक्षणिक अनुभवों का चयन, योजना, क्रियान्वयन आदि सम्मिलित है। पाठ्यचर्या प्रारूप को इन शब्दों में परिभाषित किया जा सकता है, "पाठ्यचर्या प्रारूप एक निश्चित समयावधि के लिए निश्चित अनुदेशात्मक खंडों की एक प्रस्तावित रूपरेखा होती है जिसमें इन अनुदेशात्मक खंडों को कैसे अनुशासित किया जाए यह निर्देश होता है।"

विस्तृत स्तर पर विभिन्न पाठ्यचर्या के प्रारूपों को निम्नलिखित छः सोपानों में विभाजित किया जा सकता है—

(1) उद्देश्य निर्धारण।

(2) अधिगम अनुभवों का चयन।

(3) विषयवस्तु का चयन।

(4) अधिगम अनुभवों व विषयवस्तु का अनुक्रम व संगठन।

(5) विकास व क्रियान्वयन।

(6) मूल्यांकन।

1. उद्देश्य निर्धारण—पाठ्यक्रम प्रारूपण हेतु प्रथम सोपान यह है कि जिस कोर्स की पाठ्यचर्या तैयार की जा रही है, उस कोर्स में अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों के लिए शिक्षा के कौन से उद्देश्य होने चाहिए। इसका विस्तृत अध्ययन कर उद्देश्यों का निर्धारण कर लिया जाए। कोर्स के ये उद्देश्य ही आगे के पाठ्यचर्या विकास को आकार देंगे। उद्देश्यों के चयन के आधार पर

विषयवस्तु तथा अधिगम अनुभवों का संगठन होगा कि विद्यार्थियों ने निर्धारित शैक्षिक उद्देश्यों को किस सीमा तक अर्जित किया है। इस प्रकार पाठ्यचर्या प्रारूपण की प्रक्रिया में उद्देश्यों का चयन अत्यंत सावधानी से किया जाना चाहिए। उद्देश्यों के निर्धारण के अनेक स्रोत हैं जिनमें बालक के ज्ञानात्मक व बौद्धिक विकास, भावनात्मक या संवेगात्मक विकास, क्रियात्मक व कौशल संपादन, सामाजिक व शारीरिक विकास प्रमुख हैं। तात्पर्य यह है कि सर्वांगीण विकास को ध्यान में रखकर उद्देश्य निर्धारण होना चाहिए।

सामान्य उद्देश्य व विशिष्ट उद्देश्य भी निर्धारित कर लेने चाहिए ताकि विषय व विषयवस्तु का चयन उनकी अनिवार्यता या वैकल्पिकता का समुचित समावेश पाठ्यचर्या में हो सके। उद्देश्यों के अनुरूप ही शिक्षण विधियों, अधिगम प्रक्रिया, पाठ्य सहगामी क्रियाओं का आयोजन भी होता है। इस दृष्टि से उद्देश्य निर्धारण प्रथम व महत्वपूर्ण सोपान है।

2. अधिगम अनुभवों का चयन—सीखने की प्रक्रियाओं के दौरान विद्यार्थी जो अनुभव अर्जित करता है वे अधिगम अनुभव हैं। विद्यार्थी कक्षा और कक्षा के बाहर भी अधिगम अनुभव प्राप्त करता है। बालक के स्तर के अनुरूप पाठ्यचर्या में आरक्षण के समय सीखने के इन अवसरों का चयन करना होता है। सीखने के अनुभव के व्यापक अवसर, विषयवस्तु के आंतरिक स्वरूप से संबंधित, गत्यात्मक, नवीन, प्रभावशाली, उपयोगी, एकीकृत, सहसंबंधित वैध तथा विश्वसनीय होने चाहिए। कक्षा अंतः क्रिया को लेकर पाठ्यसहगामी क्रियाओं तक अधिगम अवसरों का विस्तार होना चाहिए। पाठ्यचर्या प्रारूपण में अधिगम अनुभव से संबंधित अधिगम सिद्धांतों, शिक्षण विधियों, दृश्य–श्रव्य साधनों, कार्यानुभव तथा क्रियात्मक गतिविधियों, प्रायोगिक अभ्यासों, प्रोजेक्ट कार्यों, गृह कार्य, चर्चा–परिचर्चा, विज्ञान प्रदर्शनी, शैक्षिक भ्रमण आदि गतिविधियों में अधिगम अनुभवों के चयन की अपार संभावनाएँ हैं।

3. विषयवस्तु का चयन—विषयवस्तु का चयन पाठ्यचर्या प्रारूप का महत्वपूर्ण तथा अनिवार्य सोपान है। बालक की योग्यता, क्षमता, कक्षा के स्तर, उद्देश्यों के अनुरूप सैद्धांतिक व व्यावहारिक, उपयोगी, सार्थक, रोचक, विषय सामग्री तथा विषयवस्तु का चयन होना चाहिए। विद्यार्थियों की वैयक्तिक विभिन्नता को ध्यान में रखकर पाठ्यचर्या में वैविध्य एवं अनिवार्य व वैकल्पिक विषयों के चयन की स्वतंत्रता विद्यार्थियों को मिलनी चाहिए। विषयवस्तु प्रामाणिक, सामाजिक जीवन पक्ष से जुड़ी, विविधतापूर्ण, अधिगम अनुभवों से सम्बद्ध, पाठ्य सहगामी क्रियाओं से परिपूर्ण होनी चाहिए।

विषयवस्तु का चयन कोर्स के सामान्य व विशिष्ट उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।

4. अधिगम अनुभवों और विषयवस्तु का अनुक्रम व संगठन—पाठ्यचर्या प्रारूपण का अगला चरण अधिगम अनुभवों तथा चयनित पाठ्यवस्तु को व्यवस्थित रूप देना तथा संगठित रूप देना है। इस सोपान में इकाइयों तथा प्रकरणों में विषयवस्तु और अधिगम अनुभवों को उनकी पारस्परिक एक–सूत्रता तथा सहसंबंधता के आधार पर संगठित किया जाता है। इन दोनों के निकट संबंध को दृष्टिगत रखते हुए पाठ्यचर्या में उनका सही अनुक्रम व संगठन होना चाहिए।

5. पाठ्यचर्या का विकास और क्रियान्वयन—विद्यालय में संबंधित पाठ्यचर्या का विकास तथा क्रियान्वयन कैसा हो ? इसे पाठ्यचर्या प्रारूप के अगले चरण में स्पष्ट करना आवश्यक है। सीखने के अनुभव हेतु प्रमुख प्रविधियाँ व प्रक्रियाएँ हैं– शिक्षण विधियाँ, शिक्षण तकनीक, शिक्षण सूत्र, सहायक सामग्री, पाठ्य पुस्तकें, गृह कार्य, कक्षा अंतःक्रिया, पाठ्य सहगामी क्रियाएँ, शैक्षिक भ्रमण आदि। पाठ्यचर्या के विकास तथा क्रियान्वयन में इन सबका प्रयोग होना चाहिए।

6. मूल्यांकन—मूल्यांकन से तात्पर्य है विद्यार्थियों ने जो कुछ सीखा उनसे उनके व्यवहारगत परिवर्तन का परीक्षण करना। मूल्यांकन में यह देखा जाता है कि पाठ्यचर्या के उद्देश्य क्या विद्यार्थियों ने समुचित रूप से अर्जित किए हैं। मापन की विभिन्न विधियों का प्रयोग कर शिक्षक

विद्यार्थियों की अधिगम क्षमता व ज्ञान कौशल का परीक्षण इस सोपान में करता है। मूल्यांकन से शिक्षक को अपनी कार्य कुशलता की प्रतिपुष्टि भी मिल जाती है जिससे वह अपने शिक्षण में भविष्य में और सुधार ला सकता है।

पाठ्यचर्या में मूल्यांकन सोपान का उपयोग पाठ्यचर्या पूर्ण होने पर वर्षांत पर एक बार न होकर सतत् तथा समग्र रूप में होते रहना चाहिए। प्रत्येक पाठ के बाद प्रश्नों के माध्यम से और प्रत्येक इकाई के बाद निर्दिष्ट प्रोजेक्ट कार्य से अथवा पाठ्यचर्या में निर्देशित प्रायोगिक कार्यों में विद्यार्थी के निष्पादन का निरंतर रिकॉर्ड रखना चाहिए।

प्रश्न 21. पाठ्यचर्या विकास की विषयवस्तु चयन के दौरान मनोवैज्ञानिक छनना किस प्रकार लागू किया जाता है ? (इन्दौर 2023)

उत्तर—पाठ्यचर्या विकास की विषयवस्तु चयन के दौरान मनोविज्ञान छानना को आधार बनाया जाता है। शिक्षा की वर्तमान अवधारणा के अनुसार शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बालक के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाना है। इस लक्ष्य की पूर्ति हेतु शिक्षकों एवं पाठ्यक्रम निर्माताओं को बालक की प्रकृति, उसके विकास, विकास के विभिन्न स्तरों पर उसकी आवश्यकताओं, क्षमताओं, अभियोग्यताओं, अभिरुचियों, आकांक्षाओं, अनुभवों एवं मनोवैज्ञानिक क्षेत्र की अन्य प्रवृत्तियों को ध्यान में रखना तथा तद्नुसार पाठ्यक्रम को निर्मित एवं संगठित करना आवश्यक होता है। इसके साथ ही पाठ्यक्रम निर्माताओं के लिए अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी ढंग से गतिमान करने तथा उपयुक्त अधिगम परिस्थितियों को उत्पन्न कर सकने का ज्ञान भी आवश्यक होता है। सामान्य रूप से इन्हीं को पाठ्यक्रम के मनोवैज्ञानिक आधार की संज्ञा दी जाती है।

''पाठ्यक्रम के मनोवैज्ञानिक आधार, मनोविज्ञान के वे पक्ष हैं जो अधिगम प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं तथा पाठ्यक्रम निर्माता को विद्यार्थी के व्यवहार के संबंध में बुद्धिमतापूर्ण निर्णय लेने में सहायता करते हैं।''

इसे ही विषयवस्तु चयन के दौरान मनोवैज्ञानिक आधार पर छनना के रूप में लागू किया जाता है।

प्रश्न 22. पाठ्यक्रम संरचना का अर्थ बताते हुए इसके महत्व पर चर्चा कीजिए। (ग्वालियर 2022)

उत्तर—पाठ्यक्रम संरचना का उद्देश्य यथोचित कौशल, समझ, ज्ञान और आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य देना, बहु–अनुशासनिक और बहु–स्तरीय समस्याओं के समाधान, नवाचार और मननशील कार्यान्वित में उनके व्यवहार की सामर्थ्य प्रदान करना, बुनियादी नैतिक सिद्धांतों, भारत के व्यापक संवैधानिक मूल्यों और उत्कृष्टता के लिए प्रतिबद्धता उत्पन्न करना है। एक पाठ्यक्रम के तौर पर यह अपनी संरचना और विन्यास में उन पारम्परिक अकादमिक कार्यक्रमों से एक महत्वपूर्ण प्रस्थान है, जो ज्ञान और कौशल के हस्तांतरण पर ही प्राथमिक रूप से अपना ध्यान एकाग्र करते हैं।

पाठ्यक्रम संरचना सन् 2005 में विषयवस्तु को जन–जीवन से जोड़ने का प्रयास किया गया है। आवश्यक विषयों को प्रारंभिक स्तर से ही महत्व दिया गया है। जैसे–पर्यावरण, विज्ञान एवं गणित विषयों को प्रारंभिक स्तर से ही अध्यापन का मुख्य केन्द्र बनाया गया है।

पाठ्यक्रम मूल रूप से अधिगम अनुभवों का क्रमिक नियोजन है। यह पूर्णतया डिग्री प्राप्त करने का कार्यक्रम है। यह एक अनुभवों की शृंखला है, जिसमें सीखने के बाद ही परिणाम प्राप्त होता है। इन अनुभवों में व्याख्यान तथा कक्षाओं की उपस्थिति सम्मिलित होती है।

पाठ्यक्रम संरचना में अधिगम से संबंधित उद्देश्य होते हैं, वे सम्मिलित किए जाते हैं तथा पाठ्यवस्तु अधिगम तथा शिक्षण विधियों आदि का निर्धारण किया जाता है। पाठ्यक्रम संरचना में सभी विद्यार्थियों को समान अवसर उपलब्ध कराने का प्रयास किया जाता है।

पाठ्यक्रम संरचना के निम्नलिखित अंग होते हैं–

1. उद्देश्य–पाठ्यक्रम के उद्देश्य अधिगम यात्रा का प्रमुख अंग है। विद्यार्थी के सर्वांगीण विकास की दृष्टि से यदि देखा जाए तो यह अत्यंत आवश्यक है। उद्देश्यों के अभाव में पाठ्यक्रम की संरचना निर्मित नहीं हो सकती है। उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए विद्यार्थी को विशिष्ट विषयों का अध्ययन करना होता है।

उद्देश्य ही पाठ्यक्रम के शैक्षिक इरादे होते है, जो अधिकांश विद्यार्थियों को किसी शैक्षिक कार्यक्रम या इकाई में अध्ययन करने के लिए आकर्षित करते हैं।

2. अधिगम परिणामों की निष्ठा–अधिगम परिणामों की निष्ठा से तात्पर्य है कि जब विद्यार्थी पाठ्यक्रम का सफलतापूर्वक अनुसरण कर लेगा तो वह क्या सीखेगा ? अधिगम परिणामों की निष्ठा का उपयोग इस अर्थ में किया जाता है कि पाठ्यक्रम की यात्रा पूर्ण करने के बाद उससे विद्यार्थी को क्या लाभ प्राप्त होगा ?

3. पाठ्यवस्तु–पाठ्यवस्तु कार्यक्रम या इकाई, प्रकरण, मुद्दा या विषय की अंतर्वस्तु होती है। पाठ्यवस्तु अद्यतन होना चाहिए। यदि संभव हो तो तात्कालिक अनुसंधानों को परावर्तित करने वाला होना चाहिए।

4. अधिगम एवं शिक्षण विधियाँ–इसका तात्पर्य है कौन से विद्यार्थी पाठ्यवस्तु से संबंधित होंगे। पाठ्यक्रम से किस प्रकार के अधिगम अनुभव संबंधित होंगे। इसमें शिक्षण को भी सम्मिलित किया जाता है और शिक्षण अनुभव किन विधियों से विद्यार्थियों को दिए जाएँगे।

5. आकलन–अधिगम में जब तक विद्यार्थियों को पृष्ठपोषण प्राप्त नहीं होते है तब तक वह प्रभावशाली नहीं होता है। जब वे जानकारी प्राप्त करते है और उन्होंने क्या जानकारी प्राप्त की है यह तो जान चुके होते हैं। वह प्रक्रिया जिससे वे जानकारी प्राप्त करते हैं वही आकलन को उत्पन्न करती है।

पाठ्यक्रम संरचना की आवश्यकता एवं महत्व–पाठ्यक्रम संरचना की निम्न आवश्यकता एवं महत्व हैं–

(1) शिक्षा के सार्वभौमिकरण के लिए।
(2) निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के लिए।
(3) परिवर्तित समाज के लिए।
(4) शैक्षिक असमानता को कम करने के लिए।
(5) नवीन चुनौतियों के समाधान के लिए।
(6) शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की प्रभावशीलता के लिए।
(7) विद्यार्थियों की अंतर्निहित क्षमताओं के विकास के लिए।
(8) जीवन कौशलों के विकास के लिए।
(9) समाज की आवश्यकता पूर्ति के लिए।
(10) अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना के लिए।

प्रश्न 23. ओपन स्कूल कैसे अधिगम को सुगम बनाता है ? **(भोपाल 2022)**

उत्तर–ओपन स्कूल का अर्थ उस शिक्षण से है जो अनुसूची, शिक्षण, भूमिकाओं स्थान पहुँच के तरीकों, निर्देशात्मक तरीकों और सीखने की प्रक्रिया के अन्य पहलुओं के संदर्भ में लचीला है। आधुनिक संचार प्रौद्योगिकियों के निरंतर विकसित होते अवतार में, भारत में ओपन स्कूल प्रणाली पाठ्यक्रम चयन, गति और अध्ययन के लिए एक लचीला दृष्टिकोण अपनाती है। दूरस्थ मोड़ पर इस शैक्षिण प्रणाली को खुला और अनुकूलनीय बनाने की अनुमति देता है जो प्रणाली की सबसे आवश्यक विशेषता है। यह प्रणाली छात्रों को नियमित कक्षाओं में शामिल हुए बिना घर पर, काम पर या कहीं और जो उनके लिए सुविधाजनक हो, अध्ययन करने की अनुमति देती है।

ओपन स्कूल निम्नलिखित बिन्दुओं पर केंद्रित हैं–

(1) सीखने में आने वाली बाधाओं को दूर करना और स्कूल शिक्षा को जाति या लिंग की परवाह किए बिना सभी के लिए उपलब्ध करता है।

(2) पहुँच की चौड़ाई और समानता बढ़ाना।

(3) पहुँच का खुलापन सुनिश्चित करना।

(4) शिक्षण और सीखने के अनुभव में सुधार।

(5) यह सुनिश्चित करना कि माध्यमिक और वरिष्ठ माध्यमिक पाठ्यक्रम विभिन्न समुदायों की माँगों के लिए प्रासंगिक है।

(6) आजीव सीखने के साथ–साथ शिक्षा और प्रशिक्षण को बढ़ावा देना सुनिश्चित करना।

ओपन स्कूल के उद्देश्य–ओपन स्कूल के उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

(1) औपचारिक माध्यमिक और वरिष्ठ माध्यमिक शिक्षा के लिए गैर–औपचारिक, लागत प्रभावी विकल्प प्रदान करना।

(2) पारंपरिक स्कूल प्रणाली पर दबाव को पूरक और राहत देना।

(3) विद्यार्थियों को यह चुनने की स्वतंत्रता देकर लचीली शिक्षा को प्रोत्साहित करना कि कहाँ, कब, क्या और कैसे सीखें।

(4) उन लोगों को 'दूसरा मौका' शिक्षा प्रदान करना जिन्हें अपनी औपचारिक शिक्षा रोक पड़ी है या जो सामाजिक, आर्थिक या अन्य कारकों के कारण पारंपरिक स्कूलों में दाखिला लेने असमर्थ है।

(5) आबादी के बड़े हिस्से, विशेष रूप से वंचित समूहों जैसे दूरदराज और ग्रामीण क्षेत्रों रहने वाले लोगों, साथ ही महिलाओं और अन्य वयस्कों जैसे कामकाजी व्यक्तियों को अनुमति देक स्कूली शिक्षा का लोकतंत्रीकरण करना, जो अपने ज्ञान और कौशल को हासिल करना या उन्न करना चाहते हैं।

(6) निरंतर और जीवनपर्यंत शिक्षा प्रदान करके लोगों के जीवन को समृद्ध बनाना।

(7) एक नवीन हाई स्कूल–स्तरीय शिक्षा प्रणाली प्रदान करना जो सीखने के तरीकों और गति पाठ्यक्रम, संयोजन, नामांकन पात्रता, प्रवेश की आयु, परीक्षा प्रशासन और कार्यक्रम संचालन के मामले में लचीली और खुली हो ताकि सीखने को बढ़ावा दिया जा सके और सीखने के नए क्षेत्रों उत्कृष्टता और प्रोत्साहित किया जा सके।

ओपन स्कूल निम्न बिन्दुओं के आधार पर अधिगम को सुगम बनाने में सहायक हैं–

(1) यह प्रणाली सामाजिक शैक्षिक और आर्थिक स्थितियों के कारण उत्पन्न पृथकता को दू करने में सहायता प्रदान करती है।

(2) यह प्रणाली कम खर्चीली है जिससे प्रत्येक विद्यार्थी को शिक्षा ग्रहण करना आसान होता है

(3) ओपन स्कूल 75 प्रतिशत गाँवों में बस रही जनसंख्या को शिक्षा प्रदान करने में सक्षम है

(4) यह शिक्षा प्रणाली व्यवस्था विभिन्न व्यवसायों में कार्यरत लोगों को आगे पढ़ने का सुअवस प्रदान करती है।

(5) यह प्रणाली नवाचारात्मक शिक्षा प्रणाली को बढ़ावा देती है।

(6) यह प्रणाली घर–घर शिक्षा उपलब्ध करने में असमर्थ परम्परागत शिक्षा प्रणाली के पूर के रूप में कार्य कर रही है।

(7) ओपन स्कूल सभी शैक्षिक उपलब्धि वाले विद्यार्थियों को आगे की शिक्षा प्राप्त करने निरन्तरता रखने का आधार प्रदान करती है।

ओपन स्कूल में विद्यार्थी को पाठ्यवस्तु और अध्ययन विधि की चयन की स्वतंत्रता होती पाठ्यक्रम को पूरा करने में अपने गति के आधार की स्वतंत्रता होती है। इस आधार पर यह कहा

सकता है कि ओपन स्कूल में विद्यार्थी को सीखने की क्षमता अपने ज्ञान और क्षमता के आधार पर निर्भर करती है।

प्रश्न 24. पाठ्यचर्या के आधार क्या होने चाहिए ? **(भोपाल 2022)**

उत्तर—शिक्षा एक सोदेश्य प्रक्रिया है तथा पाठ्यक्रम इन उद्देश्यों की पूर्ति का महत्वपूर्ण साधन है। अतः यह निर्विवाद तथ्य है कि पाठ्यक्रम कुछ उद्देश्यों पर आधारित होता है। पाठ्यचर्या के उद्देश्यों का निर्धारण कुछ मूल्यों को लेकर किया जाता है जिन्हें पाठ्यचर्या का आधार माना जाता है। पाठ्यचर्या के इन आधारों को विद्यालयों द्वारा अपने विद्यार्थियों को प्रस्तुत किये जाने वाले अधिगम–अनुभवों की प्रकृति, प्रकार, मात्रा तथा गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले घटकों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

पाठ्यचर्या शिक्षा का आधार है। पाठ्यचर्या द्वारा शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति होती है। यह एक ऐसा साधन है जो छात्र और अध्यापक को जोड़ता है। अध्यापक पाठ्यचर्या के माध्यम से छात्रों के मानसिक, शारीरिक, नैतिक, सांस्कृतिक, संवेगात्मक, आध्यात्मिक तथा सामाजिक विकास के लिए प्रयास करता है।

किसी समाज की शिक्षा के स्वरूप को निश्चित करने में अधिक भूमिका उस समाज के जीवन दर्शन की होती है। इस सब की व्याख्या शिक्षा दर्शन में की जाती है। इसके साथ–साथ उस समाज विशेष की संरचना, उसकी सभ्यता, संस्कृति तथा धार्मिक स्थिति का प्रभाव पड़ता है। इस सब का अध्ययन शैक्षिक समाजशास्त्र के अंतर्गत किया जाता है। समाज की राजनैतिक एवं आर्थिक स्थिति भी शिक्षा के स्वरूप को प्रभावित करती है। इनका अध्ययन क्रमशः राज्य और शिक्षा के अर्थशास्त्र में किया जाता है। मानव स्वयं की प्रकृति भी उसकी शिक्षा के स्वरूप को प्रभावित करती है। इसका अध्ययन शिक्षा मनोविज्ञान में किया जाता है। आज विज्ञान का युग है। युग के प्रभाव से शिक्षा कैसे अप्रभावित रह सकती है। मूल रूप से ज्ञान ही शिक्षा के स्वरूप अर्थात् उसके उद्देश्य एवं पाठ्यचर्या को प्रभावित करते हैं।

1. दार्शनिक आधार—हमारे जीवन अथवा शिक्षा के उद्देश्य मूलतः हमारे जीवन दर्शन पर आधारित होते हैं। तब शिक्षा की पाठ्यचर्या भी दर्शन से प्रभावित होनी चाहिए और होती भी है। उदाहरण के लिए आध्यात्मवादी मानव जाति के आध्यात्मिक अनुभवों को अपेक्षाकृत अधिक महत्व देते है। इसलिए वे पाठ्यचर्या में भाषा, साहित्य, धर्मशास्त्र और नीतिशास्त्र को विशेष और अन्य विषयों एवं क्रियाओं को प्रमुख स्थान देते हैं। इसके विपरीत, भौतिकवादी भौतिक जगत को ही सत्य मानते हैं। धर्मशास्त्र और नीतिशास्त्र को तो वे स्थान ही नहीं देते। प्रयोजनवादी न तो शिक्षा के उद्देश्य निश्चित करते हैं न पाठ्यचर्या। पाठ्यचर्या में सामाजिक विषयों एवं क्रियाओं का उनकी तत्कालीन उपयोगिता के अनुसार स्थान होना चाहिए। पाठ्यचर्या के नियोजन के चार सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है—(1) उपयोगिता का सिद्धांत, (2) रुचि का सिद्धांत, (3) क्रिया एवं अनुभव का सिद्धांत, (4) एकीकरण का सिद्धांत। जो समाज जिस दर्शन से प्रभावित होती है उसकी पाठ्यचर्या उससे ही प्रभावित होती है। इस प्रकार दर्शन पाठ्यचर्या निर्माण का मुख्य आधार होता है।

2. समाजशास्त्रीय आधार—शिक्षा की पाठ्यचर्या निश्चित करने में दर्शन के बाद समाज विशेष की संरचना, उसकी संस्कृति तथा धार्मिक, राजनैतिक और आर्थिक स्थिति का प्रभाव पड़ता है। समाज की संस्कृति तो उसकी शिक्षा का मूल आधार होती है। हर समाज की अपने रहन–सहन और खान–पान की विधियाँ होती हैं, रीति–रिवाज होते हैं। भाषा–साहित्य कला कौशल, संगीत–नृत्य, धर्म दर्शन, आदर्श–विश्वास और मूल्य होते हैं। प्रत्येक समाज अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए शिक्षा का सहारा लेता है। अपनी शिक्षा पाठ्यचर्या में अपनी सांस्कृतिक उपलब्धियों का समावेश करता है। समाज की धार्मिक स्थिति भी उसकी शिक्षा की पाठ्यचर्या को प्रभावित करती है।

3. राजनैतिक आधार—वर्तमान में किसी भी देश में शिक्षा की व्यवस्था करना राज्य का उत्तरदायित्व माना जाता है, तब उसके उद्देश्य एवं पाठ्यचर्या का राज्य द्वारा प्रभावित होना स्वाभाविक है। साम्यवादी समाजों की शिक्षा की पाठ्यचर्या की अपेक्षा लोकतंत्रीय समाजों की शिक्षा की पाठ्यचर्या अधिक विस्तृत और लचीली होती है।

4. आर्थिक आधार—समाज की अर्थव्यवस्था और आर्थिक स्थिति भी शिक्षा का पाठ्यचर्या को प्रभावित करती है। देश विदेश की शिक्षा की पाठ्यचर्या पर विचार करने से यह स्पष्ट होता है आर्थिक दृष्टि से संपन्न देशों की शिक्षा की पाठ्यचर्या विस्तृत होती है और इसमें तकनीकी और प्रशासनिक शिक्षा की विशेष व्यवस्था होती है जबकि आर्थिक दृष्टि से पिछड़े देशों की शिक्षा में ऐसी व्यवस्था करना संभव नहीं होता। समाज की आर्थिक नीतियाँ भी शिक्षा और शिक्षा की पाठ्यचर्या को प्रभावित करती है।

5. मनोवैज्ञानिक आधार—किस स्तर के बच्चे किस सीमा का ज्ञान ग्रहण कर सकते हैं यह मनोवैज्ञानिक ही बता सकते हैं। मनोविज्ञान में बच्चों के शारीरिक, मानसिक और सामाजिक विकास का अध्ययन किया जाता है। बच्चे वे सब शीघ्रता से सीखते हैं जिसमें उनकी रुचि एवं रूझान होती और जिसको सीखने की उनमें शारीरिक एवं मानसिक क्षमता होती है। इस तरह के पाठ्यचर्या के निर्माण के लिये मनोविज्ञान का ज्ञान होना आवश्यक है। अतः मनोविज्ञान शिक्षा पाठ्यचर्या निर्माण का मुख्य आधार माना जाता है।

6. वैज्ञानिक आधार—मनुष्य का पूरा जीवन विज्ञान से प्रभावित है। विज्ञान में हमें निरीक्षण, परीक्षण और प्रयोग की विधियाँ दी है। आज विज्ञान भी पाठ्यचर्या निर्माण का आधार माना जाता है।

7. समय की माँग—समाज परिवर्तनशील है, उसके चिन्तन एवं स्वरूप में परिवर्तन होता रहता है। समाज के सामने सदैव नई–नई समस्याएँ उपस्थित होती रहती है जिनका उसे समाधान करना होता है। इसके लिए शिक्षा का सहारा लेना पड़ता है। अतः समाज की किसी भी स्तर की शिक्षा की पाठ्यचर्या के निर्माण का एक आधार समय की माँग होना चाहिए वह ऐसी होनी चाहिए कि समय की माँगों की पूर्ति कर सके।

प्रश्न 25. पाठ्यचर्या नियोजन किन आधारों पर होता है ? **(भोपाल 2022)**

उत्तर—पाठ्यचर्या नियोजन वह प्रक्रिया है जो इस बारे में निर्णय लेने से संबंधित है कि क्या सीखना है क्यों और कैसे शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया का मौजूद पाठ्यचर्या आवश्यकताओं और उपलब्ध संसाधनों को ध्यान में रखते हुए व्यवस्थित करना है। पाठ्यचर्या नियोजन शिक्षण और अधिगम की सुविधा के लिये मानचित्र है। निम्न सिद्धांतों पर पाठ्यचर्या का नियोजन होता है।

1. उद्देश्यों की प्राप्ति का सिद्धांत—पाठ्यचर्या उद्देश्यों प्राप्ति का साधन होती है अतः किसी भी स्तर की पाठ्यचर्या का निर्माण करते समय हमें उस स्तर की शिक्षा के उद्देश्यों को सामने रखना चाहिए और पाठ्यचर्या में उन्हीं विषयों एवं क्रियाओं का समावेश करना चाहिए जिनके ज्ञान एवं अभ्यास से छात्र वैसे बने जैसा हम उन्हें बनाना चाहते हैं। शिक्षा का उद्देश्य बच्चों का शारीरिक, मानसिक, सांस्कृतिक एवं चारित्रिक विकास करना, उनकी सृजनात्मक शक्तियों को सचेष्ट करना उन्हें लोकतंत्रीय जीवन में प्रशिक्षित करना और राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर उन्मुख करना उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये आवश्यक विषयों एवं क्रियाओं का चयन करना चाहिए और शिक्षा के विभिन्न स्तरों प्राथमिक, उच्च प्राथमिक एवं माध्यमिक के लिए उनका स्वरूप एवं सीमा निश्चित करनी चाहिए।

2. उपयोगिता का सिद्धांत—प्रथम 10 वर्षीय शिक्षा का मूल उद्देश्य बच्चों को सामान्य जीवन के योग्य बनाता है। तब इस स्तर की पाठ्यचर्या में सामान्य जीवन के लिए उपयोगी समस्त ज्ञान एवं क्रियाओं का समावेश करना चाहिए। हम यह जानते हैं कि मनुष्य को सामान्य जीने के लिए स्वस्थ शरीर की आवश्यकता होती है, सामाजिक जीवन के लिए सामाजिक एवं सांस्कृतिक मानदण्डों का

ज्ञान आवश्यक होता है और गणित के ज्ञान की आवश्यकता है। यह विज्ञान का युग है अतः विज्ञान का सामान्य ज्ञान भी आवश्यक होता है। अतः इस स्तर की पाठ्यचर्या में इस सबका समावेश होना चाहिए। पाठ्यचर्या बच्चों के वास्तविक जीवन से संबंधित होनी चाहिए और आदर्श जीवन की ओर ले जाने वाली होनी चाहिए।

3. वरीयता क्रम का सिद्धांत—किसी भी स्तर की शिक्षा की पाठ्यचर्या में अनेक विषयों एवं क्रियाओं का समावेश किया जाता है। पाठ्यचर्या निर्माण करते समय यह देखना भी आवश्यक होता है कि कौन—सा पाठ्य विषय अथवा क्रिया बच्चों के वर्तमान और भविष्य की दृष्टि से कितनी उपयोगी है। पाठ्यचर्या में उसे उतना ही महत्व देना चाहिए। वरीयता से यहाँ तात्पर्य उनके लिए समय निर्धारण करने से होता है। अतः इनके ज्ञान एवं कौशल के विकास के लिए सबसे अधिक समय निश्चित करना चाहिए।

4. अग्रदर्शिता का सिद्धांत—शिक्षा द्वारा हम बच्चों को वर्तमान के साथ—साथ भविष्य के लिए भी तैयार करते है। अतः किसी भी स्तर की पाठ्यचर्या निश्चित करते समय भविष्य में होने वाले परिवर्तनों का अनुमान लगाना और उनके अनुसार शिक्षा की पाठ्यचर्या में तत्संबंधी विषयों एवं क्रियाओं का समावेश आवश्यक होता है।

5. रुचि, रूझान, योग्यता एवं क्षमता का सिद्धांत—किसी भी स्तर की शिक्षा की पाठ्यचर्या का निर्माण करते समय उस स्तर के बच्चों की रुचि, रूझान, योग्यता एवं क्षमता को भी ध्यान में रखना चाहिए। जैसे—प्राथमिक शिक्षा स्तर पर पूर्व बाल्यावस्था के बालक पढ़ते हैं, उच्च प्राथमिक स्तर पर उत्तर बाल्यावस्था के बालक पढ़ते हैं और माध्यमिक स्तर पर किशोरावस्था के किशोर पढ़ते हैं और उनकी रुचियों एवं क्षमता में बड़ी मित्रता होती है। क्षमता से यहाँ तात्पर्य उनकी शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार की क्षमताओं से होता है। हमें इस स्तर के बच्चों के लिए पाठ्यसामग्री एवं क्रियाओं का चयन करते समय उनकी रुचियों एवं क्षमता का विशेष ध्यान रखना चाहिए। उसी स्थिति में उनमें रुचि लेंगे और उनसे लाभान्वित होंगे।

6. क्रिया एवं सृजनात्मक का सिद्धांत—शिशुकाल व्यक्तित्व निर्माण की आधारशिला का काल है। बाल्य एवं किशोर काल उसके दृढ़ीकरण के काल हैं। बाल्यकाल के आयु वर्ग के बच्चे क्रियाशील होते हैं। क्रिया के स्वतंत्र अवसर देने से बच्चों में सृजनात्मकता का विकास होता है। क्रिया द्वारा सीखा हुआ ज्ञान स्पष्ट एवं स्थायी होता है।

7. स्तरानुकूल पाठ्यचर्या का सिद्धांत—पूर्व बाल्यकाल, उत्तर बाल्यकाल और किशोर काल के बच्चों के शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक और सामाजिक विकास में भिन्नता होती है। यही कारण है कि आज प्राथमिक, उच्च प्राथमिक और माध्यमिक स्तर के लिए पाठ्य विषयों का विस्तार एवं क्रियाओं का चयन यथा स्तर के बच्चों के शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक और सामाजिक विकास के आधार पर करने पर बल दिया जाता है।

8. सुसम्बद्धता का सिद्धांत—पाठ्यचर्या के संदर्भ में सुसम्बद्धता का अर्थ है कि शिक्षा के किसी भी स्तर की पाठ्यचर्या का संबंध उस स्तर के बच्चों के वास्तविक जीवन से होनी चाहिए, उस स्तर पर जो भी विषय पढ़ाए जायें, उनकी पाठ्य सामग्री में संबंध होना चाहिए और जो भी क्रियायें कराई जायें उनमें भी सुसंबद्ध होना चाहिए। साथ ही विभिन्न स्तरों की पाठ्यचर्या से सुसंबंध होना चाहिए। पाठ्य सामग्री एवं क्रियाओं में सुसंबद्धता का अर्थ है कि उन्हें एक इकाई के रूप में विकसित किया जा सके और विभिन्न स्तरों की पाठ्यचर्या में सुसंबद्ध का अर्थ है—वे एक दूसरे से जुड़ी हों। हमारे देश में शिक्षा को तीन स्तरों में बाँटा है अतः पाठ्यचर्या का नियोजन करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए किसी भी स्तर की पाठ्यचर्या उससे आगे वाले पाठ्यचर्या के आधार पर विकसित हो और उससे आगे आने वाले स्तर की पाठ्यचर्या के लिए कार्य करें।

9. कौतुहल, पवित्रता एवं सामान्यीकरण का सिद्धांत—पाठ्यचर्या का निर्माण करते समय हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह बच्चों में कौतूहल जागृत करे जिससे बच्चे ज्ञान को ग्रहण करते रहें और क्रियाओं में प्रशिक्षित होने की जिज्ञासा स्वयं प्रकट करें। अर्थात पाठ्यचर्या ऐसी होनी चाहिए जो बच्चों को यथा ज्ञान एवं क्रियाओं की ओर आकर्षित करे और जिसे पूरा करने के बाद बच्चे वास्तविक जीवन में सफल हो सके।

प्रश्न 26. कैरीकुलम फ्रेमवर्क क्या है ? इसे कौन प्रकाशित करता है ? (भोपाल 2022)

उत्तर—पाठ्यचर्या की रूपरेखा एक संगठित योजना या मानकों या सीखने के परिणामों का समूह है जो सीखी जाने वाली सामग्री को स्पष्ट, निश्चित मानकों के संदर्भ में परिभाषित करता है कि छात्र को क्या जानना चाहिए और क्या करने में सक्षम होना चाहिए। पाठ्यचर्या ढाँचा परिणाम-आधारित शिक्षा या मानक आधारित शिक्षा सुधार डिजाइन का हिस्सा है।

शिक्षा में पाठ्यचर्या का नवीनीकरण और विकास निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली (NCERT) भारत सरकार को शिक्षा के क्षेत्र में विशेषकर विद्यालयीन शिक्षा में नीतियों और कार्यक्रमों के निर्धारण और क्रियान्वयन में सहयोग और परामर्श देती है।

एक गतिशील क्रिया के रूप में पाठ्यचर्या के निर्माण की प्रक्रिया का तेजी से बदलते समाज के प्रति उत्तरदायी होना आवश्यक है। पाठ्यचर्या हमें एक ऐसी शैक्षिक प्रणाली की ओर मोड़ती है जो असमानताओं को घटाती है और उत्कृष्टताओं को प्रोत्साहित करती है। पाठ्यचर्या एक प्रमुख सरोकार है समरसतापूर्ण समाज के विकास के लिए शिक्षा उपलब्ध कराना, जिससे विभिन्न समूहों जैसे विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों और सुविधा वंचित समूहों के शिक्षार्थियों के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर तथा उनके लिए शिक्षा की समान सुलभता सुनिश्चित की जा सके विद्यालयीन शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा -2000 में कहा गया है—पाठ्यचर्या तीन स्तम्भों, प्रासंगिकता, समता और उत्कृष्टता पर आधारित होनी चाहिए। राष्ट्रीय पहचान का सुदृढ़ीकरण और सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण साथ ही स्वदेशी ज्ञान का समावेश प्रमुख मुद्दे हैं।

सबसे बड़ी चुनौती है कि पाठ्यचर्या के विभिन्न सरोकार इस प्रकार से जुड़े कि यह बोझिल न बने, प्रासंगिक व प्रभावशाली हो। बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए संज्ञान, संवेग, क्रिया और कर्म के बीच अन्तर्संबंध जरूरी है। वैज्ञानिक तरीकों से ज्ञान प्राप्त करने के साथ-साथ रचनात्मक क्रियाकलापों द्वारा ज्ञान अर्जन करने में सामाजिक अनुभवों का एक विस्तृत क्षेत्र भी बच्चों को प्राप्त होता है। इससे उन्हें सक्रिय रूप से सिखाने में मदद मिलती है। बुद्धि की पारम्परिक अवधारणा के विपरीत बहुविध-बुद्धि अधिक मान्य होने लगी है, इसलिए पाठ्यचर्या में इनकी झलक मिलना आवश्यक है।

सांस्कृतिक तथा परिवेश के अनुकूल शिक्षण प्रविधि सौन्दर्य बोध युक्त संवेदना, सतत, व्यापक, मूल्यांकन, शिक्षकों का सबलीकरण पाठ्यचर्या गत प्रमुख सरोकार है जिन पर प्रभावी ढंग से ध्यान देना जरूरी है। तेजी से बदलते विश्व में नवीन ज्ञान चेतनाएँ पाठ्यचर्या में उचित स्थान पर हो इसके लिए शिक्षा को आजीवन चलने वाली प्रक्रिया के रूप में देखना होगा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की इस सिफारिश के बावजूद कि विभिन्न अवस्थाओं में पोषित व विकसित की जाने वाली दक्षताओं/कौशलों व मूल्यों की पहचान की जाए, स्कूली शिक्षा उन परीक्षाओं द्वारा और अधिक संचालित होती चली गयी जो महज जानकारी से भरी पाठ्यपुस्तकों पर आधारित है। अब स्कूली शिक्षा की भावी आवश्यकताओं को रेखांकित करना आवश्यक है जैसे—शिक्षा के लक्ष्य, बच्चों का सामाजिक परिप्रेक्ष्य, ज्ञान की प्रकृति मानव विकास की प्रकृति और मनुष्य के सीखने की प्रक्रिया।

पाठ्यचर्या प्रारूप वह ढाँचा या रूपरेखा है जिसमें विद्यालय के शैक्षिक अनुभवों का चयन, योजना, क्रियान्वयन आदि सम्मिलित है। पाठ्यचर्या के फ्रेमवर्क को आठ स्तरों में बाँटा गया है–

(1) नियोजन, (2) निर्माण, (3) प्रारूपण, (4) विकास, (5) क्रियान्वयन, (6) मूल्यांकन, (7) पुनरीक्षण, (8) सुधार।

प्रश्न 27. पाठ्यक्रम व्यवस्था के प्रमुख अंगों को लिखिए। **(उज्जैन 2022)**

उत्तर–शिक्षा एक विकास की प्रक्रिया मानी जाती है जिसमें बालक के बहुमुखी तथा सर्वांगीण विकास का प्रयास किया जाता है। शिक्षण क्रियाओं का आधार पाठ्यवस्तु या विषय वस्तु होती है। विषय वस्तु के प्रारूप को साधारणत: पाठ्यक्रम कहते हैं। शिक्षा तथा शिक्षण का स्वरूप पाठ्यक्रम के प्रारूप द्वारा निर्धारित होता है। शिक्षा की प्रक्रिया की धुरी पाठ्यक्रम है।

शिक्षा की प्रक्रिया का सम्पादन शिक्षक द्वारा किया जाता है शिक्षक अपनी क्रियाओं का नियोजन कक्षा शिक्षण के लिए करता है उसके प्रमुख तीन तत्व होते हैं–

(1) उद्देश्य, (2) पाठ्यवस्तु, (3) शिक्षण विधियाँ।

पाठ्यक्रम विकास में पाठ्यवस्तु तथा शिक्षण विधियों को महत्व दिया जाता है। पाठ्यवस्तु तथा शिक्षण विधियों का नियोजन उद्देश्यों की दृष्टि से किया जाता है। एक पाठ्यवस्तु से कई उद्देश्य प्राप्त किये जा सकते हैं परन्तु अधिगम–अवसरों एवं परिस्थितियाँ उद्देश्यों के स्वरूप को सुनिश्चित करते हैं। विशिष्ट उद्देश्यों हेतु विशिष्ट अधिगम परिस्थितियों का नियोजन किया जाता है। शिक्षण तथा अधिगम क्रियायें पाठ्यक्रम के ही प्रमुख अंग माने जाते हैं। इस प्रकार चार मूल तत्व माने हैं– उद्देश्य, पाठ्यवस्तु, शिक्षण विधियाँ तथा मूल्यांकन। इन तत्वों में गहन संबंध होता है।

1. उद्देश्य–पाठ्यवस्तु, शिक्षण विधियों तथा परीक्षणों का नियोजन उद्देश्यों की दृष्टि से किया जाता है। अधिगम परिस्थितियों के स्वरूप से इन्हें प्राप्त करते हैं। पाठ्यक्रम के निम्न उद्देश्य होते हैं–

(1) उचित वातावरण की रचना करना ताकि प्रत्येक व्यक्ति जीवन में सफलता प्राप्त करना सीखे।

(2) समस्याओं का सामना करना तथा उन्हें हल करना।

(3) छात्रों के चरित्र का निर्माण करना ताकि उनमें सहयोग, सत्यपरायणता, ईमानदारी, सहनशीलता आदि गुण विकसित हो सके।

(4) छात्रों की लोकतंत्र समाज में अच्छे नागरिक बनने में सहायता करना।

(5) छात्रों की आवश्यकताओं, रूचियों एवं योग्यताओं के विकास में सहायता करना।

(6) छात्रों के शारीरिक, बौद्धिक, संवेगात्मक, सामाजिक, सौन्दर्यात्मक, नैतिक, अकादमिक, व्यावसायिक तथा आध्यात्मिक विकास में सहायता करना।

2. पाठ्यवस्तु–पाठ्यवस्तु का स्वरूप अधिक व्यापक होता है। अधिगम परिस्थितियाँ उस स्वरूप को सुनिश्चित करती है। पाठ्यवस्तु पाठ्यक्रम के निर्माण में सहायक होती है। पाठ्यवस्तु पाठ्यपुस्तक की भाषा तथा अन्य तत्वों को निश्चित करती है। अत: हम कह सकते हैं कि पाठ्यवस्तु किसी विद्यालयी या शैक्षिक विषय की उस विस्तृत रूप रेखा से है जिसमें विद्यालय शिक्षक, शिक्षार्थी एवं समुदाय के उत्तरदायित्वों के निर्वहन के साथ–साथ छात्र के सर्वांगीण विकास के अध्ययन तत्व समाहित होते हैं। पाठ्यवस्तु का संबंध ज्ञानात्मक पक्ष के विकास से होता है। विद्यालय के भीतर शिक्षण क्रियाओं का संबंध ज्ञानात्मक पक्ष से होता है। पाठ्यवस्तु का स्वरूप सुनिश्चित होता है एवं इसके अंतर्गत सिर्फ शिक्षण विषयों के प्रकरणों को शामिल किया जाता है। पाठ्यवस्तु और पाठ्य–पुस्तक घनिष्ठ रूप से अन्तर्सम्बन्धित है। पाठ्यपुस्तकें हमेशा पाठ्यवस्तु के शैक्षिक उद्देश्यों को ध्यान में रखकर बनायी जाती है। पाठ्यवस्तु संपूर्ण शैक्षिक सत्र में विभिन्न विषयों में शिक्षक द्वारा

छात्रों को दिये जाने वाले ज्ञान की मात्रा के विषय में निश्चित जानकारी पेश करती है। यह एक प्रकार की संरचना बताती है कि किस स्तर पर छात्रों को किसी विषय का कितना ज्ञान देता है।

3. शिक्षण विधियाँ—शिक्षण विधियों का संबंध पाठ्यवस्तु से होता है। जिस ढंग से शिक्षण शिक्षार्थी को ज्ञान प्रदान करता है उसे शिक्षण विधि कहते हैं। इसके अंतर्गत् अनेक प्रणालियाँ एवं योजनाएँ सम्मिलित की जाती है। शिक्षण विधियाँ अनेक प्रकार की हैं। जैसे—(1) आगमन विधि, (2) निगमन विधि, (3) खेल विधि, (4) प्रोजेक्ट विधि, (5) करके सीखना विधि, (6) शोध विधि, (7) दृष्टांत विधि, (8) वस्तु विधि, (9) कथन विधि एवं व्याख्यान विधि, (10) प्रश्नोत्तर विधि इत्यादि। परन्तु शिक्षण की सर्वोत्तम विधि प्रदर्शन विधि है। जो कि अनुभव आधारित विधि है। शिक्षण विधि का उपयोग शिक्षक और बच्चों के बीच अंतःक्रिया के दौरान किया जाता है। शिक्षण विधि का प्रयोग करने से बच्चों का मानसिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक विकास होता है तथा शिक्षक और छात्र के संबंध अच्छे रहते हैं।

4. मूल्यांकन—परीक्षा द्वारा पाठ्यवस्तु तथा शिक्षण विधियों की उपादेयता के संबंध में जानकारी होती है। पाठ्यक्रम की संरचना का अंतिम सोपान संपूर्ण प्रक्रिया के उद्देश्यों की प्राप्ति की दृष्टि से मूल्यांकन करता है। पाठ्यक्रम के मूल्यांकन से तात्पर्य शैक्षिक प्रयासों के परिणामस्वरूप उत्पन्न व्यवहारगत परिवर्तनों की प्रकृति दिशा तथा सीमा के प्रमाण को प्राप्त करना तथा उनको पाठ्यक्रम प्रक्रिया के पक्षों में सुधार लाने के लिए मार्ग दर्शक के रूप में प्रयुक्त करना है। स्पष्ट है कि यह प्रमाण केवल छात्रों में हुए परिवर्तनों से ही प्राप्त किया जा सकता है। कुछ स्थितियों में इनका मापन वस्तुनिष्ठ रूप में तथा संख्यात्मक रूप में करना संभव है किन्तु अधिकांशतः गुणात्मक मापन ही किया जा सकता है तथा इसे ही पर्याप्त माना जाता है।

प्रश्न 28. NCF- 2005 क्या है ? समझाइए। **(भोपाल 2022; छिंदवाड़ा 22)**

उत्तर— NCF- 2005 भारत के स्कूलों के लिए पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों और शिक्षण प्रथाओं के लिए एक दिशा निर्देश के रूप में कार्य करता है। NCF- 2005 ने शिक्षा पर पिछली सरकारी रिपोर्ट जैसे लर्निंग विदाउट बर्डन और नेशनल पॉलिसी ऑफ एजुकेशन 1986-1992 और फोकस ग्रुप डिस्कशन पर अपनी नीतियों को आधारित किया है। NCF को हिन्दी में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा भी कहा जाता है।

NCF 2005 विद्यालयी शिक्षा का नवीनतम राष्ट्रीय दस्तावेज है। शिक्षा के क्षेत्र की समस्याओं को दूर करने के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा का निर्माण किया गया है। पाठ्यचर्या रूपरेखा का मतलब 'पाठ्यक्रम की संरचना' होता है। पाठ्यक्रम एक ऐसी संरचना है जिससे ज्ञान के भंडार में वृद्धि होती है। समाज में होने वाले परिवर्तन का प्रभाव पाठ्यक्रम में दिखाई पड़ता है। पाठ्यक्रम में समय के अनुसार बदलाव ही शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक होता है। शिक्षण समस्याओं को देखते हुए NCF 2005 का निर्माण किया गया।

NCF का सिद्धांत—NCF के सिद्धांत निम्न हैं—

(1) ज्ञान को स्कूल के बाहरी जीवन से जोड़ा जाए—ज्ञान को केवल स्कूली ज्ञान तक सीमित नहीं रखा जाए। स्कूल के बाहर के वातावरण से ज्ञान को जोड़ा जाए।

(2) पढ़ाई को रटंत प्रणाली से मुक्त रखा जाए—NCF का यह सिद्धांत बच्चों के पढ़ाई को रटंत प्रणाली से दूर रखता है। बच्चों को रटने के लिए प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए। समझने के लिए बच्चों को उत्सुक किया जाए। बच्चों को करके सीखने पर बल दिया जाए। जैसे बच्चों को प्रोजेक्ट कार्य, करने के लिये प्रोत्साहित करें।

(3) पाठ्यचर्या पाठ्यक्रम केन्द्रित न हो—पाठ्यचर्या पाठ्यक्रम केन्द्रित नहीं होना चाहिए और न ही शिक्षक केन्द्रित होना चाहिए। पाठ्यचर्या बाल केन्द्रित होना चाहिए। पाठ्यचर्या बच्चों के अनुसार होना चाहिए जो बच्चे पढ़ने में रुचि रखते हैं जिस विषय के बारे में बच्चे पढ़ना चाहते हैं।

(4) कक्षा–कक्ष को गतिविधियों से जोड़ा जाए–स्कूल में दी जाने वाली शिक्षा को विभिन्न गतिविधियों से जोड़ा जाए। जैसे 'वन संरक्षण' का ज्ञान देने हेतु बच्चों को पेड़ लगाने व उसकी देखभाल करने के लिए प्रोत्साहित किया जाये।

(5) राष्ट्रीय मूल्यों के प्रति आस्थावान विद्यार्थी तैयार किया जाए–बच्चों में नैतिकता का विकास किया जाए। बच्चों को नैतिक शिक्षा के बारे में बताया जाए। राष्ट्रीय मूल्यों के बारे में कक्षा में बताया जाए।

NCF की विशेषता–NCF की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं–

(1) NCF 2005 के अनुसार प्राथमिक स्तर में शिक्षण कार्य की भाषा मातृभाषा होना चाहिए।

(2) अभिभावकों को समझाया जाए कि बच्चों को छोटी उम्र में निपुण बनाने की इच्छा न रखे क्योंकि बच्चा उम्र के साथ ही निपुण हो सकता है।

(3) मोटी किताबें शिक्षा प्रणाली की असफलता का प्रतीक है।

(4) विद्यार्थियों को दी जाने वाले शिक्षा में शिक्षण सूत्र जैसे अज्ञात से ज्ञात की ओर, मूर्त से अमूर्त का प्रयोग करें।

(5) बच्चों को पुस्तकालय में स्वयं पुस्तक चुनने का अवसर दें।

(6) सजा व पुरस्कार की भावना को सीमित रूप से प्रयोग किया जाए।

(7) NCF 2005 बिना बोझ के शिक्षा पर जोर देता है।

(8) सांस्कृतिक कार्यक्रमों में मनोरंजन के स्थान पर सौन्दर्य बौद्ध को बढ़ावा दे।

(9) शिक्षण अधिगम में मातृभाषा का प्रयोग करें।

(10) किसी भी प्रकार सूचना को ज्ञान मानने से बचें।

(11) सह–शैक्षिक गतिविधियों में विद्यार्थी के अभिभावकों को शामिल किया जाय। इससे अभिभावक को बच्चे के ज्ञान के बारे में जानकारी मिलेगी।

(12) कक्षा–कक्ष बाल केन्द्रित हो। बालकों के चहुँमुखी विकास पर आधारित पाठ्यक्रम हो।

(13) समावेशी शिक्षा पर बल दिया जाए।

(14) विशिष्ट बालक और सामान्य बालक दोनों को एक साथ समावेशी कक्षा में पढ़ाया जाए।

प्रश्न 29. पाठ्यक्रम निर्माण के विभिन्न उद्देश्यों पर प्रकाश डालिए। (छिंदवाड़ा 2022)

उत्तर– किसी समाज के लिए शिक्षा के पाठ्यक्रम का निर्धारण करने में दर्शनिक विचारधारा, सामाजिक मूल्यों, विश्वासों एवं परम्पराओं, राजनीतिक विचारधारा, मनोवैज्ञानिक एवं वैज्ञानिक प्रवृत्तियों आदि की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। पाठ्यक्रम का निर्माण के इन प्रभावों को उद्देश्यों के रूप में बाँध दिया गया है। जो निम्नलिखित हैं–

1. जीवन से संबंधित–पाठ्यक्रम के निर्माण का प्रमुख उद्देश्य है कि पाठ्यक्रम में उन्हीं विषयों, क्रियाओं एवं वस्तुओं को सम्मिलित किया जाये जिनका किसी–न–किसी रूप से बालकों के वर्तमान जीवन से संबंध हो तथा साथ ही वे उनके भावी जीवन के लिये उपयोगी भी हो। ऐसे विषयों का अध्ययन करके ही बालक जीवन में सफलता प्राप्त कर सकेंगे।

2. शैक्षिक उद्देश्यों के अनुरूपता–पाठ्यक्रम शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन है अतः पाठ्यक्रम का निर्धारण करते समय शिक्षा के उद्देश्यों पर निरन्तर ध्यान रखना चाहिए। इसलिए पाठ्यक्रम में उन्हीं विषयों एवं क्रियाओं का समावेश करना चाहिए जो शिक्षा के उद्देश्यों के अनुकूल हो। शिक्षा का उद्देश्य बालकों का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं चारित्रिक विकास करने के साथ–साथ उन्हें किसी उद्योग अथवा उत्पादन कार्य में निपुण करना है। अर्थात् पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय इन उद्देश्यों को सामने रखना चाहिये। उद्देश्यों की प्राप्ति के

लिये तद्नुकूल विषयों एवं क्रियाओं का पाठ्यक्रम में समावेश किया जाना चाहिए। इसके साथ ही विभिन्न स्तरों के लिए इन विषयों के ज्ञान के स्वरूप एवं सीमा का भी निर्धारण किया जाना चाहिए।

3. उपयोगिता—पाठ्यक्रम में उन्हीं विषयों को स्थान देना चाहिए जो बालकों के भावी जीवन में काम आ सके। बालकों को ऐसी बाते सिखायी जाना चाहिए जो जीवन के लिए उपयोगी हो। उपयोगिता की दृष्टि से ही विषयों के क्रम का निर्धारण किया जाना चाहिए अर्थात् सर्वाधिक उपयोगी विषय को प्रथम स्थान पर रखना चाहिए।

4. रचनात्मक एवं सृजनात्मक शक्तियों के उपयोग—बालकों में रचनात्मक प्रवृत्ति बहुत अधिक होती है। अतः पाठ्यक्रम में ऐसे अवसर प्रदान किये जाने चाहिए जिससे उनकी रचनात्मक एवं सृजनात्मक शक्तियों का अधिक से अधिक उपयोग किया जा सके। इसके लिए बालकों को प्रोत्साहित भी किया जाना चाहिए तथा उचित निर्देशन प्रदान करना चाहिए।

5. खेल एवं कार्य की क्रियाओं के अंतसम्बन्ध—बालक खेल की क्रियाओं में बहुत अधिक रूचि रखता है किन्तु कार्य के प्रति वैसी रुचि प्रदर्शित नहीं करता है। इसका कारण यह है कि खेल से उसे आनन्द की अनुभूति होती है। अतः पाठ्यक्रम निर्माण में इस बात पर बल दिया जाना चाहिए कि ज्ञान संबंधी क्रियाओं से भी बालकों को खेल की क्रियाओं के समान ही आनन्द प्राप्त हो सके। ज्ञान की क्रियाओं को रूचिकर बनाने के लिए उन्हें खेल की क्रियाओं से संबंधित करने का प्रयास किया जाये।

6. संस्कृति एवं सभ्यता का ज्ञान—पाठ्यक्रम के निर्माण के समय इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए इसमें उन विषयों, वस्तुओं एवं क्रियाओं को अवश्य सम्मिलित किया जाये जिससे बालकों को अपनी संस्कृति एवं सभ्यता का ज्ञात प्राप्त हो सके। शिक्षा का एक उद्देश्य संस्कृति एवं सभ्यता का संरक्षण का विकास करना है। अतः पाठ्यक्रम इस उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक होना चाहिए।

7. व्यक्तिगत भिन्नता एवं लचीलापन—मनोविज्ञान के विकास के पूर्व सभी के लिए एक जैसा पाठ्यक्रम उपयुक्त समझा जाता था परन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रत्येक बालक की रूचियाँ, आवश्यकताएँ, क्षमताएँ, योग्यताएँ, मनोवृत्तियाँ एवं बुद्धि एक–दूसरे से भिन्न होती है तथा उनका अपना विशिष्ट व्यक्तित्व होता है। अतः पाठ्यक्रम में विविधता एवं लचीलापन का होना अति आवश्यक है। इससे पाठ्यक्रम में आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सकता है।

8. अग्रदर्शिता—पाठ्यक्रम निर्माण में उन्हीं विषयों एवं क्रियाओं को समाविष्ट करना चाहिए जो बालक के जीवन से संबंधित हो, किन्तु सफल जीवनयापन के ऐसे विषयों, वस्तुओं एवं क्रियाओं को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए जो बालक के जीवन में आने वाली समस्याओं एवं परिस्थितियों को समझने एवं उनका समाधान करने में सहायक सिद्ध हो सके।

9. अनुभवों की पूर्णता—पाठ्यक्रम के अंतर्गत मानव जाति के अनुभवों की पूर्णता निहित होनी चाहिए। अर्थात् पाठ्यक्रम में परम्परागत ढंग से पढ़ाये जाने वाले सैद्धांतिक विषयों के साथ–साथ उन सभी अनुभवों को भी स्थान दिया जाना चाहिए जिनको बालक विभिन्न क्रियाओं द्वारा प्राप्त करता है। ये क्रियायें विद्यालय, खेल के मैदान, कक्षा–कक्ष, प्रयोगशाला, पुस्तकालय, तथा छात्रों एवं शिक्षकों को अनौपचारिक संपर्कों में निरन्तर गतिशील रहती है। इस दृष्टि से विद्यालय का संपूर्ण जीवन ही पाठ्यक्रम है।

10. उत्तम आचरण के आदर्शों की प्राप्ति—बालक के सामाजीकरण तथा सफल एवं व्यवहार कुशल भावी जीवन के लिए उत्तम आचरण का विकास करना आवश्यक होता है। अतः पाठ्यक्रम में उन विषयों, वस्तुओं एवं क्रियाओं का समावेश किया जाना चाहिए, जिससे बालकों को उत्तम आचरणों

के आदर्शों की शिक्षा मिल सके तथा उनका अनुसरण करके उनमें समाजहित, देश–हित तथा परोपकार की भावना का विकास हो सके।

11. जीवन संबंधी क्रियाओं एवं अनुभवों का समावेश–शिक्षा का उद्देश्य जीवन को पूर्णता प्रदान करता है। अतः पाठ्यक्रम जीवन से संबंधित उन सभी क्रियाओं एवं अनुभवों को स्थान दिया जाना चाहिए जिससे बालको का सर्वांगीण विकास सुनिश्चित हो सके। इसके लिए पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय ऐसे प्रयत्न किये जाने चाहिए कि उसमें वे सभी क्रियाएँ समाहित हो जायें जिनसे बालक शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, राजनीतिक, चारित्रिक, आध्यात्मिक विकास संभव हो सके। इसके अलावा पाठ्यक्रम में ऐसी क्रियाओं एवं अनुभवों को स्थान दिया जाना चाहिए जो लोकतांत्रिक दृष्टिकोण को अधिक–से–अधिक विकसित कर सके।

12. विकास की सतत् प्रक्रिया–किसी भी देश की शिक्षा पर उसके दर्शन समाज, राजनीतिक स्थिति, वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक प्रगति आदि का प्रभाव पड़ता रहता है। अतः किसी भी पाठ्यक्रम को स्थायी रूप से सदैव के लिए निर्मित नहीं किया जा सकता है। समय एवं परिस्थितिजन्य आवश्यकताओं के अनुसार उसमें परिवर्तन करना आवश्यक होता है। अतः पाठ्यक्रम निर्माण में विकास की सतत् प्रक्रिया रखना अनिवार्य होता है।

13. सामुदायिक जीवन से संबंध–पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय स्थानीय आवश्यकताओं एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उन सभी सामाजिक प्रथाओं, मान्यताओं, विश्वासों, मूल्यों एवं समस्याओं को स्थान दिया जाना चाहिए, जिनसे बाल सामुदायिक जीवन की प्रमुख बातों से परिचित हो सके।

14. अवकाश के लिए प्रशिक्षण–वर्तमान समय में अवकाश के सदुपयोग की भी समस्या है। यदि अवकाश के उपयोग का बालक को सही प्रशिक्षण नहीं दिया जाता है। तब उसके गलत दिशा में जाने की संभावना अधिक रहती है। अतः पाठ्यक्रम इस प्रकार का होना चाहिए जो बालकों को कार्य एवं अवकाश दोनों के लिए प्रशिक्षित कर सके।

15. जनतंत्रीय भावना का विकास–वर्तमान भारत ने लोकतंत्रीय शासन व्यवस्था को स्वीकार किया है। लोकतंत्रीय व्यवस्था के सुदृढ़ीकरण हेतु नागरिकों में जनतंत्रीय भावना का अधिकाधिक विकास होना चाहिए। अतः शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य बालकों में जनतंत्रीय भावना का विकास करना है। इसलिए पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जो जनतंत्र की भावना एवं आदर्शों का पोषक हो। इसके लिए विद्यालय के सभी कार्यों–प्रवेश, चयन, अध्ययन–अध्यापन, खेलकूद, मूल्यांकन आदि जनतंत्रीय भावना का समावेश होना चाहिए।

16. सह–संबंध–पाठ्यक्रम के निर्धारण में इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि उसमें सम्मिलित किये जाने वाले विभिन्न विषय एक–दूसरे से संबंधित हो। अर्थात् एक विषय की शिक्षा दूसरे विषय की शिक्षा का आधार बन सके। इससे एकीकृत एवं सुसंबंध पाठ्यक्रम का निर्माण होता है। विषयों से संबंधित न होने पर पाठ्यक्रम की प्रभावशीलता समाप्त हो जाती है। अतः पाठ्यक्रम के निर्माण में सह–संबंध उद्देश्य बहुत महत्वपूर्ण है।

17. शिक्षा–जीवन की अवस्था–पाठ्यक्रम शिक्षा जीवन की तीन अवस्थाओं–कौतूहल, यथार्थता तथा सामान्यीकरण के अनुरूप होना चाहिए। अर्थात् पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जो बालकों को यथार्थ ज्ञान दे सके तथा जिससे वास्तविक जीवन में सफल हो सके।

●●

अध्याय 3

पाठ्यक्रम निर्माण

लघु एवं दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धांतों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

(जबलपुर 2021; ग्वालियर 21; रीवा 22; उज्जैन 21, 22; छतरपुर 22

***अथवा*, पाठ्यक्रम निर्माण के प्रमुख सिद्धांतों और पदों का वर्णन कीजिए।** (छतरपुर 2021)

***अथवा*, पाठ्यक्रम को हम किन सिद्धांतों के आधार पर समृद्ध बना सकते हैं ? समझाइए।**

उत्तर–पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धांत–पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धांत निम्न हैं–

1. शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति करने वाला सिद्धांत, 2. छात्र केन्द्रित पाठ्यचर्या का सिद्धांत 3. जीवन से संबंधित होने का सिद्धांत, 4. सामुदायिक जीवन से संबंध का सिद्धांत, 5. क्रियाशीलता को प्रेरित करने का सिद्धांत, 6. सृजनात्मक एवं रचनात्मक शक्तियों के प्रभाव का सिद्धांत, 7. व्यक्तिगत विभिन्नताओं का सिद्धांत, 8. उत्तम आचरण के आदर्शों की प्राप्ति का सिद्धांत, 9. सह–संबंध का सिद्धांत, 10. पाठ्यचर्या सहगामी क्रियाओं का सिद्धांत, 11. संस्कृति तथा सभ्यता के ज्ञान का सिद्धांत, 12. अनुभवों की पूर्णता का सिद्धांत, 13. अवकाश के लिए प्रशिक्षण का सिद्धांत एवं 14. दार्शनिक पृष्ठभूमि का सिद्धांत।

1. शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति करने वाला सिद्धांत (The principle of fulfilment of the aims of education)–

(1) पाठ्यक्रम (Curriculum) शिक्षा के अमूर्त उद्देश्यों को मूर्त रूप देने का साधन है।

(2) पाठ्यक्रम ऐसा हो जो शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक हो।

(3) पाठ्यक्रम वर्तमान पाठ्यचर्या पुस्तकीय तथा ज्ञानमूलक है।

(4) पाठ्यक्रम ऐसा हो जिससे छात्रों का ज्ञानात्मक, भावात्मक, क्रियात्मक, नैतिक, सामाजिक तथा व्यावसायिक विकास हो। दूसरे शब्दों में, पाठ्यचर्या सर्वांगीण विकास करने वाली हो।

(5) पाठ्यचर्या ज्ञान, आकलन, उपयोजन, कौशल, अभिरुचि एवं अभिवृत्ति जैसी सामान्य शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति का साधन बनने वाली हो।

2. छात्र केन्द्रित पाठ्यचर्या का सिद्धांत (Principle of Student centered curriculum)–

(1) संपूर्ण शिक्षण–प्रक्रिया का केंद्र बिंदु छात्र है। (2) पहले छात्रों पर बहुत कम ध्यान दिया जाता था, परंतु रूसो जैसे प्रकृतिवादी शिक्षाशास्त्रियों ने शिक्षा प्रक्रिया में विद्यार्थी को प्रमुख स्थान दिया। (3) प्रकृतिवादी विचारकों के कारण ही पाठ्यक्रम निर्माण करते समय बालकों को केन्द्रित किया जाने लगा। (4) इस विचारधारा के अनुसार, छात्रों की रुचि–अरुचि, आवश्यकता, आकांक्षा, प्रवृत्ति तथा आयु का ध्यान रखते हुए ही पाठ्यक्रम की रचना की जानी चाहिए, जिससे विद्यार्थी का व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास हो सके।

3. जीवन से संबंधित होने का सिद्धांत (Principle of belonging to life)–

(1) Curriculum में जिन विषयों का समावेश किया जाये उनका यथार्थ जीवन से संबंध होना चाहिए।

(2) जिस Curriculum में समाज की आवश्यकताएँ तथा समस्याएँ प्रतिबिम्बित नहीं होती, वह Curriculum कालबाह्य हो जाती है।

(3) Curriculum ऐसा हो, जो उन्हें जीवन जीने की सामर्थ्य प्रदान करें।

(4) दूसरे शब्दों में Curriculum जीवनाभिमुख हो।

(5) पाठ्यक्रम के माध्यम से विद्यालय एवं समाज का संबंध स्थापित किया जाना चाहिए।

(6) स्थानीय नैतिक शिक्षा तथा स्थानीय कार्यानुभव पर बल तथा महत्व दिया जाना चाहिए।

4. समुदाय केन्द्रित का सिद्धांत (The principle of community centricity)—

(1) छात्र किसी–न–किसी समुदाय का सदस्य अवश्य होता है।

(2) छात्र जिस समाज से आता है उस समाज के प्रति उसके कुछ उत्तरदायित्व होते हैं।

(3) प्रत्येक समाज की अपनी समस्याएँ तथा आवश्यकताएँ होती है।

(4) उन समस्याओं से परिचित होना हर विद्यार्थी के लिए आवश्यक है।

(5) पाठ्यक्रम का निर्माण इस प्रकार किया जाये कि उससे बालक के व्यक्तित्व के विकास के साथ–साथ समाज का विकास तथा कल्याण हो।

(6) पाठ्यक्रम ऐसा हो, जो समुदाय की आवश्यकताओं की पूर्ति करने तथा समस्याओं का निराकरण करने में समर्थ हो।

(7) पाठ्यक्रम तैयार करते समय समाज की गतिशीलता को अवश्य ध्यान में रखा जाना चाहिए।

(8) पाठ्यक्रम को भविष्यदर्शी होना चाहिए।

(9) बालकों की शिक्षा के लिए इस प्रकार की पाठ्यक्रम की रचना करनी चाहिए। जो बालक को भावी परिस्थितियों का ज्ञान कराए, सुखमय और सफल जीवन बिताने की क्षमता प्रदान करें और नई परिस्थितियों के साथ अनुकूल करने की शक्ति प्रदान करें।

5. क्रियाशीलता को प्रेरित करने का सिद्धांत (Principle of the motivate to the activity)—

(1) बच्चे जन्म से ही क्रियाशील होते हैं।

(2) विद्यार्थियों को केवल व्याख्यान, उपदेश में उतना आनंद नहीं आता जितना कि कोई कार्य करने में। पाठ्यक्रम तैयार करते समय इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि छात्रों का क्रियात्मक विकास हो।

(3) बच्चों की आयु के अनुसार, पाठ्यक्रम में कुछ क्रियाशीलता का समावेश होना चाहिए।

(4) **जॉन डीवी** ने, "करके सीखना" (Learning by doing) का समर्थन किया है।

(5) हमारे देश में जो शिक्षा प्रदान की जाती है उसमें बौद्धिक विकास पर ही बल दिया जाता है। इसलिए हमारे देश में पुस्तकीय ज्ञान की प्रधानता है।

(6) महात्मा गाँधी ने भी क्रियाशीलता को बहुत महत्व दिया है। उनके अनुसार हाथ, बुद्धि तथा हृदय का संतुलित विकास होना चाहिए।

(7) छात्रों की आयु को ध्यान में रखते हुए कृतियों का आयोजन किया जाना चाहिए।

6. सृजनात्मक एवं रचनात्मक शक्तियों के प्रभाव के सिद्धांत (Principle of influence of creative and creative power)—

(1) प्रत्येक बालक में जन्म से ही रचनात्मक एवं सृजनात्मक शक्तियाँ विद्यमान रहती है।

(2) प्रत्येक बालक में किसी–न–किसी क्षेत्र में रचनात्मक एवं सृजनात्मक कार्य करने की क्षमता अवश्य रहती है। अतः पाठ्यक्रम तैयार करते समय इस बात का ध्यान अवश्य रखा जाना चाहिए, जिसमें बालकों की सृजनात्मक एवं रचनात्मक क्षमता को व्यक्त करने का पूर्ण अवसर मिल सके।

(3) बालक को उसकी रचनात्मक एवं सृजनात्मक क्षमता का प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

7. व्यक्तिगत विभिन्नताओं का सिद्धांत (Principle of individual differences)—

(1) पाठ्यक्रम का निर्माण बालकों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।

(2) बालकों की रुचियों, आवश्यकताओं तथा क्षमताओं को ध्यान में रखकर तैयार किया जाना चाहिए। पाठ्यक्रम ही बालकों के विकास में सहायक होता है।

(3) पाठ्यक्रम में लचीलापन होनी चाहिए, समय–समय पर उसमें परिवर्तन करना आवश्यक है।

(4) पाठ्यचर्या में कठोरता नहीं होना चाहिए।

(5) पाठ्यक्रम छात्रों के लिए है, अतः परिस्थिति, स्थान, कला के अनुसार पाठ्यक्रम में परिवर्तन किया जाना चाहिए; जैसे–ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यार्थियों की आवश्यकताएँ तथा समस्याएँ शहरी क्षेत्र के छात्रों की समस्याओं से अलग होगी। अतः व्यक्तिगत विभिन्नताओं को ध्यान रखने की अत्यंत आवश्यकता है।

8. उत्तम आचरण के आदर्शों की प्राप्ति का सिद्धांत (Principle of attainment of ideals of good conduct)—

(1) बालक बड़ा होकर समाज में दूसरों के साथ सुख से रह सके। इसके लिए आवश्यकता इस बात की है कि छात्र–जीवन से ही उत्तम आचरण के संस्कार डाले जाये।

(2) छात्रों में उच्चादर्श भरे जाये जिससे बड़े होकर वे अपने अधिकार का उपयोग अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए ही न करें, बल्कि समाज और मानव कल्याण के लिए तत्पर हो।

(3) आज समाज में समाज–विरोधी गतिविधियों का बोलबाला है। उसका एकमात्र कारण यह है कि बचपन में बच्चों को अच्छा मार्गदर्शन नहीं मिलता है और आगे चलकर उनका आचरण समाज के अनुकूल नहीं बनता।

इसलिए इस बात की नितांत आवश्यकता है कि बालकों को उत्तम आचरण के आदर्शों को आत्मसात् करने की शिक्षा दी जाए। इस प्रकार की शिक्षा से वे समाज कल्याण कर सकते हैं।

9. सह–संबंध का सिद्धांत (Theory of Correlation)—

पाठ्यक्रम में सभी विषयों का एक–दूसरे से संबंध होना चाहिए तथा सभी विषयों का संबंध जीवन से भी होना चाहिए। यह संबंध दो प्रकार के होते हैं—

1. क्षितिजीय (Horizontal) एवं 2. ऊर्ध्वगामी (Vertical)।

1. क्षितिजीय—इस संबंध का अर्थ है कि एक कक्षा में अनेक विषयों का पारस्परिक संबंध हो। **जॉन डीवी** तथा **महात्मा गाँधी** का मत है कि जीवन में मिलने वाले अनुभव, विषयों के अनुसार अलग–अलग होते हैं परंतु उनका आपस में गहरा संबंध है।

2. ऊर्ध्वगामी— इस संबंध का अर्थ है कि एक कक्षा में अर्जित ज्ञान अगली कक्षा के लिए उपादेय हो। अगली कक्षा में नया ज्ञान मिलना चाहिए। इस प्रकार ज्ञान क्रमबद्ध तथा एकसूत्र में बंधा होना चाहिए और छात्र को प्रगति के मार्ग में आगे ले जाने वाला हो।

10. पाठ्यचर्या–सहगामी क्रियाओं का सिद्धांत (Curriculum concurrent activities principle)—

(1) बालकों के बौद्धिक विकास से उनका पूर्ण विकास नहीं होता बल्कि उनका भावात्मक और क्रियात्मक विकास आवश्यक है।

(2) छात्रों में अनेक सुषुप्त तथा जन्मजात गुण होते हैं इसलिए उनको भी विकसित होने का अवसर मिलना चाहिए।

(3) बालकों के सर्वांगीण विकास के लिए सह–पाठ्यक्रम क्रियाशीलता (Co-curriculum activity) की व्यवस्था होनी चाहिए।

(4) सह–पाठ्यक्रम क्रियाशीलता हमारे सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन से संबंधित होना चाहिए। इस संबंध में शिक्षकों को छात्रों का मार्गदर्शन करना चाहिए।

(5) जीवन में प्रत्यक्ष अनुभवों के लिए छात्रों की आयु, रुचि, झुकाव तथा आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए सह–पाठ्यक्रम क्रियाशीलता की योजना तैयार की जानी चाहिए।

11. संस्कृति तथा सभ्यता के ज्ञान का सिद्धांत (Principle of knowledge of culture and civilization)–

(1) पाठ्यक्रम के द्वारा छात्रों को उनकी संस्कृति तथा सभ्यता का ज्ञान कराया जाना चाहिए।

(2) पाठ्यक्रम ऐसा हो जिससे बालकों का सांस्कृतिक विकास हो, बालक अपने पूर्वजों द्वारा अंकित ज्ञान का उपयोग अपने वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए करें।

(3) पाठ्यक्रम तैयार करते समय यह ध्यान रखा जाय कि उसमें जातीय, संस्कृति, परम्पराएँ तथा वातावरण प्रतिबिंबित होनी चाहिए।

(4) सांस्कृतिक विकास के लिए साहित्य, संगीत, कला, लोकगीत तथा हमारी सांस्कृतिक धरोहर का ज्ञान बालकों को दिया जाना चाहिए।

(5) भारत के अनेक सांस्कृतिक एवं धार्मिक स्थल हमारी संस्कृति के जीवन्त स्मारक है। जैसे–ताजमहल, लाल किला, खजुराहो के मंदिर, अजंता–एलोरा की गुफाएँ इत्यादि।

पाठ्यक्रम में इन सभी का समावेश होना आवश्यक है।

12. अनुभवों की पूर्णता का सिद्धांत (Principle of completeness of experiences)–

(1) हमारी वर्तमान पाठ्यक्रम में विषयों का स्पष्ट विभाजन है।

(2) छात्रों को अलग–अलग विषयों का ज्ञान दिया जाता है इसलिए बच्चों को पूर्ण अनुभव प्राप्त नहीं होता।

(3) आधुनिक दृष्टिकोण के अनुसार, पाठ्यक्रम का अर्थ केवल सैद्धांतिक विषयों के अध्यापन मात्र से नहीं है बल्कि इसका अर्थ विभिन्न प्रकार के अनुभव है जिनकों बालक विभिन्न क्रियाओं द्वारा प्राप्त करता है।

(4) ये क्रियाएँ कक्षा, प्रयोगशाला, पुस्तकालय, खेल का मैदान तथा शिक्षक एवं छात्रों के अनौपचारिक सम्पर्क में घटित होती है। बालक इन परिस्थितियों तथा क्रियाओं से विभिन्न प्रकार के अनुभव प्राप्त करता है।

(5) इस प्रकार के अनुभवों को ही पूर्ण अनुभव कहा जाता है। पूर्ण अनुभव प्राप्त करने का सबसे महत्वपूर्ण स्थान विद्यालय है। अतः विद्यालय का संपूर्ण जीवन ही पाठ्यक्रम है।

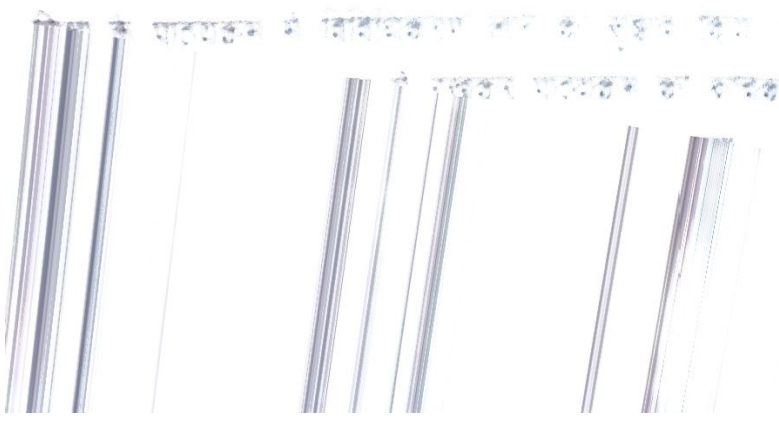
13. अवकाश के लिए प्रशिक्षण का सिद्धांत (The principle of leisure training)–

(1) पाठ्यक्रम का निर्माण इस प्रकार किया जाना चाहिए, कि छात्रों को कार्य का समय और अवकाश का समय बिताने हेतु प्रशिक्षित करें।

(2) अध्ययन के विषयों के साथ–साथ पाठ्यक्रम में अन्य गतिविधि को भी स्थान दिया जाना चाहिए; जैसे–खेलकूद, समाज सेवा, कला, संगीत, चित्रकला आदि के सौंदर्यबोधी तथा कलात्मक कार्य।

(3) इन क्रियाओं के द्वारा बालक अपने अवकाश के समय का सदुपयोग कर सकते हैं।

(4) इन कार्यों से छात्रों को आत्मिक आनंद भी मिलता है और उनकी प्रवृत्तियों का बहिष्कार भी होता है।



14. दार्शनिक पृष्ठभूमि का सिद्धांत (Principle of philosophical background)—

(1) पाठ्यक्रम की रचना में कोई–न–कोई दार्शनिक पृष्ठभूमि अवश्य होती है।

(2) दार्शनिक पृष्ठभूमि के अभाव में किसी भी उद्देश्य की पूर्ति नहीं की जा सकती। इसलिए पाठ्यक्रम निर्माण में जीवन–दर्शन, संस्कृति, आदर्श तथा जीवन–मूल्यों पर निश्चित रूप से विचार किया जाना चाहिए।

नन महोदय के अनुसार—"किसी भी राष्ट्र के विद्यालय वहाँ के जीवन के अंग है, जिनका प्रमुख कार्य वहाँ की आध्यात्मिक चेतना को मजबूत करना, ऐतिहासिक निरंतरता को कायम रखना, भूतकाल की उपलब्धियों को प्राप्त करना तथा भविष्य की गारंटी देना है।"

प्रश्न 2. पाठ्यक्रम निर्माण से आप क्या समझते हैं ? विस्तृत वर्णन कीजिए।

***अथवा*, पाठ्यक्रम निर्माण क्या है ? एक अच्छे पाठ्यक्रम निर्माण में किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ?** **(रीवा 2022)**

***अथवा*, पाठ्यचर्या निर्माण की प्रक्रिया समझाइए।** **(जबलपुर 2022)**

उत्तर—पाठ्यक्रम का निर्माण प्रायः अनुभवी शिक्षाविदों एवं अधिकारियों द्वारा किया जाता है और विद्यार्थी तथा अध्यापक उसी पाठ्यक्रम का अनुसरण करते हैं। एक निश्चित अवधि में छात्रों को पढ़ाए जाने वाले विषय से संबंधित अति आवश्यक सामग्री को ही प्रत्येक कक्षा के पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाता है। पाठ्यक्रम पर ही समस्त (अधिकांश) शिक्षण–कार्य अवलम्बित होने के कारण पाठ्यक्रम बनाना एक गंभीर व दायित्वपूर्ण कार्य माना गया है।

अच्छे पाठ्यक्रम के निर्माण के लिए सतत् प्रयत्न करते रहने के साथ इसमें जीवन के परिवर्तनों को आवश्यकतानुसार समाहित किए जाने की आवश्यकता होती है, क्योंकि पाठ्यक्रम तैयार किया जाना कोई स्थिर रहने वाली क्रिया नहीं, बल्कि निरंतर गतिशील प्रक्रिया मानी गई है।

पाठ्यक्रम निर्माण के प्रमुख तथ्य (Main facts of Curriculum construction)—पाठ्यक्रम के निर्माण में निम्नलिखित प्रक्रिया का पालन किया जाता है—

(1) पहले विषयों का निर्धारण कर फिर कक्षावार उनके स्तर निश्चित किए जाते हैं। विषयों की इकाइयाँ उसके पश्चात् निर्धारित कर उन्हें कक्षा के स्तर के अनुरूप विभाजित कर दिया जाता है।

(2) शिक्षा की प्रमुख समस्याओं को सम्मुख रखकर उनके आधार पर पाठ्यक्रम का निरंतर मूल्यांकन होते रहना आवश्यक है, जिसमें विचार–विमर्श द्वारा अनुभवी अध्यापकों, अभिभावकों तथा विद्यार्थियों को भी पाठ्यक्रम के प्रति प्रतिक्रिया जाननी चाहिए और सत्र (Session) की समाप्ति के पश्चात् पाठ्यक्रम में आवश्यक संशोधन किया जाना चाहिए।

(3) पाठ्यक्रम को वर्तमान समय की आवश्यकताओं के अनुरूप (अनुकूल) गठित किए जाने के लिए तथा मनोवैज्ञानिक आधार पर पाठ्यक्रम आधारित किए जाने की दृष्टि से विद्यार्थियों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं तथा उनकी पठन रुचियों का अध्ययन किया जाना आवश्यक है। साथ ही वर्तमान समय के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी अध्ययन किया जाना चाहिए।

(4) पाठ्यक्रम लचीला, विविधता लिए हुए व्यापक तथा छात्रों की स्वाभाविक रुचि को बनाए रखने की दृष्टि से सावधानीपूर्वक तैयार किया जाना अपेक्षित है।

(5) शिक्षा के स्वरूप को सुधारने में पाठ्यक्रम का बहुत महत्व होता है। इसलिए छात्रों के समुचित सर्वांगीण विकास (मानसिक, शारीरिक, संवेगात्मक एवं आध्यात्मिक) के लिए बाल–केंद्रित ज्ञान क्रिया प्रधान पाठ्यक्रम (विशेषकर प्राथमिक व जूनियर स्तर पर) होना चाहिए।

(6) पाठ्यक्रम को बालकों की आवश्यकताओं, क्षमताओं, शक्तियों एवं रुचियों के अनुरूप निर्मित (गठित) किया जाना श्रेयस्कर है।

(7) शिक्षा का परम्परागत पाठ्यक्रम वर्तमान समय में छात्रों की प्रगति (सर्वांगीण विकास) में सहायक है। पाठ्यक्रम के आधार पर पढ़ाए जाने वाले विषय पूर्णतः निश्चित व स्पष्ट हो जाते हैं। जीवन से संबंधित होने का सिद्धांत पाठ्यक्रम निर्माण में सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धांत माना जाता है।

(8) पाठ्यक्रम शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों की पूर्ति का सशक्त साधन है। अतः विद्यार्थियों की आवश्यकताओं के अनुरूप पाठ्यक्रम छोटी–छोटी इकाइयों में बँटा होना चाहिए, जिसमें अध्यापकों की सुविधा हेतु आवश्यक सूचनाएँ व निर्देश हों।

(9) पाठ्यक्रम सुबोध, सुग्राही, स्पष्ट तथा सामान्य छात्रों के बौद्धिक स्तर, योग्यता तथा मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं के अनुरूप बनाया जाना चाहिए।

(10) योजनाबद्ध तरीके से औपचारिक शिक्षा प्रदान कराने के लिए पाठ्यक्रम आवश्यक है क्योंकि पाठ्यक्रम प्रत्येक स्तर पर शिक्षा के विशिष्ट उद्देश्यों, लक्ष्यों को निर्धारित करता है। उन लक्ष्यों के अनुरूप अध्यापक विद्यार्थियों की योग्यता व क्षमताओं को विकसित करने का प्रयास करते हैं, जिससे छात्रों में अपेक्षित कौशलों की वृद्धि से शिक्षण में सुगमता होती है।

(11) पाठ्यक्रम शिक्षण को प्रभावशाली व सुव्यवस्थित बनाने में सहायक होता है। पाठ्यक्रम की सहायता से ही विषय के अनुरूप आवश्यक साधन शिक्षण–सामग्री पहले से ही जुटाकर तथा उचित शिक्षण विधि चुनकर अध्यापक अपने शिक्षण को अपेक्षाकृत प्रभावशाली बनाने में सक्षम होते हैं।

प्रश्न 3. भारत में स्वतंत्रता से पूर्व एवं स्वतंत्रता के पश्चात् पाठ्यक्रम की स्थिति स्पष्ट कीजिए।

***अथवा*, माध्यमिक शिक्षा आयोग से क्या अभिप्राय है ? पाठ्यक्रम विकास में मुदालियर आयोग के सुझावों की चर्चा कीजिए।** **(ग्वालियर 2021)**

उत्तर–स्वतंत्रता से पूर्व–स्वतंत्रता से पूर्व पाठ्यक्रम में केवल साहित्यिक पक्ष को प्रधानता दी गई है। व्यावसायिक, औद्योगिक, वैज्ञानिक या प्राविधिक शिक्षा की व्यवस्था नहीं की गई। शिक्षा का माध्यम भी अंग्रेजी था। अंग्रेजी और कोई भारतीय भाषा लेने के साथ–साथ साहित्यिक वर्ग के कोई चार वैकल्पिक विषयों में रखा गया। गाँधीजी ने 1937 ई. में वर्धा शिक्षा योजना के अंतर्गत बुनियादी शिक्षा की योजना प्रस्तुत की जिसे स्वीकार किया गया, परंतु सरकार ने उसे भी लागू नहीं किया।

1939 ई. में आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में एक समिति बनाई। इस समिति में माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में विविधिकरण लाने का सुझाव किया। इस समिति के अनुसार छात्रों के वैयक्तिक भिन्नता को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम को रुचिकर और विस्तृत बनाया जाए। अतः पाठ्यक्रम को 4 वर्गों में विभक्त करने का सुझाव दिया गया–

(1) साहित्यिक वर्ग (Literary group), (2) वैज्ञानिक वर्ग (Scientific group), (3) रचनात्मक वर्ग (Constructive group), (4) कलात्मक वर्ग (Asthetic or fineart group)।

स्वतंत्रता के पश्चात्–1947 ई. में भारत स्वतंत्र हुआ तब भारत की सरकार का ध्यान प्रचलित माध्यमिक शिक्षा के सुधार की ओर गया। फलतः 1948 ई. में माध्यमिक शिक्षा के दोषों का पता लगाकर उनके सुधार के उपायों को खोजने के लिए ताराचन्द समिति गठित की गई। चार वर्ष बाद पुनः 1952-53 में आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। इस समिति ने निम्नलिखित सुझाव दिए–

1. प्रत्येक छात्र को अपनी अभिरुचि और योग्यता के अनुसार समुचित विषयों के अध्ययन की सुविधा देने के लिए बहुउद्देशीय विद्यालयों की उचित स्थापना की जाए।

2. पाठ्यक्रम को अधिकाधिक व्यावहारिक बनाकर माध्यमिक शिक्षा को उपयोगी बनाया जाए।

3. आर्थिक विकास को ध्यान में रखकर माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में तकनीकी शिक्षा की भी व्यवस्था हो।

4. बालकों के वैयक्तिक भिन्नता की जाँच करने के लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षण की व्यवस्था करके उचित निर्देशन की व्यवस्था की जाए।

उपरोक्त सुझावों को और अधिक व्यापक रूप देने के लिए उसी वर्ष (1952-53) डॉ. लक्ष्मणस्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में माध्यमिक शिक्षा आयोग की स्थापना की गई। इस आयोग को मुदालियर आयोग के नाम से भी जाना जाता है।

माध्यमिक शिक्षा आयोग/ मुदालियर आयोग (Secondary Education Commission, 1952-53)—केंद्रीय परामर्शवादी परिषद् (Central advisory board) तथा ताराचंद समिति के अनुरोध पर भारत सरकार ने माध्यमिक शिक्षा आयोग की स्थापना की। इस आयोग ने बहुत से महत्वपूर्ण सुझावों में पाठ्यक्रम के विविधिकरण (Diversification of courses) और बहुउद्देशीय विद्यालयों की स्थापना से संबंधित सुझाव भी दिए।

आयोग के सुझावों के अनुसार, पाठ्यक्रम निर्माण के दौरान निम्न विचारों को ध्यान में रखना चाहिए—

(1) छात्रों की योग्यता का सिद्धांत, (2) विविधिकरण का सिद्धांत, (3) व्यावसायिक पक्ष का सिद्धांत, (4) मूल विषयों का सिद्धांत। **(ग्वालियर 2021)**

पाठ्यक्रम का विविधिकरण (Diversification of curriculum) — माध्यमिक शिक्षा आयोग ने पाठ्यक्रम के विविधिकरण के लिए एक रूपरेखा प्रस्तुत की। उसमें उसने दो प्रकार के विषय रखे— पहला अनिवार्य विषय और दूसरा वैकल्पिक विषय। इन वैकल्पिक विषयों में छात्र अपनी रुचि आवश्यकता और योग्यता के अनुकूल कोई भी अध्ययन समूह ले सकता है।

माध्यमिक शिक्षा आयोग द्वारा प्रस्तावित पाठ्यक्रम (Proposed by the Secondary Education Commission) — इसे मुदालियर आयोग भी कहते हैं। इनके अध्यक्ष **डॉ. लक्ष्मण मुदालियर** थे।

अनिवार्य विषय (Compulsory subjects)—मुदालियर आयोग ने अनिवार्य विषयों में निम्नलिखित विषयों को रखा—

(I) भाषा अध्ययन (Language study)—1. प्रादेशिक अथवा मातृभाषा या किसी शास्त्रीय भाषा का मिला जुला पाठ्यक्रम।

2. निम्न में से कोई एक भाषा—(1) हिन्दी (जिनकी मातृभाषा हिन्दी न हो)। (2) प्रारंभिक अंग्रेजी (जिन्होंने माध्यमिक स्तर पर इसका अध्ययन न किया हो)। (3) आधुनिक/प्रगत अंग्रेजी (जिन्होंने प्रारंभिक स्तर पर अंग्रेजी भाषा का अध्ययन किया है)। (4) आधुनिक भारतीय भाषा (हिन्दी के अतिरिक्त)। (5) आधुनिक अंग्रेजी भाषा (अंग्रेजी के अतिरिक्त)। (6) शास्त्रीय भाषा।

(II) अनिवार्य विषय (Compulsory subject)— 1. सामाजिक अध्ययन—सामान्य पाठ्यक्रम (प्रारंभिक दो वर्ष के लिए)।

2. गणित सम्मिलित सामान्य विज्ञान—सामान्य पाठ्यक्रम (केवल प्रारंभिक दो वर्षों के लिए)।

(III) क्राफ्ट/ शिल्पकला (Craft)—निम्न में से किसी एक शिल्पकला का चयन स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार जिसे सम्मिलित किया जा सके—(1) कताई–बुनाई (Spinning and weaving), (2) काष्ठ कार्य (Wood work), (3) धातु कार्य (Metal work), (4) बागवानी (Gardening),

(5) सिलाई कार्य (Tailoring), (6) वर्कशॉप/कार्यशाला एवं अभ्यास (Workshop and practice), (7) प्रतिरूपण (Impersonation), (8) कढ़ाई एवं सुचिकर्म (Embroidery and handicrafts), (9) मुद्रण कला (Typography)।

(IV) वैकल्पिक विषय (Elective subject)—आयोग ने वैकल्पिक विषयों को निम्नलिखित सात समूहों में विभक्त किया। प्रत्येक समूह के विषयों में से छात्र कोई तीन विषय अध्ययन के लिए चुन सकता है।

(i) समूह-1 (विज्ञान)—भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान या शरीर विज्ञान एवं स्वास्थ्य विज्ञान, गणित तथा भूगोल।

(ii) समूह-2 (मानवशास्त्र)—(a) अनिवार्य विषय के अंतर्गत नहीं ली गई एक भाषा या कोई शास्त्रीय भाषा।

(b) इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र, अर्थशास्त्र के तत्व। मनोविज्ञान एवं अर्थशास्त्र के तत्व, गणित, संगीत, गृहविज्ञान (Domestic science)।

(iii) समूह-3 (गृहविज्ञान)— गृहअर्थशास्त्र (Home economic) आहार–पोषण एवं पाक कला, मातृकला, शिशुपालन, गृहप्रबंध एवं गृह उपकर।

(iv) समूह-4 (वाणिज्य समूह)— वाणिज्यिक अभ्यास, बहीखाता, वाणिज्यिक भूगोल या अर्थशास्त्र एवं नागरिक शास्त्र के तत्व, आशुलिपि एवं टंकन।

(v) समूह-5 (प्राविधिक समूह) (Technical)—व्यावहारिक विज्ञान, विद्युत् तकनीकी तत्व, ज्यामिति कला और व्यावहारिक गणित, यांत्रिक अभियंत्रण के तत्व।

(vi) समूह-6 (कृषि)—सामान्य कृषि, पशुकृषि, उद्यानकृषि और बागवानी रसायन एवं वनस्पति कृषि।

(vii) समूह-7 (ललितकला समूह)—कला का इतिहास, ड्राइंग एवं पेन्टिंग प्रतिरूपण (मॉडलिंग) संगीत एवं नृत्य।

प्रश्न 4. कोठारी आयोग की पाठ्यक्रम संबंधी विशेषताओं को समझाइए।

(जबलपुर 2021; उज्जैन 22)

***अथवा*, कोठारी आयोग के पाठ्यक्रम के क्षेत्र में क्या सुझाव है ? (छतरपुर 2021; उज्जैन 21)**

उत्तर— कोठारी शिक्षा आयोग (Kothari Education Commission, 1964-66) —शिक्षा प्रणाली प्राथमिक स्तर से उच्च स्तर तक एक सतत् प्रक्रिया है। अतः विभिन्न स्तरों में एक क्रम होना चाहिए तभी शिक्षा में सुधार किया जा सकता है। कोठारी शिक्षा आयोग **डॉ. डी. एस. कोठारी** की अध्यक्षता में एक व्यापक आयोग गठित किया गया, जिसमें प्राथमिक स्तर से उच्च स्तर के पाठ्यक्रमों में सुधार के लिए सुझाव दिए गए और इनमें एक क्रम स्थापित भी किया जिससे शिक्षा की प्रक्रिया में निरंतरता हो सके। इस आयोग में निम्न प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च स्तर तक पाठ्यक्रमों में सुधार के लिए सुझाव दिए। इन सुझावों की विभिन्न स्तर की समस्याओं को ध्यान में रखते हुए व्यावहारिक पाठ्यक्रमों को विकसित किया था। इस आयोग ने विद्यालय पाठ्यक्रम में सुधार के संबंध में निम्न सुझाव प्रस्तुत किए—

विद्यालय पाठ्यक्रम में मूलभूत सुधार की आवश्यकता—आयोग ने कहा आधुनिक वर्षों में ज्ञान के विकास तथा भौतिक, प्राकृतिक एवं सामाजिक विज्ञानों की मूलभूत धारणाओं के पूर्ण निर्माण के परिणामस्वरूप प्रचलित पाठ्यक्रम अप्राप्त एवं दोषपूर्ण हो गये हैं तथा इसमें मूलभूत सुधार के लिये निरंतर दबाव बढ़ता जा रहा है।

अतः संपूर्ण विद्यालय पाठ्यक्रम को पूर्ण निर्मित करने हेतु तथा सदृढ़ करने हेतु एवं सामान्य शिक्षा की अंतर्वस्तु के लिए नई परिभाषा के विशिष्टीकरण के नए उपागम विकसित किए जाने चाहिए। इन दृष्टिकोणों से विद्यालय पाठ्यक्रम में सुधार आवश्यक हो गया है।

10 वर्षीय सामान्य पाठ्यक्रम—आयोग के प्रतिवेदन के अनुसार, सामान्य अथवा अव्यावसायिक विद्यालयों में 10 वर्षीय स्कूली शिक्षा हेतु सामान्य पाठ्यक्रम निर्धारित किया जाना चाहिए तथा अध्ययन की विविधता एवं विशिष्टीकरण केवल उच्चतर माध्यमिक स्तर से प्रारंभ किया जाना चाहिए। किंतु प्रत्येक उपस्तर के अंत में उपलब्धि स्तर स्पष्ट होना चाहिए।

निम्न प्राथमिक स्तर पर पाठ्यक्रम (कक्षा 1 से 4 तक)—आयोग के अनुसार, निम्न प्राथमिक स्तर पर पाठ्यक्रम बहुत साधारण एवं औपचारिक विषयों के बहुत कम दबाव वाला होना चाहिए। केवल भाषा एवं प्रारंभिक गणित पर भी विशेष बल दिया जाना चाहिए। इस दृष्टि से आयोग ने प्राथमिक स्तर हेतु निम्नलिखित पाठ्यविषयों को निर्धारित किया है—

(1) एक भाषा—मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय या प्रादेशिक भाषा, (2) गणित, (3) वातावरण का अध्ययन (कक्षा 3 और 4 में विज्ञान तथा सामाजिक विज्ञान), (4) संरचनात्मक क्रियाएँ / सृजनात्मक क्रियाएँ, (5) कार्य अनुभव तथा समाज सेवा, (6) स्वास्थ्य शिक्षा।

उच्चतर प्राथमिक स्तर का पाठ्यक्रम (कक्षा 5 से 7 तक)—आयोग के अनुसार, उच्चतर प्राथमिक स्तर पर पाठ्यक्रम थोड़ी अधिक व्यापक एवं शिक्षण विधियाँ अधिक व्यवस्थित होगी तथा उपलब्धि स्तर अधिक निश्चित होगा। अतः इस स्तर पर निम्नलिखित पाठ्यविषयों को निर्धारित किया गया।

(1) दो भाषाएँ—(अ) मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा।

(ब) हिन्दी या अंग्रेजी।

(2) गणित

(3) विज्ञान

(4) सामाजिक विज्ञान (इतिहास, भूगोल और नागरिक शास्त्र)

(5) कला (आर्ट)

(6) कार्यानुभव एवं समाज सेवा

(7) शारीरिक शिक्षा

(8) नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा।

माध्यमिक स्तर का पाठ्यक्रम (कक्षा 8 से 10 तक)— (1) (अ) हिन्दी भाषी क्षेत्रों में सामान्य रूप से।

(ब) अधोलिखित भाषाएँ होनी चाहिए।

तीन भाषाएँ—(अ) मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा।

(ब) उच्च स्तर या निम्न स्तर की हिन्दी।

(स) उच्च या निम्न स्तर की अंग्रेजी या एक अन्य आधुनिक भारतीय भाषा।

(2) गणित

(3) विज्ञान

(4) सामाजिक विज्ञान (इतिहास, भूगोल और नागरिक शास्त्र)

(5) कला (आर्ट)

(6) कार्यानुभव एवं समाज सेवा

(7) शारीरिक शिक्षा

(8) नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा।

उच्चतर माध्यमिक स्तर का पाठ्यक्रम (कक्षा 11 वीं से 12 वीं तक)—यद्यपि सामान्य शिक्षा के 10 वर्ष में से 7 वर्ष प्राथमिक शिक्षा (4 वर्ष पूर्व प्राथमिक एवं 3 वर्ष उच्च प्राथमिक) एवं 3 वर्ष पूर्व माध्यमिक शिक्षा को अध्ययन की सतत् प्रक्रिया के रूप में आयोजित किया जाना चाहिए। साथ ही संपूर्ण पाठ्यक्रम के प्रत्येक उपस्तर के अंत में उपलब्धि के स्तर को स्पष्ट रूप से इंगित करना चाहिए। उपलब्धि को विद्यालयों के संपूर्ण उद्देश्यों के साथ ज्ञान, कौशल, योग्यता एवं अभिव्यक्ति के रूप में परिभाषित करना चाहिए।

आयोग के अनुसार, हाईस्कूल परीक्षा पास करने के उपरांत ही छात्र उच्चतर माध्यमिक स्तर पर प्रवेश पा सकेंगे। इस स्तर तक छात्रों की विशेष रुचियों एवं योग्यता का विकास हो सकता है। अतः उपयुक्त मार्गदर्शन एवं परामर्श के छात्रों को अपने भावी पाठ्यक्रम और व्यवसाय की ओर अग्रसर किया जाना चाहिए।

आयोग के अनुसार उच्चतर, माध्यमिक स्तर पर निम्न विषयों को सम्मिलित किया जाना चाहिए—

(1) कोई दो भाषाएँ—जिनमें कोई आधुनिक भारतीय भाषा, कोई आधुनिक निर्देशी भाषा तथा कोई शास्त्रीय भाषा सम्मिलित हो।

(2) अधोलिखित में से कोई तीन विषय चुने जाएँ—

(i) एक अतिरिक्त भाषा, (ii) इतिहास, (iii) भूगोल, (iv) अर्थशास्त्र, (v) तर्कशास्त्र, (vi) मनोविज्ञान, (vii) समाज शास्त्र, (viii) कला, (ix) भौतिक शास्त्र, (x) रसायन शास्त्र, (xi) गणित, (xii) जीवविज्ञान, (xiii) भूगर्भ शास्त्र, (xiv) गृह विज्ञान।

(3) कार्य अनुभव तथा समाज सेवा।

(4) शारीरिक शिक्षा।

(5) कला या शिल्प।

(6) नैतिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा।

कोठारी आयोग ने शिक्षा के सभी स्तरों के लिए पाठ्य विषय निर्धारित किए हैं। इन विषयों में कुछ ऐसे हैं जिनको इस समय हमारे विद्यालय में नहीं पढ़ाया जा रहा है। जैसे—वातावरण का अध्ययन, सृजनात्मक क्रियाएँ, आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा।

प्रश्न 5. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) की विशेषताओं को समझाइए। (जबलपुर 2021)

उत्तर—राष्ट्रीय शिक्षा नीति (National Policy of Education, 1986)—जुलाई 1968 में सर्वप्रथम भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा की गई, किंतु शिक्षा नीति के प्रस्तावों एवं प्रावधानों को पूर्णरूपेण लागू नहीं किया जा सका।

जनवरी 1985 में देश के प्रधानमंत्री स्व. श्री राजीव गाँधी ने सत्ता संभालते ही **नई राष्ट्रीय नीति** विकसित करने एवं लागू करने की घोषणा की, जिसमें वर्तमान शिक्षा व्यवस्था का **विश्लेषण कर** समीक्षा की गई। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 का मूलभूत आधार यह है कि **"वर्तमान एवं भविष्य में** शिक्षा एक अनोखा निवेश है"।

1. समान मूल पाठ्यक्रम—राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुसार, राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा पर आधारित होगी जिसका एक बड़ा भाग सामान्य विषय–वस्तु से युक्त होगा तथा शेष छोटे भाग में आवश्यकतानुसार लचीलापन होगा।

2. न्यूनतम अधिगम स्तर—नई शिक्षा नीति के अंतर्गत शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर न्यूनतम अधिगम स्तर को सुनिश्चित किया जायेगा।

3. सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण—राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुसार, वर्तमान में औपचारिक शिक्षा एवं भारत की समृद्ध एवं विविध संस्कृति के बीच बढ़ती जा रही दूरी को शीघ्र समाप्त करने की नितांत आवश्यकता है।

4. मूल्य शिक्षा—वर्तमान समय में व्याप्त सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों के संकट को समाप्त करने के लिए शिक्षा एक महत्वपूर्ण साधन सिद्ध हो सकती है।

5. भाषा–अध्ययन—1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भाषाओं के विकास के प्रश्न पर विस्तार से विचार किया गया है।

6. संचार माध्यम एवं शैक्षिक तकनीकी—आधुनिक संचार तकनीकी ने विकास–प्रक्रिया की गति को इतना अधिक प्रभावित किया है कि समय एवं दूरी का अवरोध एक साथ मानव के नियंत्रण में आ गया हो। आधुनिक तकनीकी का प्रभाव शिक्षा के प्रचार–प्रसार एवं उसकी गुणवत्ता में सुधार पर भी पड़ा है। अतः आधुनिक शैक्षिक तकनीकी का लाभ दूर–दराज के क्षेत्रों तथा शिक्षा से वंचित लोगों को भी मिल सके, इसके लिए सतत् प्रयासरत् रहने की आवश्यकता है।

7. कार्य–अनुभव—कार्य–अनुभव अधिगम प्रक्रिया का एक आवश्यक अंग है तथा इसका उद्देश्य समुदाय के लिए उपयोगी वस्तुओं अथवा सेवाओं को प्रदान करना है। अतः इसे शिक्षा के सभी स्तरों पर सुव्यवस्थित एवं क्रमबद्ध कार्यक्रम के रूप में प्रदान किया जाना चाहिए। इसमें छात्रों की रुचियों, योग्यताओं एवं आवश्यकताओं के अनुरूप उपयुक्त क्रियाओं को सम्मिलित किया जाना चाहिए तथा शिक्षा के स्तर के साथ–साथ कौशल एवं ज्ञान के स्तर को बढ़ाया जाना चाहिए।

8. शिक्षा एवं पर्यावरण—नई शिक्षा नीति के अनुसार, वर्तमान समय में पर्यावरण के बारे में चेतना विकसित करने की नितान्त आवश्यकता है। इस चेतना का उदय समाज के सभी वर्गों एवं सभी आयुवर्गों के लोगों में होना चाहिए। अतः स्कूल एवं महाविद्यालयों की शिक्षा के द्वारा पर्यावरणीय चेतना को बढ़ाने का प्रयास किया जाना चाहिए।

9. गणित शिक्षण—गणित विषय के छात्रों को सोचने, तर्क करने, विश्लेषित करने तथा तार्किक ढंग से चिंतन करने के बारे में प्रशिक्षित करने का एक साधन माना जाना चाहिए।

10. विज्ञान शिक्षा—राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अंतर्गत विज्ञान शिक्षा को इस प्रकार सुदृढ़ किया जाएगा जिससे बालकों में समुचित योग्यताओं एवं अन्वेषणात्मक, सृजनात्मक, वस्तुनिष्ठ, विश्लेषणात्मक एवं सौंदर्यबोध संबंधी मूल्यों को विकसित किया जा सके। अतः विज्ञान शिक्षा को इस प्रकार निरूपित किया जायेगा, जिससे शिक्षार्थी के अंदर समस्या, समाधान एवं निर्णय लेने के कौशलों का विकास हो सके।

11. खेल एवं शारीरिक शिक्षा—खेल एवं शारीरिक शिक्षा अधिगम प्रक्रिया के आवश्यक अंग है, अतः इन्हें उपलब्धि मूल्यांकन में भी सम्मिलित किया जायेगा। इसलिए शैक्षिक व्यवस्था के अंतर्गत शारीरिक शिक्षा एवं खेल के लिए राष्ट्रीय स्तर पर व्यापक प्रारूप तैयार किया जायेगा।

12. अंतर्राष्ट्रीय सद्भाव के लिए शिक्षा—भारत ने सदैव शांति एवं अंतर्राष्ट्रीय सद्भाव के विकास हेतु प्रयास किया है। अतः शिक्षा के माध्यम से नई पीढ़ी में भी अंतर्राष्ट्रीय सहयोग एवं शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व के दृष्टिकोण का विकास किया जाना चाहिए।

13. पूर्व प्राथमिक स्तर पर पाठ्यक्रम—बालकों के सर्वांगीण विकास अर्थात् पोषण, स्वास्थ्य, सामाजिक, मानसिक, शारीरिक, नैतिक तथा संवेगात्मक विकास के संप्रत्यय को स्वीकार करते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति में कहा गया है कि प्रारंभिक बाल सुरक्षा एवं शिक्षा को उच्च प्राथमिकता प्रदान की जायेगी तथा इसमें समुचित ढंग से समन्वित किया जायेगा।

14. प्राथमिक स्तर पर पाठ्यक्रम—इस स्तर के लिए सर्वोत्तम आयाम बाल–केन्द्रित आयाम जिसमें सभी संबंधित पक्ष बालकों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उत्तरदायी होते हैं। "बालकों के स्कूल जाने एवं सीखने के लिए सर्वोत्तम अभिप्रेरणा है"। अतः प्राथमिक स्तर पर अधिगम की बाल–केन्द्रित एवं कार्य आधारित प्रक्रिया को अपनाया जाना चाहिए। प्रथम पीढ़ी के शिक्षार्थियों को अपनी गति से आगे बढ़ने के अवसर प्रदान किये जाने चाहिए तथा उनके लिए पूरक उपचारात्मक शिक्षण की भी व्यवस्था होनी चाहिए।

15. माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम—माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थी को विज्ञान, मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान की विविधीकृत भूमिकाओं को विकसित करने तथा नागरिक के रूप में संवैधानिक कर्त्तव्यों एवं अधिकारों को समझने के लिए भी उपयुक्त होता है। अतः उपयुक्त पाठ्यक्रम के द्वारा स्वस्थ कार्य संस्कृति तथा मानवीय एवं सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति आन्तरिक चेतना विकसित करने का प्रयास किया जायेगा। इसी स्तर पर विशिष्ट विद्यालयों द्वारा अथवा माध्यमिक शिक्षा को पुनर्गठित करके व्यावसायिक शिक्षा के माध्यम से आर्थिक प्रगति के लिए आवश्यक एवं महत्वपूर्ण मानव शक्ति का सृजन भी किया जा सकता है।

16. प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यक्रम—राष्ट्रीय शिक्षा नीति के दिशा–निर्देशों के अनुरूप राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) ने प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के लिए एक राष्ट्रीय पाठ्यक्रम का निर्माण किया। इस पाठ्यक्रम के निर्माण में जिन सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं आर्थिक मदों को विशेष ध्यान में रखा गया है उनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं—

(1) शैक्षिक अवसरों की समानता। (2) सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण। (3) संवैधानिक प्रावधान। (4) राष्ट्रीय अस्मिता एवं एकता का सुदृढ़ीकरण। (5) चरित्र निर्माण एवं मूल्यों का प्रतिपादन। (6) व्यापक सार्वभौमिक दृष्टिकोण। (7) पर्यावरण की सुरक्षा एवं राष्ट्रीय संसाधनों का संरक्षण। (8) सीमित परिवार का मानदण्ड। (9) भविष्योन्मुख शिक्षा। (10) सर्वांगीण विकास के लिए शिक्षा। (11) शिक्षा का बाल–केन्द्रित आयाम। (12) सृजनात्मक अभिव्यक्ति। (13) वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रतिपादन। (14) शिक्षा एवं कार्य–संसार के बीच एकरूपता। (15) सतत् एवं व्यापक शिक्षा। (16) संचार माध्यमों एवं शैक्षिक तकनीकी का उपयोग। (17) अधिगम का न्यूनतम स्तर। (18) सामान्य पाठ्यक्रम।

कक्षा I से X तक अध्ययन के विषय–

स्तर, अवधि एवं विषय	समय का आबंटन
1. प्रारंभिक शिक्षा (8 वर्षीय)	
(क) प्रारंभिक स्तर (5 वर्षीय)	
(i) एक भाषा–मातृभाषा/प्रादेशिक भाषा।	30 %
(ii) गणित	15 %
(iii) पर्यावरण शिक्षा I एवं II	15 %
(iv) कार्य–अनुभव	15 %

(v) कला शिक्षा	15 %
(vi) स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा।	10 %
योग	100 %
(ख) उच्च प्राथमिक स्तर (3 वर्षीय)	
(i) तीन भाषाएँ (1968 की शिक्षा नीति के अनुसार)	32 %
(ii) गणित	12 %
(iii) विज्ञान	12 %
(iv) सामाजिक विज्ञान	12 %
(v) कार्य–अनुभव	12 %
(vi) कला–शिक्षा	10 %
(vii) स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा।	10 %
योग	100%
2. माध्यमिक शिक्षा (2 वर्षीय)	
(i) तीन भाषायें	30 %
(ii) गणित	13 %
(iii) विज्ञान	13 %
(iv) सामाजिक विज्ञान	13 %
(v) कार्य–अनुभव	13 %
(vi) कला–शिक्षा	9 %
(vii) स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा।	9 %
योग	100 %

इस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 के मार्ग–निर्देशों के अनुसार, NCERT द्वारा दस वर्षीय सामान्य पाठ्यक्रम का निर्माण किया गया। इस राष्ट्रीय पाठ्यक्रम को विभिन्न प्रदेशों में लागू करने के प्रयास किये जा रहे हैं।

प्रश्न 6. पाठ्यक्रम निर्माण के आधारों (आयाम) का विस्तृत वर्णन कीजिए।
(छतरपुर 2021; ग्वालियर 21; इंदौर 22)

***अथवा*, पाठ्यक्रम निर्माण करते समय हमें किन आयामों को रखना पड़ता है ? समझाइए।**

***अथवा*, पाठ्यक्रम निर्माण के आधार क्या है ?** **(भोपाल 2022; छिंदवाड़ा 21)**

***अथवा*, पाठ्यक्रम विकास के विभिन्न दर्शनों द्वारा किस प्रकार प्रभावित होता है ?**
(छिंदवाड़ा 2022)

***अथवा*, पाठ्यचर्या के दार्शनिक आधार को समझाइए।** **(जबलपुर 2022)**

उत्तर–पाठ्यक्रम निर्माण के निम्नलिखित आधार हैं–

1. दार्शनिक आधार (Philosophical bases),
2. सामाजिक और सांस्कृतिक आधार (Sociological and cultural bases),
3. वैज्ञानिक आधार (Scientific bases),
4. मनोवैज्ञानिक आधार (Psychological bases),
5. ऐतिहासिक आधार (Historical bases)।

1. दार्शनिक आधार—पाठ्यचर्या शिक्षा के उद्देश्यों पर आधारित होता है और शिक्षा के उद्देश्यों का आधार दर्शन होता है। अतः समाज के लोगों का जीवन दर्शन, उनकी सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक विचारधाराएँ शिक्षा की पाठ्यचर्या का सुदृढ़ आधार होती हैं। दर्शन का संबंध जीवन के लक्ष्यों से होता है। अतः दर्शनशास्त्र जीवन की मूलभूत समस्याओं के उत्तर प्राप्त करने तथा मानव जीवन को साध्य बनाने के लिए अत्यंत आवश्यक है। इसके अभाव में जीवन को समझा नहीं जा सकता है साथ ही पाठ्यचर्या निष्प्राण हो जाती है, क्योंकि उसका संबंध जीवन से ही होता है। **रस्क** के अनुसार, "दर्शन पर पाठ्यचर्या का संगठन जितना आधारित है उतना शिक्षा का कोई अन्य पक्ष नहीं है।"

शिक्षा दर्शन के चार वादों ने शिक्षा की पाठ्यचर्या को अपनी विचारधारा के अनुसार प्रस्तावित किया है इन चारों विचारधाराओं ने शिक्षा की पाठ्यचर्या को किस प्रकार प्रभावित किया है, इस पर प्रकाश डालना समीचीन (उचित) होगा।

(1) आदर्शवाद और पाठ्यचर्या—आदर्शवाद मन, विचार, आत्मा, मानवीय मूल्यों और सांस्कृतिक धरोहर को भौतिक पदार्थों की अपेक्षा अधिक मूल्यवान सत्य और शाश्वत् मानता है। अतः आदर्शवादी पाठ्यचर्या में धर्म दर्शन, साहित्य, भाषा, इतिहास, भूगोल और गणित को व्यावसायिक विषयों, क्राफ्ट आदि की अपेक्षा अधिक महत्व दिया गया है।

(2) प्रकृतिवाद और पाठ्यचर्या—प्रकृतिवाद, प्राकृतिक वातावरण, मानव प्रकृति, जन्मजात प्रवृत्तियों और आवश्यकताओं को सभ्यता और संस्कृति की अपेक्षा अधिक महत्व देता है। अतः प्रकृतिवादी पाठ्यचर्या में पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा इन्द्रियानुभव, प्राकृतिक वातावरण और मानवीय प्रकृति से संबंधित अनुभवों को वरीयता प्रदान की जाती है। प्रकृतिवादी पाठ्यचर्या में बालक के वर्तमान को सुखद बनाने का प्रयास किया जाता है।

(3) प्रयोजनवाद और पाठ्यचर्या—प्रयोजनवादी विचारधारा ने आधुनिक पाठ्यचर्या को सर्वाधिक प्रभावित किया है। प्रयोजनवादी पाठ्यचर्या में ऐसी विषय–वस्तु और क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है जो विद्यार्थियों में सोचने, समझने, तर्क और चिंतन करने की समस्या का विश्लेषण करने और समाधान करने की क्षमता का विकास कर सके। ऐसी पाठ्यचर्या प्रकृतिवादी पाठ्यचर्या के समान बाल–मनोविज्ञान पर आधारित होती है और क्रिया प्रधान होती है। इसमें परम्परागत मूल्यों के बजाय बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप नये जीवन–मूल्यों और आदर्शों को अपनाने की शिक्षा दी जाती है।

(4) यथार्थवाद और पाठ्यक्रम—यथार्थवाद, भौतिक जगत एवं इन्द्रियगम्य वस्तुओं को ही सत्य मानता है। अतः ऐसी पाठ्यचर्या में विज्ञान, प्रौद्योगिकी, उद्योग–धन्धों एवं आर्थिक क्रियाओं से संबंधित विषयों को प्रमुख स्थान मिलता है। धर्म, दर्शन, नैतिकता, साहित्य से संबंधित ज्ञान का महत्व नहीं है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि दार्शनिक विचारधारायें पाठ्यचर्या के स्वरूप और विषय–वस्तु का निर्धारण करती है।

2. सामाजिक और सांस्कृतिक आधार—मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, वह जन्म से लेकर मृत्यु तक समाज में रहता है। समाज में ही उसका विकास, उन्नति, समृद्धि तथा मृत्यु होती है इसलिए शिक्षा का उद्देश्य बालक का समाजीकरण करना निर्धारित किया गया है। अतः पाठ्यचर्या का निर्माण सामाजिक पृष्ठभूमि एवं आकांक्षाओं के आधार पर होना चाहिए। बालक में सामाजिक गुणों के विकास के लिए पाठ्यचर्या में भाषा, समाजशास्त्र, इतिहास, भूगोल, शारीरिक शिक्षा, नागरिक शास्त्र, नीति शास्त्र तथा तकनीकी शिक्षा का समावेश होना चाहिए, जिससे छात्रों में सामाजिक भावना, सहृदयता, सहयोग, सहभागिता, सहानुभूति, सद्भावना जैसे गुणों का विकास हो सके।

किसी भी समाज की संस्कृति उसकी संपूर्ण जीवनशैली से संबंधित होती है। इसके अन्तर्गत समाज की भाषा, रीति–रिवाज, खान–पान, वेशभूषा, लैंगिक व्यवहार, मनोरंजन, सामाजिक एवं

व्यावसायिक स्तर, विश्वास तथा मूल्य आदि शामिल रहते हैं। पाठ्यचर्या संस्कृति से अनेक बातों को ग्रहण करती है। शिक्षा के उद्देश्य संस्कृत के मूलभूत सिद्धांतों, मान्यताओं, मूल्यों आदि को व्यक्त करते हैं। शिक्षा की पाठ्यवस्तु में समाज के कौशलों, विचारों एवं मूल्यों का समावेश होता है। शिक्षा सांस्कृतिक विरासत को इस पाठ्य–वस्तु में आने वाली संस्कृति को प्रदान कर सुरक्षित रखती है।

3. वैज्ञानिक आधार—वर्तमान युग वैज्ञानिक युग है। नित–प्रतिदिन नवीन तकनीकी खोज हो रही है, जिसके कारण हम भौतिक जगत की सत्यता और वास्तविकता के करीब आ गए हैं। इससे लोगों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्रति विकास हो रहा है। आज हम किसी भी बात को ऐसे नहीं मानते बल्कि तर्क और प्रयोगों के आधार पर जाँच करके ही किसी बात को मानते हैं। अतः पाठ्यचर्या का आधार वैज्ञानिक भी होना चाहिए। यह विचार प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री **हरबर्ट स्पेंसर** का है। यह विज्ञान का युग है। अब मनुष्य की दिनचर्या विज्ञान और तकनीकी ज्ञान पर निर्भर करती है। जैसे विविध उपकरणों, उपस्करों का चालन और प्रयोग वैज्ञानिक ज्ञान पर निर्भर करता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को विज्ञान के मूलभूत नियमों का प्रारंभिक ज्ञान आवश्यक है। इसलिए पाठ्यक्रम में विज्ञान संबंधी विषयों और क्रियाओं को सम्मिलित करना आवश्यक है।

4. मनोवैज्ञानिक आधार—पाठ्यचर्या केवल तथ्यों और सूचनाओं का गट्ठर (Big bundle) नहीं है, अपितु ऐसी योजना है, जो बालकों का स्वाभाविक विकास करती है। आज शिक्षा का उद्देश्य बालक को ज्ञान देना ही नहीं अपितु उसके व्यवहार में परिवर्तन करके उसका सर्वांगीण विकास करना है। इसकी पूर्ति के लिए कक्षा–शिक्षक नहीं बल्कि पाठ्यचर्या निर्माता, समाज, प्रशासक आदि सभी उत्तरदायी हैं। पाठ्यचर्या निर्माता को बालक की प्रकृति उसके विकास के क्रमिक चरणों के अनुरूप उसकी आवश्यकताओं, क्षमताओं, योग्यताओं, अनुभवों, आकांक्षाओं एवं मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में आने वाली अन्य प्रवृत्तियों को ध्यान में रखना अत्यंत आवश्यक होता है। अतः पाठ्यचर्या का मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों और नियमों पर आधारित होना आवश्यक है। मनोवैज्ञानिक ने बाल–विकास, सीखने के नियम, व्यक्तिगत भिन्नता, बुद्धि, परीक्षण, स्मरण की नवीन विधियाँ, मानसिक स्वास्थ्य-संरक्षण आदि के संबंध में नवीन तथ्य प्रदान किये हैं। पाठ्यचर्या का निर्माण करते समय इन तथ्यों का ध्यान रखा जाता है जिससे यह मनोवैज्ञानिक और स्वाभाविक बन सके।

शिक्षा आयोगों ने भी विद्यालयी पाठ्यचर्या में बालक की क्षमताओं के आधार पर कम–से–कम तीन प्रकार के पाठ्यचर्या प्रतिभाशाली छात्रों के लिए उच्च स्तरीय पाठ्यचर्या, औसत स्तर के छात्रों के लिए औसत स्तरीय पाठ्यचर्या तथा मंदबुद्धि छात्रों के लिए निम्न स्तरीय पाठ्यचर्या क्रियान्वित करने की अनुशंसाएँ की है।

5. ऐतिहासिक आधार—पाठ्यचर्या का ऐतिहासिक आधार नयी पीढ़ी को मानव सभ्यता के विकास क्रम से परिचित कराता है। इतिहास के द्वारा मनुष्य पिछली गलतियों से बचना सीखता है। मनोवैज्ञानिकों का विचार है, कि प्रागैतिहासिक काल से अब तक मनुष्य विकास के जिन सोपानों से गुजरा है, बालक अपने जीवन से प्रारंभिक वर्षों में उनको दोहराता है। इसके अंतर्गत अतीत कालीन बातों का अभिलेख होता है जिसके कारण पाठ्यचर्या निर्माताओं को ऐसी सामग्री प्राप्त हो जाती है जिसकी सहायता से पाठ्यचर्या निर्माताओं को भविष्य के लिए अच्छे और स्पष्ट उदाहरण मिलते हैं तो दूसरी ओर भूलों की आवृत्ति से बचा जाता है। इस आधार के माध्यम से वह समय, साधन और शक्ति को अपव्यय होने से बचता है अतः पाठ्यचर्या में ऐतिहासिक घटनाओं, क्रियाओं का समावेश होना आवश्यक है।

प्रश्न 7. नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 में पाठ्यक्रम संरचना को स्पष्ट कीजिए।

(उज्जैन 2021)

उत्तर–राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP)–2020 – नई शिक्षा नीति को केन्द्रीय मंत्रिमण्डल द्वारा मंजूरी मिल गयी है, जो 34 वर्षों के बाद शिक्षा के क्षेत्र में एक प्रमुख और ऐतिहासिक निर्णय है

कैबिनेट ने मानव संसाधन और विकास मंत्रालय (MHRD) का नाम बदलकर शिक्षा मंत्रालय भी कर दिया है। इसका मुख्य उद्देश्य शिक्षा और सीखने पर ध्यान केन्द्रित करना और भारत को एक वैश्विक ज्ञान महाशक्ति बनाना है। नई शिक्षा नीति (NEP) 2020 का प्रारूप पूर्व भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (ISRO) के प्रमुख **कस्तूरीरंगन** के नेतृत्व में विशेषज्ञों के एक पैनल द्वारा तैयार किया गया था।

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 भारत में 21 वीं सदी की पहली शिक्षा नीति है। स्वतंत्रता के बाद यह भारत की केवल तीसरी शिक्षा नीति है। शिक्षा के लिए पहली नीति 1968 में प्रख्यापित की गई थी और दूसरी 1986 में लागू की गई थी। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 का लक्ष्य 2040 तक एक कुशल शिक्षा प्रणाली बनाना है, जिसमें सभी शिक्षार्थियों की सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि की परवाह किए बिना उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा तक समान पहुँच हो। इसका उद्देश्य एक नई प्रणाली का निर्माण करना है जो भारत की परंपराओं और मूल्य प्रणालियों पर निर्माण करते हुए सतत् विकास लक्ष्य 4 (Sustainable Development Goal 4; SDG 4) सहित 21 वीं सदी की शिक्षा के आकांक्षात्मक लक्ष्यों के साथ संरेखित हो। यह राज्यों, केन्द्र द्वारा शिक्षा पर सार्वजनिक खर्च को जी०डी०पी० के 6% तक बढ़ाने का लक्ष्य निर्धारित करता है।

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के मुख्य बिन्दु निम्नलिखित हैं–

1. नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 का उद्देश्य 2035 तक व्यावसायिक शिक्षा सहित उच्च शिक्षा में सकल नामांकन अनुपात को 26·3% से बढ़ाकर 50% करना है।

2. सभी उच्च शिक्षा संस्थानों का उद्देश्य बहु–विषयक संस्थान बनाना होगा, जिनमें से प्रत्येक में 3,000 या अधिक छात्र होंगे।

शिक्षक शिक्षा–1. 2030 तक शिक्षण के लिए न्यूनतम डिग्री योग्यता चार वर्षीय एकीकृत बी.एड. डिग्री होगी।

2. डिजिटल डिवाइड (Digital divide) को पाटने में मदद करने के लिए शिक्षकों को भारतीय स्थिति से संबंधित ऑनलाइन शैक्षिक तरीकों का भी प्रशिक्षण दिया जाएगा।

स्कूली शिक्षा–(1) अगले दशक में चरणबद्ध तरीके से सभी स्कूलों और उच्च शिक्षा संस्थानों में व्यावसायिक शिक्षा को एकीकृत किया जाना है।

(2) शिक्षकों और वयस्क शिक्षा के लिए स्कूलों में नयी राष्ट्रीय पाठ्यक्रम ढाँचा (National Curriculum Framework) पेश की जाएगी।

(3) कक्षा 5 वीं तक के छात्रों के लिए शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होगा।

(4) सिर्फ रट्टा सीखने के बजाय मुख्य ध्यान बच्चे के कौशल और क्षमताओं पर होगा।

(5) पाठ्यक्रम की संरचना में बड़े बदलाव।

(6) आर्ट्स, साइंस और कॉमर्स के बीच कोई बड़ा अलगाव नहीं है।

(7) बोर्ड परीक्षाएँ ज्ञान के अनुप्रयोग पर आधारित होगी।

(8) 5 + 3 + 3 + 4 पाठ्यक्रम और शैक्षणिक संरचना का पालन किया जाना है।

(9) कक्षा 6 वीं के बाद से पाठ्यक्रम और व्यावसायिक एकीकरण में कमी की गई है।

(10) भारतीय उच्च शिक्षा आयोग Higher Education Commission of India (HECI) का निर्माण।

(11) 2025 तक पूर्व–प्राथमिक शिक्षा (3 - 6 वर्ष की आयु सीमा) को सार्वभौमिक बनाना।

(12) 2030 तक स्कूली शिक्षा में 100% जी.ई.आर. के साथ प्री–स्कूल में माध्यमिक स्तर तक शिक्षा का सार्वभौमिकरण।

(13) कक्षा 6 वीं से कोडिंग और व्यावसायिक अध्ययन के साथ एक नया स्कूल पाठ्यक्रम शुरू किया जाएगा।

(14) कक्षा 5 वीं तक शिक्षा के माध्यम के रूप में बच्चे की मातृभाषा का प्रयोग किया जाएगा।

(15) एक नया पाठ्यचर्या ढाँचा पेश किया जाना है, जिसमें प्री–स्कूल और आँगनबाड़ी वर्ष शामिल है।

(16) 2025 तक आधारभूत साक्षरता और संख्यात्मकता पर एक राष्ट्रीय मिशन कक्षा 3 री के स्तर पर बुनियादी कौशल सुनिश्चित करेगा।

(17) एन.ई.पी. द्वारा अनुशंसित स्कूल परीक्षा में सुधारों में छात्रों के पूरे स्कूल के अनुभव की प्रगति पर नजर रखना शामिल है।

(18) इसमें कक्षा 3 वीं, 5 वीं और 8 वीं में राज्य जनगणना परीक्षा शामिल है।

(19) एक अन्य महत्वपूर्ण सिफारिश 10 वीं बोर्ड परीक्षा के पुनर्गठन की थी जो मुख्य रूप से केवल कौशल, मूल अवधारणाओं और उच्चक्रम की सोच क्षमताओं पर ध्यान केन्द्रित करेगी और उनका परीक्षण करेगी।

उच्च शिक्षा–(1) विषयों के ढील के साथ शिक्षा के प्रति एक समग्र और बहुआयामी दृष्टिकोण।

(2) UG प्रोग्राम में एकाधिक बार प्रवेश/निकास। **उदाहरण के लिए**, व्यावसायिक और व्यावसायिक क्षेत्रों सहित एक अनुशासन में 1 वर्ष पूरा करने के बाद एक प्रमाण–पत्र दिया जाएगा, 2 साल के अध्ययन के बाद एक डिप्लोमा और 3 साल के कार्यक्रम के बाद स्नातक की डिग्री प्रदान की जाएगी।

(3) चार वर्षीय बहु–विषयक बैचलर प्रोग्राम वैकल्पिक होगा।

(4) यदि छात्र 4 वर्षीय प्रोग्राम में एक बड़ा अनुसंधान परियोजना पूरी करता है, तो उसे 'रिसर्च' की डिग्री दी जाएगी।

(5) एकेडमिक बैंक ऑफ क्रेडिट (Bank of Credit) जो एक छात्र द्वारा अर्जित शैक्षणिक क्रेडिट को डिजिटल रूप से संग्रहीत करेगा।

(6) रिसर्च गहन शिक्षण (Research Teaching Intensive) विश्वविद्यालयों की स्थापना।

(7) भारत के परिसर में विदेशी विश्वविद्यालयों की स्थापना।

(8) हर शैक्षणिक संस्थान में, छात्रों के चिंता और भावनाओं को संभालने के लिए परामर्श प्रणाली होगी।

(9) कई प्रवेश और निकास विकल्पों के साथ चार वर्षीय स्नातक डिग्री शुरू की जाएगी।

(10) एम. फिल (M. Phil) की डिग्री समाप्त कर दी जाएगी।

(11) संस्थानों के बीच हस्तांतरण को आसान बनाने के लिए एक अकादमिक बैंक ऑफ क्रेडिट (Bank of Credit) की स्थापना की जाएगी।

(12) कॉलेज संबद्धता प्रणाली को 15 वर्षों में चरणबद्ध तरीके से समाप्त किया जाएगा, ताकि प्रत्येक कॉलेज या तो एक स्वायत्त डिग्री देने वाली संस्था या किसी विश्वविद्यालय के एक घटक कॉलेज के रूप में विकसित हो सके।

(13) इसका उद्देश्य व्यावसायिक शिक्षा सहित उच्च शिक्षा में सकल नामांकन अनुपात को 2018 में 26·3% से बढ़ाकर 2035 तक 50% करना है, जिसमें अतिरिक्त 3·5 करोड़ नई सीटें हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 : पारंपरिक ज्ञान–आदिवासी और स्वदेशी ज्ञान सहित भारतीय ज्ञान प्रणालियों को सटीक और वैज्ञानिक तरीके से पाठ्यक्रम में शामिल किया जाएगा। यह आकांक्षी जिलों, जैसे– क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रित करेगा, जहाँ बड़ी संख्या में छात्र आर्थिक, सामाजिक या जाति बाधाओं का सामना कर रहे हैं, उन्हें 'विशेष शैक्षिक क्षेत्र' के रूप में नामित किया जाएगा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 : 'त्रिभाषा सूत्र'–नीति ने सिफारिश की कि 'त्रिभाषा सूत्र' को जारी रखा जाए और सूत्र के कार्यान्वयन में लचीलापन प्रदान किया जाए। त्रिभाषा सूत्र में कहा गया है कि राज्य सरकारों को हिन्दी भाषी राज्यों में हिन्दी और अंग्रेजी के अलावा एक आधुनिक भारतीय भाषा अधिमानतः दक्षिणी भाषाओं में से एक के अध्ययन को और गैर हिन्दी भाषी राज्यों में क्षेत्रीय भाषा और अंग्रेजी के साथ–साथ हिन्दी भाषा के अध्ययन को अपनाना और लागू करना चाहिए।

प्रश्न 8. पाठ्यचर्या के विषय केन्द्रित और अनुभव केन्द्रित अभिकल्प में क्या समानताएँ होती हैं ? **(इन्दौर 2023)**

उत्तर—1. विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम — विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम में बालकों की अपेक्षा विषयों को अधिक महत्व दिया जाता है चूँकि पाठ्यक्रम में पुस्तकों का अधिक महत्व होता है इसलिए इस पाठ्यक्रम को पुस्तक केन्द्रित पाठ्यक्रम भी कहते हैं।

विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम के लाभ—इस पाठ्यक्रम के निम्नांकित लाभ हैं—

(1) इस पाठ्यक्रम से उद्देश्य स्पष्ट होता है।

(2) यह आसानी से समझ में आता है।

(3) इसकी विषय–वस्तु में आसानी से परिवर्तन लाया जा सकता है।

(4) इस पाठ्यक्रम की विषयवस्तु पहले से ही निश्चित होती है।

(5) इस पाठ्यक्रम के उपयोग से विभिन्न विषयों में सह–संबंध स्थापित किया जा सकता है।

(6) इसके द्वारा परीक्षा लेने में भी आसानी होती है।

विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम के दोष—इस पाठ्यक्रम के निम्नांकित दोष हैं—

(1) यह पाठ्यक्रम अमनोवैज्ञानिक् है। इसके अंतर्गत बालकों की रुचियों, आवश्यकताओं तथा योग्यताओं का कोई ध्यान नहीं रखा जाता है।

(2) यह कठोर होता है।

(3) इस पाठ्यक्रम द्वारा बालक का सर्वांगीण विकास नहीं किया जा सकता।

(4) इसके द्वारा बालकों में जनतांत्रिक भावनाओं का विकास नहीं किया जा सकता।

(5) यह पाठ्यक्रम बच्चों में रहने की आदत पर ही बल देता है।

2. अनुभव केन्द्रित पाठ्यक्रम — अनुभव केन्द्रित पाठ्यक्रम में बालक के विकास हेतु अनुभव को विशेष महत्व दिया जाता है। यह पाठ्यक्रम विषयों की अपेक्षा अनुभव पर आधारित होता है।

अनुभव केन्द्रित पाठ्यक्रम के लाभ—इस पाठ्यक्रम के निम्नांकित लाभ हैं—

(1) यह मनोवैज्ञानिक है।

(2) यह लचीला तथा प्रगतिशील पाठ्यक्रम है।

(3) इस पाठ्यक्रम के द्वारा बालक का सर्वांगीण विकास संभव है।

(4) यह भौतिक तथा सामाजिक वातावरण का अधिक–से–अधिक प्रयोग करता है।

(5) यह पाठ्यक्रम जनतांत्रिक होता है।

अनुभव केन्द्रित पाठ्यक्रम के दोष—इस पाठ्यक्रम के निम्नांकित दोष हैं—

(1) इस पाठ्यक्रम के अंतर्गत शिक्षा का उद्देश्य स्पष्ट नहीं होता है।

(2) इस पाठ्यक्रम के प्रयोग में समय अधिक लगता है।

(3) इस पाठ्यक्रम को क्रियान्वित करने में अधिक धन की आवश्यकता पड़ती है।

(4) इसको सफल बनाने के लिए प्रभावशाली शिक्षकों की आवश्यकता पड़ती है।

प्रश्न 9. पाठ्यचर्या के अधिगमकर्ता केन्द्रित और गतिविधि केन्द्रित अभिकल्प में क्या अंतर होता है ? **(इंदौर 2023)**

उत्तर— अधिगमकर्ता केन्द्रित अभिकल्प — इस प्रकार के पाठ्यक्रम में विषयों को महत्व न देकर बालकों को महत्व दिया जाता है। पाठ्यक्रम का प्रबंधन बालक की प्रकृति, आवश्यकता एवं रुचि के आधार पर किया जाता है जिससे कि उसके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास हो सके। मनोविज्ञान इस बात पर बल देता है कि यदि बालक की रुचियों और आवश्यकताओं पर ध्यान न दिया गया तो उसका विकास नहीं हो सकेगा। इसलिए मनोविज्ञान ने इस बात पर बल दिया है कि पाठ्यक्रम बालकों की रुचियों एवं आवश्यकताओं के आधार पर संगठित किया जाये। अतः सभी आधुनिक शिक्षण पद्धतियाँ जैसे–माण्टेसरी पद्धति, किन्डरगार्टन पद्धति आदि इस प्रकार के पाठ्यक्रम पर बल देती है।

कार्य केन्द्रित और गतिविधि केन्द्रित अभिकल्प—इस प्रकार का पाठ्यक्रम विभिन्न कार्यों आधारित होता है। बालकों के लिए ऐसे कार्यों का आयोजन किया जाता है जिनका कुछ सामाजिक मू हो और जो उसके सर्वांगीण विकास में सहायक हो। इन कार्यों का चुनाव शिक्षण और बालक के पर सहयोग से किया जाता है और चुनाव के समय बालकों की रुचि का विशेष ध्यान रखा जाता है। डयू महोदय क्रियाशीलता के पाठ्यक्रम के प्रमुख समर्थक हैं। वे बालकों को ऐसे कार्यों द्वारा दिशा देने सुझाव रखते हैं जिनके सीखने पर वे भविष्य में समायोपयोगी कार्य करने योग्य बना सकें।

प्रश्न 10. पाठ्यचर्या क्रियान्वयन की किन्हीं पाँच बाधाओं को लिखिए। (इंदौर 202

उत्तर— पाठ्यचर्या क्रियान्वयन में आने वाली बाधाएँ निम्नलिखित हैं—

(1) किसी भी शैक्षिक कार्यक्रम का आयोजन एवं उसका क्रियान्वयन शिक्षकों द्वारा ही कि जाता है। नवीन कार्यक्रमों का क्रियान्वयन एवं उनकी सफलता शिक्षकों में पाठ्यचर्या के प्रति उत्सा श्रमशीलता एवं भविष्योन्मुख सोच पर निर्भर करती है। शिक्षक नवीन प्रयोग करने में, नवाचारों अपनाने में तथा उसका संरक्षण करने में संकोच करते हैं। पाठ्यचर्या में परिवर्तन लाने तथा नवाचा को अपनाने के मार्ग में शिक्षकों की जड़ता एवं रूढ़िवादिता सबसे बड़ी बाधा उत्पन्न करती है।

(2) पाठ्यचर्या क्रियान्वयन के संबंध में किसी राष्ट्र के सम्मुख दो स्थितियाँ होती हैं—पहल किसी भी देश की शिक्षा व्यवस्था विदेशी प्रतिमानों पर नहीं चल सकती इसलिए उसे अपने प्रतिमा विकसित करने की परम आवश्यकता है। दूसरी, दूसरे देशों के सफल शिक्षा संबंधी प्रयोगों से प्रत्ये देश न्यूनाधिक अंशों में अवश्य लाभान्वित हो सकता है। इस प्रकार जहाँ एक तरफ किसी विदे प्रतिमान का अंधानुकरण किसी देश के लिए हानिप्रद सिद्ध हो सकता है, वहीं दूसरी ओर कि उपयोगी विचार व दृष्टिकोण को विदेशी होने के कारण अस्वीकार कर देना भी अविवेकपूर्ण कार्य है

(3) आस्थाओं एवं सिद्धांतों के प्रति प्रतिबद्धता में कभी किसी भी कार्यक्रम की सफल आस्था, दृढ़ता तथा उसके सिद्धांतों के प्रति प्रतिबद्धता पर निर्भर होती है। नवीन परिवर्तनों के प्र कार्यकर्त्ताओं में अधिकांशतः आस्था एवं विश्वास की कमी पाई जाती है जिससे वे उसके प्रति प्रतिब भी नहीं हो पाते हैं। ऐसे में इन परिवर्तित कार्यक्रमों से संबंधित व्यक्ति ऊपरी मन से ही इन्हें स्वीका करते हैं जिसके परिणामस्वरूप परिवर्तन के मार्ग में बाधा उत्पन्न होती है।

(4) परिवर्तन के प्रति अभिमत एवं आस्था को सामान्यतया एक ही अर्थ में ले लिया जाता लेकिन इनमें अंतर होता है। अभिमत आस्था की दिशा में ही एक कदम है फिर भी इसे आस्था नहीं माना जा सकता है। आस्था में अभिमत की अपेक्षा बहुत अधिक दृढ़ता होती है। अभिमत एवं आस्था में विभेद कर सकने की असमर्थता भी बड़ी बाधा है।

(5) पाठ्यचर्या में सम्मिलित होने वाले सभी प्रकरणों एवं अंतर्वस्तुओं का कुछ–न–कुछ औचित होता है। कुछ प्रकरणों का कुछ समय बाद कोई औचित्य नहीं रह जाता तथा वे कालातीत हो जा हैं लेकिन फिर भी वे पाठ्यचर्या के अंग बने रहते हैं। परम्पराओं के प्रति झुकाव के कारण ही ऐस होता है। इस कमी को समस्त स्तरों की पाठ्यचर्याओं एवं शैक्षिक कार्यक्रमों में अनुभव किया जा है। ऐसे प्रकरण जो पाठ्यचर्या के आकार को केवल विस्तृत करते हैं उन्हें पाठ्यचर्या से निकाल क उनके स्थान पर उपयोगी एवं समयानुकूल प्रकरण को सम्मिलित करना चाहिए।

(6) समुचित नियोजन पाठ्यचर्या के विकास के लिए अतिआवश्यक है। समुचित नियोजन के अभाव में प्रभावी पाठ्यचर्या संभव नहीं हो सकती है इसके अतिरिक्त परिवर्तन के प्रति प्रायः सभी क्षेत्र में एक मनोवैज्ञानिक अवरोध की भावना भी पाई जाती है। इस अवरोध की भावना को समुचि नियोजन द्वारा कम किया जा सकता है तथा धीरे–धीरे इसे समाप्त भी किया जा सकता है। लेकि प्रायः यह देखने में आता है कि अनेक पाठ्यचर्या संबंधी कार्यक्रमों का समुचित नियोजन नहीं किय जाता है तथा उनके क्रियान्वयन का उचित रूप में निरंतर मूल्यांकन भी नहीं किया जाता है जिसके परिणामस्वरूप शैक्षिक कार्यक्रम विफल हो जाते हैं।

प्रश्न 11. पाठ्यचर्या संवर्धन के किन्हीं भी दो तरीकों को लिखिए। **(इंदौर 2023)**

उत्तर– पाठ्यचर्या संवर्धन के अंतर्गत पाठ्यक्रम सुधार को प्राथमिकता प्रदान करना एवं शिक्षा को बच्चों के लिए उपयुक्त एवं औचित्यपूर्ण बनाना आता है। साथ ही बच्चों की भाषा एवं विषय बोधगम्यता अंकीय एवं परिमाणात्मक कौशल एवं ज्ञान सृजनात्मक एवं उपयोग क्षमता के महत्व के दृष्टिगत परीक्षा प्रणाली में सुधार लाया जाना शामिल है।

पाठ्यक्रम के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करने तथा नवीन पाठ्यक्रम के समुचित विकास हेतु कुछ उपयोगी सुझाव व तरीके निम्न प्रकार हैं–

(1) पाठ्यक्रम के लिए पूर्व नियोजन होना चाहिए। इसके अंतर्गत पाठ्यक्रम संदर्शिकाओं का प्रकाशन, शिक्षकों को नवीन शैक्षिक सामग्री एवं परामर्श सेवायें उपलब्ध कराना, सेवारत प्रशिक्षण की व्यवस्था आदि सम्मिलित किये जाने चाहिए।

(2) किसी भी अच्छे परिवर्तन को साहस करके प्रारंभ कर देना चाहिए। प्रारंभ होने पर तो इसका विरोध होता है किंतु अच्छे परिणाम आने पर धीरे–धीरे कार्यक्रम के प्रति विरोध एवं उदासीनता समाप्त हो जाती है।

(3) सफलता को जानने के लिए निरंतर रूप में सर्वेक्षण, मूल्यांकन तथा अनुसंधान कार्य भी चलते रहने चाहिए।

(4) किसी भी नवाचार को प्रारंभ करने वालों के व्यक्तित्व का उनकी स्वीकार्यता पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। अतः पाठ्यक्रम के क्षेत्र में भी यदि कोई प्रभावशाली व्यक्ति उसे नेतृत्व प्रदान करते हैं तो उनके क्रियान्वयन एवं सफलता की संभावना अधिक हो जाती है।

(5) पाठ्यक्रम को औपचारिक ढंग से प्रस्तुत करने से पूर्व अनौपचारिक चर्चाओं एवं वार्ताओं के द्वारा इसकी स्वीकार्यता के संबंध में जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए।

प्रश्न 12. पाठ्यचर्या के चयन, उन्नयन एवं संगठन की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
(जबलपुर 2022)

उत्तर– पाठ्यचर्या के समग्र चयन का आशय है–पाठ्यचर्या के उद्देश्यों का चयन, पाठ्यचर्या की विषयवस्तु का चयन, अधिगम अनुभवों का चयन, पाठ्यचर्या के मूल्यांकन व मापन की प्रविष्टियों का चयन। इनसे पूर्व भी पाठ्यचर्या के प्रारूप का चयन करना होता है।

पाठ्यचर्या के प्रारूप (डिजाइन) को **सेलर** एवं **एलेक्जेण्डर** ने इन शब्दों से परिभाषित किया है– ''पाठ्यचर्या प्रारूप वह ढाँचा या संरचना है जिसका विद्यालय में शैक्षिक अनुभवों को चुनने, नियोजित करने तथा कार्यान्वित करने में प्रयोग किया जाता है।''

अतः पाठ्यचर्या के लिए ऐसे सामान्य प्रारूप का चयन सर्वप्रथम आवश्यक है जिसमें निम्नलिखित तथ्य समाविष्ट हो–

(1) सामाजिक आवश्यकताएँ।
(2) आवश्यकताओं के आधार पर पाठ्यचर्या के सामान्य व विशिष्ट उद्देश्यों को चुनना।
(3) उद्देश्यों के अनुरूप विषय व विषयवस्तु और प्रकरणों को चुनना।
(4) विषयवस्तु का इकाइयों में संयोजन।
(5) निर्धारित समय का सम्यक् आंकलन।
(6) पाठ्यचर्या प्रतिवेदन (प्रारूप) का लेखन।

प्रारूप चयन के उपरांत पाठ्यचर्या के विभिन्न प्रतिमानों में से किसी प्रतिमान अथवा ऐसा सामान्य प्रतिमान जिससे बिना किसी विशिष्ट प्रतिमान का अनुसरण किये पाठ्यचर्या की सभी आवश्यक प्रक्रियाओं का समावेश का चयन आवश्यक है। सामान्य प्रतिमान में अग्रलिखित चरण सम्मिलित रहते हैं–

(1) पाठ्यचर्या के क्षेत्र का सर्वेक्षण, (2) शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण, (3) विषयवस्तु का चय (4) पूर्व परीक्षण, (5) पूर्व परीक्षण के परिणामों के आधार पर आवश्यक सुधार, (6) पाठ्यचर्या प्रकाशन, (7) क्रियान्वयन, (8) छात्र मूल्यांकन तथा प्राप्त फीडबैक के आधार पर आवश्यक संशोधन

पाठ्यचर्या का संगठन–विभिन्नताओं या अनेकताओं को एकसूत्रता में पिरोना संगठन है। पाठ्यचर्या में विषयों और विषयवस्तु का बिखराव, पाठ्यचर्या के विभिन्न चरणों का एकीकरण उनमें क्रमबद्धता व व्यवस्था, पाठ्यचर्या की विषयवस्तु को अंतर्संबंधित करना या सहसंबंधित करना पाठ्यचर्या का संगठन है।

जेम्स एमली के अनुसार–पाठ्यचर्या की संरचना का निर्माण इन छः पृथक् तत्वों से होता है प्रारूप या डिजाइन, क्षेत्र, अनुक्रम, सांतव्य, संतुलन व विस्तार तथा एकीकरण इन तत्वों में एकीकरण ही संगठन है।

जेम्स एमली ने पाठ्यचर्या संगठन के दो प्रकल्प (डिजाइन) बताए हैं– अंशों में विभाजित प्रकल्प तथा एकीकृत प्रकल्प/अंशों में विभाजित प्रकल्प में प्रत्येक विषय को पृथक् से संगठित किया जाता है जबकि एकीकृत प्रकल्प के अंतर्गत विविध विषयों का एकीकरण किया जाता है। पाठ्यचर्या के संगठन हेतु निम्नलिखित प्रयास आवश्यक हैं–

1. समन्वित या एकीकृत पाठ्यक्रम संगठन – अमेरिका के विश्वविद्यालयों में समन्वित या एकीकृत पाठ्यचर्या को प्रमुखता दी जा रही है जिसमें विविध विषयों के समन्वय या एकीकरण के लिए उन्हें सहसंबंधित करने के प्रयास किये जाते हैं। विभिन्न विषयों को सहसंबंधित करने से ज्ञान के स्थानांतर का सिद्धांत लागू होता है और ज्ञान को एकीकृत रूप से समझाने से विद्यार्थी की अधिगम क्षमता में वृद्धि होती है। विभिन्न विषयों का एकीकरण पाठ्यचर्या का संगठन ही है।

2. क्रमबद्ध पाठ्यचर्या संगठन – पाठ्यचर्या के विविध विषयों में क्रमबद्धता होती है एक विषय के बाद दूसरा विषय मनोवैज्ञानिक सम्बद्धता के साथ संगठित किया जाता है। इसमें पहले सरल और फिर कठिन संप्रत्यय रखे जाते हैं। साथ ही विषय के संप्रत्यय को स्पष्ट करने वाले प्रकरण विषय की व्याख्या या स्वरूप के पूर्व रखे जाते हैं।

3. पाठ्य विषयों की निरंतरता – संगठित पाठ्यचर्या में पाठ्य विषयों का चयन निरंतरता के क्रम में किया जाता है। इससे पाठ्यचर्या में गतिशीलता आती है और पाठ्यक्रम सुबोध हो जाता है

4. पाठ्य सहगामी क्रियाओं का संगठन – पाठ्यक्रम के साथ–साथ पाठ्य सहगामी क्रियाएँ भी चलती रहनी चाहिए। ये पाठ्य सहगामी क्रियाएँ विषय को समझने में सरलता लाती है। अतः पाठ्यचर्या के साथ पाठ्य सहगामी गतिविधियों को भी संगठित करना चाहिए।

5. सैद्धान्तिक व प्रायोगिक पक्ष का संगठन– पाठ्यक्रम जिस विषय से भी संबंधित हो उसका विकास करते समय शिक्षक को सैद्धांतिक ज्ञान के साथ–साथ प्रायोगिक ज्ञान भी संगठित कर पढ़ाना चाहिए। अधिगम को सुबोध तथा स्थायी बनाने के लिए दोनों पक्षों का संगठन आवश्यक है।

6. विषयवस्तु के साथ शैक्षिक अनुभवों का संगठन – अधिगम अनुभव पाठ्य विषय को समझने व स्मृति में स्थायी करने का कार्य करते हैं। पाठ्यचर्या का विकास करते समय शिक्षक को अधिकाधिक अधिगम अनुभव पाठ्यचर्या की विषयवस्तु के साथ संगठित कर पढ़ाए जाने चाहिए।

प्रश्न 13. पाठ्यक्रम के समृद्धिकरण सिद्धांतों का वर्णन कीजिए। (छतरपुर 2022)

उत्तर– पाठ्यक्रम के प्रकल्प निर्माण के बाद पाठ्यचर्या का समृद्धिकरण या उसके संचालन करने की बात आती है। प्रायः अधिगम की प्रक्रिया उस समय से प्रारंभ हो जाती है, जब शिक्षक विद्यार्थियों को परिस्थितिगत अनुभवों से परिचित कराने लगते हैं। ये औपचारिक शिक्षा का इस्तेमाल कर अधिगम परिस्थितियों द्वारा बालक के व्यवहार में परिवर्तन लाते हैं।

पाठ्यक्रम समृद्धिकरण का अर्थ है– संपूर्ण शिक्षा प्रक्रिया को अधिक–से–अधिक महत्वपूर्ण एवं रुचिकर बनाना। विशेष परिस्थितियों, शिक्षण सामग्रियों, विचारों, संगठन की सहायता से शिक्षक पाठ्यक्रम को जीवन प्रदान किया जाता है।

पाठ्यक्रम समृद्धिकरण में निम्न बिंदुओं का महत्वपूर्ण योगदान है–

1. अधिगम परिस्थिति का चयन एवं संगठन – विद्यालय वह स्थान है, जहाँ विद्यार्थियों को उपयुक्त वातावरण में रखकर उनके व्यवहार में परिवर्तन लाने का प्रयास किया जाता है। इस नियंत्रित वातावरण में उनको अच्छी आदतों के लिए पुरस्कृत किया जाता है तो बुरे आदतों के लिए दंड किया जाता है।

अच्छी आदतें एवं व्यवहार, जैसे–

(1) शिक्षक एवं बड़ों की इज्जत करना।

(2) कक्षा में शांति बनाए रखना।

(3) कक्षा में शिक्षक ना होने पर कक्षा मॉनिटर की बात मानना।

(4) कक्षा में आने एवं बाहर जाने के वक्त अध्यापक से अनुमति लेना।

(5) प्रतिदिन अपने गृहकार्य को करके आना आदि बातों को सम्मिलित किया जाता है।

विद्यालय को साफ–सुथरा रखना चाहिए और बच्चों को भी इसके लिए प्रेरित करना चाहिए। विद्यालय का निर्माण स्वच्छ, सुगम एवं शांत वातावरण वाले स्थान में करवाना चाहिए।

2. उपलब्ध अवसंरचना व संसाधन – पाठ्यचर्या का सबसे महत्वपूर्ण संसाधन पाठ्यपुस्तक को माना जाता है क्योंकि पाठ्य पुस्तक के माध्यम से ही विभिन्न विषय जैसें–गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान इत्यादि की शिक्षा दी जाती है। इन्हीं पुस्तकों के माध्यम से बच्चों को कक्षा कार्य एवं गृहकार्य भी प्रदान किए जाते हैं। परंतु इसके अलावा भी कई अन्य सामग्रियाँ एवं संरचनाएँ हैं जो अधिगम प्रक्रिया को तेज कर सकते हैं। जैसे–मानचित्र, ग्लोब, विभिन्न जानवरों, पक्षियों, फलों इत्यादि के पोस्टर, पुस्तकालय, शैक्षिक तकनीक, उपकरण एवं प्रयोगशाला, विभिन्न सार्वजनिक स्थल, कम्प्यूटर, प्रोजेक्ट, खेल के सामान इत्यादि।

3. सांस्कृतिक कार्यक्रम एवं आनंदमय वातावरण – पाठ्यक्रम संवर्धन में सांस्कृतिक कार्यक्रम एवं आनंदमय वातावरण भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जिन विद्यालयों में राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय उत्सवों के कार्यक्रम प्रतियोगिता एवं खेलकूद जैसे आदि आयोजन कराये जाते हैं। उन विद्यालयों के बच्चों में अपनी सभ्यता, संस्कृति के प्रति आदर का विकास होता है। साथ ही विद्यालय वातावरण आनंदमय एवं शिक्षक–छात्र के रिश्ते मधुरमय रहते हैं। ऐसे आयोजन विद्यालय में मासिक, अर्द्धवार्षिक या वार्षिक तौर पर होते रहने चाहिए।

कई विद्यालय अपने यहाँ ऐसे वातावरण बनाते हैं जिससे उनके बच्चे समाज में ऊँचे दर्जे का नागरिक बन सके। ऐसे विद्यालय प्रतिदिन प्रार्थना स्थल में ही प्रार्थना करते हैं उसके पश्चात् अखबार की सुर्खियों को पढ़ना, राष्ट्रीय गाना, पी.टी. एवं अन्य महत्वपूर्ण मुद्दों पर बातें करना जैसे संस्कृति विकसित करते हैं।

4. शिक्षक व अन्य शिक्षण–शास्त्रीय समर्थन की भूमिका – पाठ्यक्रम के समृद्धिकरण में शिक्षकों का भी विशेष योगदान होता है। प्रायः प्रत्येक शिक्षक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से बालक को अपने विचारों, आस्था, मान्यता, शैक्षिक योग्यता एवं सामाजिक पृष्ठभूमि से प्रभावित करते रहते हैं। यह कार्य शिक्षक जाने या अनजाने रूप में करते हैं। उदाहरणार्थ अधिकांश शिक्षक जिस तरह से सामाजिक पृष्ठभूमि से आते हैं वे वैसी ही मान्यताएँ अपने विद्यार्थियों पर भी थोपने की कोशिश करते हैं। प्रायः ज्यादातर शिक्षक मध्यम वर्ग से होते हैं, जो अति निम्न वर्ग के विद्यार्थियों की समस्याओं से अनभिज्ञ होते हैं। ये उन्हें समझने में गलती कर जाते हैं और बार–बार शिक्षक इनकी कमियों पर मजाक बनाते हैं।

वर्तमान में कई शिक्षक राजनीतिक दल, संगठन, गुट इत्यादि से भी जुड़े होते हैं। जिनके कारण उनका पूर्ण ध्यान पठन–पाठन में नहीं होता है और बच्चों का अधिगम कार्यबाधित होता है।

प्रश्न 14. पाठ्येत्तर क्रियाओं के महत्व को समझाइये। (उज्जैन 2022

उत्तर– पाठ्येत्तर क्रियाएँ पहले गैर–शैक्षणिक पाठ्यक्रम का एक हिस्सा था। परन्तु आज पाठ्यक्रम का प्रमुख अंग बन गया है। यह छात्रों के व्यक्तित्व विकास के विभिन्न पहलुओं विकसित करने में मदद करता है। बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए भावनात्मक, शारीरिक आध्यात्मिक और नैतिक विकास जरूरी है जहाँ सह पाठ्यक्रम गतिविधियाँ पूरक के रूप में का करती हैं। पाठ्येत्तर क्रियाएँ ऐसी गतिविधियाँ हैं जो छात्र के विभिन्न विकास जैसे–बौद्धिक विकास भावनात्मक विकास, सामाजिक विकास, नैतिक विकास और सौंदर्य विकास आदि में अहम भूमिक निभाता है। पाठ्येत्तर क्रियाओं में खेल, संगीत, वाद–विवाद, कला, नाटक, चर्चा, भाषण प्रतियोगित कहानी लेखन प्रतियोगिता, निबंध लेखन प्रतियोगिता, कला शिल्प, सजावट, लोक संगीत, लोक नृत्य मूर्ति निर्माण, फोटोग्राफी, फैंसी ड्रेस प्रतियोगिता, त्यौहार के उत्सव मानना इत्यादि शामिल होते हैं

पाठ्येत्तर क्रियाओं द्वारा छात्र व्यावहारिक ज्ञान के अनुभव को जान पाता है। बहुत हद तक क कक्षा शिक्षण और प्रशिक्षण को मजबूत करता है। बौद्धिक व्यक्तित्व के लिये कक्षा शिक्षण जरूरी जबकि सौंदर्य विकास, चरित्र निर्माण, आध्यात्मिक विकास के लिये पाठ्येत्तर क्रियायें आवश्यक है

पाठ्येत्तर क्रियाओं का महत्व–पाठ्येत्तर क्रियाओं का निम्नलिखित महत्व हैं–

(1) छात्रों के लिए सह–पाठ्यक्रम गतिविधियों के द्वारा सीखे गए नये कौशल को याद रख बहुत आसान होता है।

(2) छात्रों के नियमित कक्षा पाठ्यक्रम से हट कर नये दोस्त बनाने और नई समूह गतिविधि में भाग लेने का अवसर मिलता है।

(3) विभिन्न तरह की गतिविधियों से सौहार्द्र की भावना विकसित होती है।

(4) छुट्टियों के दौरान सह–पाठ्यक्रम गतिविधियों से छात्र एक–दूसरे से जुड़े रहते हैं।

(5) स्कूल में कई तरह की गतिविधियों में भाग लेने से छात्रों में आत्मविश्वास का विकास होत है।

(6) छात्र सह–पाठ्यक्रम गतिविधियों के जरिए अपने कौशल की पहचान कर सकते हैं जिस उन्हें अपना करियर बनाने में आसानी होती है।

(7) पाठ्येत्तर क्रियाओं में भाग लेने के प्रमाण पत्र उच्च शिक्षा के लिए प्रवेश लेने और नौक तलाश में उपयोगी होते हैं।

(8) स्कूल में विभिन्न तरह की गतिविधियाँ देश की संस्कृतियों के बारे में समझ को बढ़ा देती है और सभी में एकता की भावना पैदा करती है।

(9) यह छात्रों के लिए सीखने का एक मजेदार तरीका होता है इससे छात्रों को समय प्रबंध और संगठनात्मक कौशल को विकसित करने में मदद मिलती है।

(10) पाठ्येत्तर क्रियाओं के द्वारा निष्क्रिय बच्चों में सक्रियता बढ़ायी जा सकती है।

(11) पाठ्येत्तर क्रियाएँ बौद्धिक विकास की तुलना में शारीरिक विकास के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

(12) पाठ्येत्तर क्रियाएँ बच्चों के व्यवहार को बदलने में सहायक होती है।

(13) छात्रों में निर्णय लेने की क्षमता का विकास में पाठ्येत्तर क्रियाएँ सहायक होती हैं।

(14) पाठ्येत्तर क्रिया वाद–विवाद के माध्यम से छात्र खुद को अभिव्यक्त कर पाता है।

(15) इससे बच्चे किसी भी कार्य को संगठित रूप में करना सीख जाते हैं।

अध्याय 4

पाठ्यक्रम विकास एवं पाठ्यक्रम के निर्धारक

लघु एवं दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. पाठ्यक्रम विकास की प्रक्रिया को समझाइये। **(रीवा 2022)**

***अथवा*, पाठ्यक्रम संगठन से क्या आशय है ?**

***अथवा*, पाठ्यक्रम विकास के नियोजन की व्याख्या कीजिए।**

***अथवा*, पाठ्यक्रम के मूल तत्वों की चर्चा कीजिए।** **(ग्वालियर 2021)**

***अथवा*, पाठ्यचर्या निर्माण के विभिन्न सोपानों को समझाइए।**

(इंदौर 2022; ग्वालियर 21; जबलपुर 21)

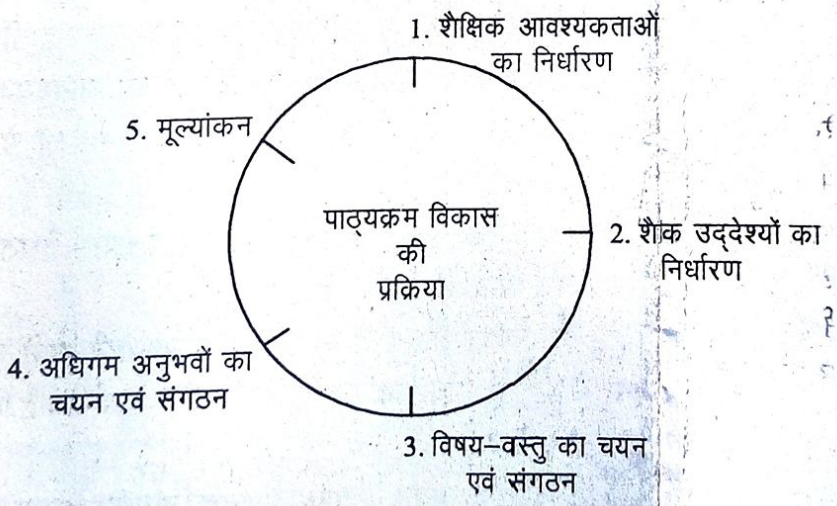
***अथवा*, पाठ्यचर्या विकास के दौरान विषय संगठन के किन्हीं 3 प्रकारों का वर्णन कीजिए।**

(इंदौर 2023)

***अथवा*, पाठ्यक्रम विकास के सोपानों का विस्तार से वर्णन कीजिए।**

(छिंवाड़ा 2022; ग्वालियर 22)

उत्तर–पाठ्यक्रम विकास की प्रक्रिया–यह शिक्षा का एक अभिन्न अंग है। पाठ्यक्रम का सीधा संबंध शिक्षा के उद्देश्यों से होता है और पाठ्यचर्या का विकास भी इन शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किया जाता है जो बालकों के सर्वांगीण विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है। विकास का अर्थ निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है जो कभी समाप्त नहीं होती। इसी प्रकार पाठ्यक्रम विकास की प्रक्रिया भी चक्रीय तथा निरंतर चलने वाली मानी जाती है। जिसके प्रमुख पाँच तत्व माने जाते हैं–



1. शैक्षिक आवश्यकताओं का निर्धारण–पाठ्यक्रम तभी उत्तम कहलाती है, जब यह समाज के व्यक्तियों के अनुरूप तैयार की जाए। साथ–ही–साथ पाठ्यचर्या के द्वारा तय किए जाने वाले महत्वपूर्ण सोपानों में से एक है, "आवश्यकताओं का निर्धारण करना" इन आवश्यकताओं को दो प्रकार से निर्धारित किया जा सकता है–

(i) सर्वप्रथम एक सर्वेक्षण (Survey) के द्वारा,

(ii) उपलब्ध आँकड़ों के विश्लेषण के द्वारा।

2. शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण—शिक्षा तथा पाठ्यक्रम निर्माण के उद्देश्य एक ही होते। उद्देश्यों के प्रतिपादन में वे स्रोतों का उपयोग किया जाता है। इसके प्रमुख स्रोत इस प्रकार

(i) परिस्थिति विश्लेषण के आंतरिक तथा बाह्य घटकों की पहचान,

(ii) शिक्षा के दार्शनिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक आधार,

(iii) छात्रों के विकास की अवस्थाओं की आवश्यकता,

(iv) राष्ट्र के भावी नागरिकों के कौशल एवं क्षमताओं का स्वरूप।

शिक्षा के उद्देश्यों का वर्गीकरण निम्न आधार पर किया जाता है—

1. ज्ञानात्मक, 2. भावात्मक, 3. क्रियात्मक, 4. सामाजिक एवं 5. शारीरिक।

पाठ्यक्रम का प्रारूप विशिष्ट होता है जिसका निर्माण विशेष स्तर के छात्रों के लिए विशि सामाजिक संदर्भ के लिए किया जाता है। इसके लिए यह आवश्यक होता है कि इन उद्देश्यों चयन करके व्यावहारिक रूप में लिखा जाए जिसे **'विशिष्ट उद्देश्य'** कहते हैं।

शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण कर पाठ्यचर्या मुख्यतः निम्नलिखित तत्वों पर आधारित क बनाई जाती है—

1. मिलना, 2. उत्कर्ष योग्यता, 3. कथन या अभिव्यक्ति, 4. उपयुक्तता, 5. तार्किक वर्गीक एवं 6. पुनर्निरीक्षण व पुनर्विच।

3. विषय–वस्तु का चयन एवं संगठन—पाठ्य–वस्तु की व्यवस्था एवं अर्थापन ज्ञान, कौश अभिवृत्ति तथा मूल्यों के रूप किया जाता है। इसकी व्यवस्था विद्यालय में पाठ्यचर्या के आधार की जाती है।

विषय–वस्तु का चयन-विषय–वस्तु के चयन हेतु मापदण्ड निम्नलिखित हैं—

(1) आत्मनिर्भरता—क्षिण हेतु विषय–वस्तु खुद में सम्पूर्ण या आत्मनिर्भर होनी आवश्यक शिक्षक व छात्र दोनों को ही विषय–वस्तु के अतिरिक्त कोई और संदर्भ की आवश्यकता न हो।

(2) महत्व—विषय–वस्तु मूल्य विचारों, संकल्पनाओं व अधिगम विशेषताओं में योगदान दे वाली हो। पाठ्यचर्या समाज लिए महत्वपूर्ण भी हो।

(3) वैधता—विषय–वस्तु शुद्ध तथा स्पष्ट स्वरूप की होनी चाहिए एवं उसमें वैधता होनी चाहि

(4) रुचि—विषय–वस्तु रोचक एवं आकर्षक होनी चाहिए।

(5) उपयोगिता—विषय-वस्तु वास्तविक जीवन से संबंधित एवं उपयोगी होनी चाहिए।

(6) अधिगम्यता—विषय-वस्तु में यह भी आवश्यक रूप से ध्यान देने योग्य बात है कि विषय–वस्तु सीखने में कितनी सरल तथकितनी कठिन है।

विषय–वस्तु का संगठन—विषय–वस्तु के चयन के पश्चात् उनका संगठन करना अति आवश्यक होता है, पाठ्यचर्या मुख्यतः अधिगम की ही योजना होती है। इसके अंतर्गत विषय–वस्तु को तर्कसंगत प्रकार से सुव्यवस्थित किया जाता है ताकि शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके। पाठ्यक्रम एक जटिल प्रक्रिया है। इसके लिए शिक्षण अधिगम प्रक्रियाओं की पूर्ण समझ होना अति अनिवार्य है। पाठ्यचर्या में सम्मिलित विषय-वस्तु में क्रमबद्धता, निरंतरता व एकीकरण का होना महत्वपूर्ण है।

(1) क्रमबद्धता—पाठ्यर्या के अन्तर्गत क्रमबद्धता का तात्पर्य विषय–वस्तु तथा सामग्री एक निश्चित क्रम में लिखा जा है। इसमें कुछ निश्चित क्रम को निम्नलिखित प्रकार से लिखा जा है—

(i) ज्ञात से अज्ञात की ओर, (ii) सरल से जटिल की ओर, (iii) मूर्त से अमूर्त की ओर।

विषय–वस्तु का चयन प्रायः काल या ऐतिहासिक विकास के आधार पर भी किया जाता है; जैसे–प्राचीनकाल, मध्यकाल, आधुनिक काल आदि।

(2) निरंतरता–इसके अन्तर्गत पूर्ण अध्ययन सामग्री की तुलना में बाद की सामग्री ज्यादा जटिल हो व छात्रों को अहम् तथा व्यापक विचारों का प्रयोग करने का अवसर प्रदान किए जाने चाहिए। इस तरह प्राप्त किया संचयी अधिगम, चिंतन अभिव्यक्ति व कौशलों से संबंधित हो सकता है। पाठ्यचर्या की विषय–वस्तु के द्वारा अधिगम की निरंतरता बनी रहती।

(3) एकीकरण–एक क्षेत्र के तथ्यों तथा सिद्धांतों को संबंधित किया जा सके अर्थात् पाठ्यचर्या ऐसी होनी चाहिए कि लक्षित छात्र समूह को पढ़ाए जाने वाले विभिन्न विषयों में संबंध स्थापित कर एकीकृत किए जा सके। जैसे कि सामाजिक विज्ञान में भूगोल, इतिहास, नागरिक शास्त्र को मिलाया जाता है।

4. अधिगम अनुभवों का चयन एवं संगठन–किसी भी अधिगम अनुभव को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

(1) शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को सुगम बनाने हेतु आयोजित किए जाने वाले क्रियाकलाप।

(2) प्रयोग की जाने वाली शिक्षण विधियाँ।

(3) शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को पूर्ण निर्देशित करना आदि।

कुछ विधियाँ जो मुख्य है– व्याख्यान, परिचर्चा, परियोजना, प्रदर्शन, विधि इत्यादि। अन्य अनेक क्रियाकलापों द्वारा भी शिक्षण प्रदान किए जाते हैं। जैसे–फिल्म प्रयोग के द्वारा, क्षेत्र पर्यटन अथवा नोट लेना इत्यादि।

5. मूल्यांकन–इसके अन्तर्गत छात्रों की उपलब्धियों तथा व्यवहार परिवर्तन का मूल्यांकन किया जाता है। जिससे अधिगम परिस्थितियों तथा अवसरों की प्रभावशीलता का बोध होता है। पाठ्यचर्या के स्वरूप की उपयुक्तता की भी जांच होती है। विद्यालय के वातावरण एवं शैक्षिक क्रियाओं की प्रभावशीलता एवं सार्थकता का बोध होता है। इससे अधिगम अवसरों के सुधार के लिए दिशा भी मिलती है।

इस प्रकार पाठ्यचर्या विकास की प्रक्रिया सम्पूर्ण पाँच सोपानों से होकर गुजरती है।

प्रश्न 2. पाठ्य–सहगामी क्रियाओं का क्या अर्थ है ? इसके महत्व पर प्रकाश डालिए।

(ग्वालियर 2021, 22; रीवा 22)

***अथवा*, विद्यालयीन कार्यक्रम में पाठ्य–सहगामी क्रियाओं का क्या महत्व है ? पाठ्य–सहगामी क्रियाओं का संगठित करने के लक्ष्य एवं सिद्धान्त क्या हैं ? विस्तृत वर्णन कीजिए।**

***अथवा*, माध्यमिक स्कूल में पाठ्य–सहगामी क्रियाओं का निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत् वर्णन कीजिए–**

(i) अर्थ, (ii) महत्व, (iii) प्रकार, (iv) लक्ष्य, (v) संगठन के सिद्धान्त।

***अथवा*, पाठ्यचर्या के घटक के रूप में पाठ्य–सहगामी क्रियों का महत्व लिखिए।**

(इंदौर 2022)

***अथवा*, पाठ्यक्रम के अतिरिक्त पाठ्य–सहगामी क्रियाएँ कौन–कौन सी होती हैं? समझाइए।**

(छतरपुर 2021)

उत्तर–पाठ्य–सहगामी क्रिया–कुछ समय पहले तक शिक्षाप्रणाली में सहगामी क्रियायें, अतिरिक्त क्रियाएँ समझी जाती थीं। यह धारणा अब बदल गई है। अब बालक के विकास के

लिए अनिवार्य समझी जाती। इसलिए इन्हें आज पाठ्यक्रम की सहगामी क्रियाएँ कहा जाता है यह क्रियाएँ भी उतनी ही मूल्यवान हैं जितनी की बौद्धिक क्रियाएँ। इस कारण उनकी ओर भी उतना ही ध्यान देने की आवश्यकता है जितनी कि बौद्धिक क्रियाओं की ओर।

सहगामी क्रियाओं में शिक्षक मूल्य शामिल हैं। यह नैतिक, सामाजिक एवं शारीरिक विकास के लिए महत्वपूर्ण है और इस कारण यह विद्यालय के पाठ्यक्रम का उतना ही बड़ा भाग है जितना कि विभिन्न विषयों का शिक्षण। आधुनिक विद्यालय उनके महत्व को मान्यता देते हैं और इन क्रियाओं का आयोजन करते हैं। इन क्रियाओं में भाग लेना सब विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य होता है।

पाठ्य–सहगामी क्रिया की परिभाषाएँ–

जे.आर.शेनन के अनुसार–"पाठ्य–सहगामी क्रियाओं में सहभागिता नियमित कक्षा कार्य की तुलना में एक संपूर्ण एवं आकर्षक व्यक्तित्व के निर्माण में ज्यादा उपयुक्त है।"

प्रो. पठान के अनुसार–"पाठ्यक्रम–सहभागी अथवा पाठ्य–सहगामी क्रियाओं से तात्पर्य उन छात्र–क्रियाओं से हैं, जिनमें मात्र अध्यापक के मार्गदर्शन में कुछ उत्तरदायित्वों को सुनियोजित विधि से सम्पन्न करने के लिये भाग लेते हैं।"

शिक्षा शब्दकोश के अनुसार–"पाठ्यक्रम–सहगामी क्रियाओं से अभिप्राय: उन क्रियाकलापों से हैं, जो छात्र के सर्वांगीण व्यक्तित्व विकास करने तथा शिक्षा के पूर्व–निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायता देती है।"

पाठ्य–सहगामी क्रिया का महत्व–विद्यालय में पाठ्य–सहगामी क्रियाओं को अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इन क्रियाओं के महत्व को निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट किया जा सकता है–

1. छात्रों के लिए–(1) मूल प्रवृत्तियों का शोधन तथा मार्गान्तरीकरण करती है। (2) सामाजिक भावना का विकास करती है (3) नागरिकता की शिक्षा प्रदान करती है। (4) अवकाश के समय का सदुपयोग करना सिखाती हैं। (5) व्यक्तित्व तथा अन्तर्निहित शक्तियों का विकास करती है। (6) नैतिकता का विकास करती है। (7) सुशासन स्थापना में सहायक होती है। (8) मानवीय गुणों का विकास करती है। (9) मनोरंजन के स्वस्थ साधन उपलब्ध कराती है। (10) व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करती है।

2. विद्यालय के लिए-1) शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक होती है, (2) विद्यालय के वातावरण को आकर्षक तथा जीवंत बनाती है। (3) विद्यालय को समाज के निकट लाती है। (4) शिक्षण शिक्षण को सरस तथा प्रभावी बनाती है। (5) छात्रों की अन्तर्निहित शक्तियों की पहचान करने में सहायक होती है।

3. समाज एवं राष्ट्र के लिए–(1) समाज को सभ्यता तथा संस्कृति की शिक्षा देती है। (2) सामाजिक मूल्यों का विकास करती है (3) देशभक्ति एवं राष्ट्रीय एकता का पाठ पढ़ाती हैं। (4) जागरुकता तथा सजगता का पाठ पढ़ाती हैं। (5) प्रजातंत्रात्मक मूल्यों का विकास करती हैं। (6) नेतृत्व गुणों का विकास कर समाज व राष्ट्र को कुशल नेता प्रदान करती है।

सहगामी क्रियाओं के प्रकार–किसी विद्यालय में अनेकानेक पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का विकास किया जा सकता है। इन सभी प्रकार की क्रियाओं को निम्नांकित वर्गों में विभक्त किया जा सकता है–

1. शैक्षिक क्रियाएँ—साहित्य परिषद्, विज्ञान कला–क्लब, भूगोल परिषद्, वाणिज्य परिषद् आदि।

2. शारीरिक क्रियाएँ—सामूहिक खेल, परेड, ड्रिल, तैरना, साईकिल चलाना, नाव चलाना, एन.सी.सी. आदि।

3. साहित्यिक क्रियाएँ—साहित्य सभा, वाद–विवाद परिषद्, पत्रिका–प्रकाशन, बुलेटिन बोर्ड, दीवार–पत्रिका आदि।

4. नागरिकता प्रशिक्षण संबंधी क्रियाएँ—सहकारी भण्डार, बाल–बैंक, श्रमदान, बाल–सभा, स्वशासन, संसद आदि।

5. संगीत तथा कला क्रियाएँ—संगीत–गोष्ठी, कवि सम्मेलन, चित्रकला–प्रतियोगिता, विद्यालय–बैण्ड, नृत्य आदि।

6. शिल्प–कला क्रियाएँ—सिलाई, बुनाई, कढ़ाई, मेहंदी रचना, खिलौना बनाना, सामान्य उपकरण बनाना, मोमबत्ती बनाना, साबुन बनाना आदि।

7. सामान्य क्रियाएँ—भ्रमण, पिकनिक, ग्राम्य पर्यवेक्षण, बालचर, स्काउटिंग, प्रौढ़ शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा आदि।

8. अन्य क्रियाएँ—टिकट या सिक्के संग्रह, फोटोग्राफी, एलबम बनाना, संग्रहालय बनाना, सफाई एवं स्वच्छता अभियान आदि।

सहगामी क्रियाओं के उद्देश्य (Objective or outcomes of Co-curricular)—**टोम्पकिन्स** के अनुसार, सहगामी क्रियाओं को तीन वर्गों में बाँट सकते हैं। ये हैं—

1. व्यक्तिगत परिणाम (Individual outcomes)—(1) अवकाश के समय का सृजनात्मक उपयोग, (2) व्यक्तित्व का विकास, (3) व्यक्तित्व का सम्पन्नीकरण, (4) आत्मबोध प्राप्त करना, (5) उत्तरदायित्व निभाने के लिए पहल करना, (6) यह सीखना कि एक मीटिंग या गोष्ठी कैसे संगठित की जाये और कैसे कोई उसमें भाग ले सकता है, (7) व्यक्ति को आत्म मूल्यांकन के अवसर प्रदान करना।

2. सामाजिक परिणाम (Social outcomes)—(1) शारीरिक और मानसिक मनोरंजन प्रदान करना, (2) दूसरों के साथ कार्य करने का अभ्यास मिलना, (3) जनतांत्रिक उत्तरदायित्व को विकसित करना, (4) मानव संबंधों को बेहतर बनाना सीखना, (5) समूह प्रक्रियाओं को समझना, (6) अच्छे शिक्षक–विद्यार्थी संबंधों को प्रोत्साहित करना, (7) सामाजिक सम्पर्कों को बढ़ाना।

3. नागरिकता एवं नीति–विषयक संबंधी (Civil and Ethical outcomes)—(1) बिना जाति, धर्म, आर्थिक या बौद्धिक विभेदों के आपस में संबंध स्थापित करना। (2) राष्ट्रीय मूल्यों एवं आदर्शों को व्यावहारिक उपयोग में लाना। (3) पाठ्यक्रम को अर्थ प्रदान करना तथा इसका विविधीकरण करना। (4) विद्यार्थियों को अपने विद्यालय की ओर आकर्षित करने में सहायता देना।

पाठ्य–सहगामी क्रियाओं के संगठन के सिद्धान्त—विद्यालय पाठ्यक्रम में विभिन्न–क्रियाओं को स्थान देने के बारे में निम्नलिखित सिद्धान्तों को स्थान दिया गया है—

1. कार्य का उचित विभाजन—छात्रों हेतु विभिन्न क्रियाओं का उचित विभाजन होना चाहिए।

2. शाला सामग्री का उचित उपयोग—पाठ्यक्रम में विभिन्न शाला सामग्री का उचित उपयोग करने की व्यवस्था होनी चाहिए।

3. सहयोग एवं सहकारिता—क्रियाओं का संगठन, इस प्रकार किया जाना चाहिए कि छात्र में सहयोग एवं सहकारिता की भावना उत्पन्न हो सके।

4. प्रजातान्त्रिक भावना का प्रादुर्भाव—हर सहगामी प्रवृत्ति में छात्रों को प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए। उनसे सलाह लेकर उन्हीं के द्वारा कार्य सम्पन्न कराया जाना चाहिए।

5. स्पष्टता और सुनिश्चितता—क्रियाओं का संगठन, स्पष्ट एवं सुनिश्चित ढंग से किया जाना चाहिए। विभिन्न क्रियाओं के संगठन में सामंजस्य के सिद्धान्त को अपनाया जाना चाहिए। वर्तमान में इन क्रियाओं को पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग माना जाने लगा है।

6. अनुकूलता, गतिशीलता तथा स्थिरता—पाठ्यक्रम निर्माण में क्रियाओं के संगठन में अनुकूलता, गतिशीलता तथा स्थिरता होनी चाहिए। विज्ञान के प्रयोगों को स्थान देना चाहिए। बिना अनुकूलता के सिद्धान्त के वह निरर्थक होगा।

7. स्वशासन का अवसर—विभिन्न क्रियाओं का संगठन इस प्रकार से किया जाना चाहिए कि छात्रों को स्वशासन का अवसर प्राप्त हो सकें। इनसे उनमें नेतृत्व की भावना का विकास होगा।

8. पाठ्यक्रम–सहगामी क्रियाओं का संगठन—पाठ्यक्रम में पाठ्य–सहगामी क्रियाओं का ध्यान रखा जाना चाहिए। इनकी अवहेलना कर हम बालक का चहुँमुखी विकास नहीं कर सकते हैं। ये क्रियाएँ बौद्धिक तथा नैतिक स्तर का उत्थान करने वाली होनी चाहिए।

पाठ्य–सहगामी क्रियाएँ बालक के बहुमुखी विकास का साधन मात्र होनी चाहिए। इन क्रियाओं की समय–सारणी बनायी जानी चाहिए तथा उसका पालन किया जाना चाहिए। शिक्षक के मार्गदर्शन तथा निरीक्षण में ये क्रियाएँ पूर्ण की जानी चाहिए और छात्रों को उनका पूर्ण उत्तरदायित्व सौंपा जाना चाहिए।

प्रश्न 3. पाठ्यक्रम विकास के प्रमुख निर्धारक एवं अभिप्रेरक कौन–कौन से हैं? उनका संक्षेप में वर्णन कीजिए। **(रीवा 22; भोपाल 22; छिंदवाड़ा 22)**

***अथवा*, शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण के आधार पर पाठ्यक्रम विकास की प्रक्रिया क्या है? समझाइए एवं पाठ्यक्रम विकास के निर्धारण कौन–कौन से हैं ?** **(छतरपुर 2021)**

***अथवा*, पाठ्यचर्या विकास क्या है ? पाठ्यचर्या विकास के उद्देश्यों और निर्धारकों की विवेचना कीजिए।** **(भोपाल 2022)**

उत्तर—पाठ्यक्रम विकास के प्रमुख निर्धारक एवं अभिप्रेरक निम्नलिखित हैं—

1. शैक्षिक उद्देश्य (Educational objectives)—पाठ्यक्रम के निर्धारण में शैक्षिक उद्देश्यों का विशेष महत्व होता है। शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण में आवश्यकता का विशेष महत्व होता है। जिस प्रकार के शैक्षिक उद्देश्य होते हैं पाठ्यक्रम भी उसी प्रकार का निर्मित किया जाता है। शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण से शैक्षिक कार्यक्रमों को निश्चित दिशा मिलती है तथा शैक्षिक क्रियाओं की प्रकृति का निर्धारण होता है। शैक्षिक उद्देश्यों के अनुसार ही पाठ्यक्रम को स्पष्टता और सार्थकता प्राप्त होती है, जिससे शैक्षिक विकास कार्यों को भी निर्देश प्राप्त होता है। अधिगम को कार्यात्मक बनाने में सहायता मिलती है। शैक्षिक प्रक्रिया को सुपरिभाषित किया जा सकता है तथा वैध मूल्यांकन सम्भव होता है।

2. शिक्षक (Teacher)—किसी भी शैक्षिक कार्यक्रम की सफलता या असफलता उस कार्यक्रम को क्रियान्वित करने वाले शिक्षकों पर निर्भर करती है। शिक्षकों के आचार–विचार, आस्थायें, मान्यतायें, सामाजिक पृष्ठभूमि एवं शैक्षिक योग्यता आदि पाठ्यक्रम को बहुत अधिक प्रभावित करते हैं। शिक्षक, शिक्षा प्रक्रिया की महत्वपूर्ण धुरी होता है। अतः शिक्षक से जुड़ा प्रत्येक पक्ष इस प्रक्रिया को प्रभावित करता है। पाठ्यक्रम पर शिक्षक वर्ग का प्रभाव दो प्रमुख रूपों में कार्य करता है—

(i) वैयक्तिक रूप में एवं (ii) संगठित शक्ति के रूप में।

(i) वैयक्तिक रूप में—प्रत्येक शिक्षक कुछ नैतिक मूल्यों में आस्था रखता है तथा जाने–अनजाने वह उनका शिक्षण भी करता रहता है। पाठ्यक्रम शिक्षक के लिए अपने विचारों को बालकों तक पहुँचाने का माध्यम होता है। वह प्राय: पाठ्यक्रम की अन्तर्वस्तु का उपयोग अपने विश्वास, दृष्टिकोण एवं मान्यताओं को विद्यार्थियों के सम्मुख प्रस्तुत करने के लिए करता है। इस प्रकार प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष ढंग से शिक्षक व्यक्तिगत रूप में पाठ्यक्रम को प्रभावित करता है।

(ii) संगठित शक्ति के रूप में—वर्तमान समय में शिक्षक संगठन शक्ति के रूप में भी उभर रहा है। अन्य व्यावसायिक वर्गों के समान ही शिक्षक वर्ग के संगठन भी कार्य करने लगे हैं। जो उनकी आर्थिक एवं सेवा संबंधी माँगों को पूरा करवाने के साथ–साथ कुछ सीमा तक पाठ्यक्रम को भी प्रभावित करते हैं।

3. शिक्षार्थी (Student/Learner)—पाठ्यक्रम को प्रभावित/निर्धारित करने वाला एक महत्वपूर्ण घटक शिक्षार्थी भी हैं। पाठ्यक्रम के उद्देश्य, उसकी अन्तर्वस्तु अधिगमानुभवों का चयन, मूल्यांकन प्रक्रिया आदि के संबंध में निर्णय लेते समय उस छात्र जनसंख्या को भी दृष्टि में रखना आवश्यक होता है। जिसके लिए पाठ्यक्रम का आयोजन किया जा रहा है। छात्रों की सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि का ज्ञान इसमें सहायक सिद्ध होता है, छात्रों की भाषिक योग्यता उनकी आवश्यकतायें एवं आकांक्षायें आदि पाठ्यक्रम को बहुत अधिक सीमा तक प्रभावित करती है। नये उपयोगी विषयों का समावेश, अनुपयुक्त प्रकरणों का निष्कासन, मूल्यांकन प्रक्रिया, समय–सारिणी आदि सभी पक्षों में शिक्षार्थियों का प्रभाव महत्व रखता है।

4. सामाजिक परिवर्तन (Social change)—पाठ्यक्रम का निर्धारकों में सामाजिक परिवर्तन भी महत्वपूर्ण निर्धारक है। सामाजिक मूल्य तथा परम्पराएँ संविधान की व्यवस्था भी पाठ्यक्रम को प्रभावित करती है। समाज में सदैव परिवर्तन होता रहता है। सामाजिक परिवर्तनों के आधार पर ही शिक्षा का स्वरूप निश्चित होता है। सामाजिक परिवर्तन के अनुसार ही शिक्षा व्यवस्था को संगठित किया जाता है तथा उसी प्रकार का पाठ्यक्रम तैयार किया जाता है, जो हमारे सामाजिक मूल्यों एवं परम्पराओं के प्रतिकूल न हो और समाज को अन्धविश्वास तथा कुरीतियों से दूर रखें। साथ ही स्वतंत्रता, समानता, धर्म निरपेक्षता, अवसरों की समानता तथा बन्धुत्व के सिद्धान्त को स्वीकार कर लोकतान्त्रिक समाजवादी समाज की स्थापना कर सके। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं और परिणामस्वरूप एक नवीन सामाजिक व्यवस्था का उदय हुआ है। इस नवीन भारत के निर्माण में समाज–सुधारकों, राजनीतिज्ञों एवं मनीषियों के साथ–साथ पाश्चात्य ज्ञान, विज्ञान एवं संस्कृति ने भी बहुत योगदान दिया है।

5. मनोविज्ञान का विकास (Development psychology)—मनोविज्ञान के विकास ने भी पाठ्यक्रम के निर्धारण में योगदान दिया है। मनोवैज्ञानिक प्रभाव के कारण ही बाल–केन्द्रित शिक्षा का जन्म हुआ है। मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति ने शिक्षा के उद्देश्यों, शिक्षा पद्धति, पाठ्यक्रम शिक्षा के संगठन, अनुशासन की अवधारणा, शिक्षा की भूमिका आदि सभी पक्षों को प्रभावित किया है। मनोविज्ञान के अध्ययन से यह ज्ञात करने का प्रयास किया जाता है कि शिक्षक छात्रों के साथ कैसा व्यवहार करते हैं तथा उनकी अधिगम तत्परता को ध्यान में रखते हुए अन्तर्वस्तु को किस रूप में व्यवस्थित करते हैं। विभिन्न नवीन शिक्षण विधियाँ भी मनोविज्ञान के सिद्धान्तों पर आधारित है। मनोविज्ञान के विकास के परिणामस्वरूप अनेक देशों में बालकों की आवश्यकताओं के आधार पर पाठ्यक्रम निर्माण का प्रयास किया गया है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में तो विकास आवश्यकता पाठ्यक्रम के रूप में एक नई दृष्टि

विकसित हुई है। इसके अन्तर्गत शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण बालकों के सामान्य विकास और उसे बल प्रदान करने वाली स्थितियों के लिए आवश्यक मनोवैज्ञानिक उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया जाता है।

6. दार्शनिक विचारधारा (Philosophical ideology)—पाठ्यक्रम के निर्धारण में दार्शनिक विचारधारा भी महत्वपूर्ण स्थान रखती है। दर्शन का संबंध जीवन मूल्यों से होता है। प्रत्येक व्यक्ति का अपना जीवन दर्शन होता है। जो देश–काल तथा परिस्थितियों के अनुसार बदलता रहता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दार्शनिक दृष्टिकोण का बहुत अधिक महत्व होता है। पाठ्यक्रम का मेरूदण्ड ही दर्शन है। पाठ्यक्रम में क्या पढ़ाया जाए और क्या न पढ़ाया जाए, इस प्रश्न का उत्तर व्यक्ति और समाज अपनी दार्शनिक मान्यताओं के अनुसार देता है। किसी विषय की उपयोगिता एवं अनुपयोगिता समाज तथा व्यक्ति के दर्शन के आधार पर ही निश्चित होती है। महान दार्शनिक **प्लेटो** ने कहानियों को न पढ़ाने की वकालत की थी, क्योंकि वे छात्रों को सत्य और केवल सत्य से परिचित कराना चाहते थे, जबकि महान शिक्षाशास्त्री **मैडम मारिया मॉन्टेसरी** ने कहानियों को बहुत उपयोगी बताया है।

7. शैक्षिक परिस्थितियाँ (Educational situations)—पाठ्यक्रम के निर्धारकों में शैक्षिक परिस्थितियों का भी विशेष महत्व होता है। पाठ्यक्रम को प्रभावित करने वाली शैक्षिक परिस्थितियों के आन्तरिक घटक विद्यालय की व्यवस्था संबंधी क्रियाओं पर प्रभाव डालते हैं तथा बाह्य घटक पाठ्यक्रम की बाह्य स्थितियों पर प्रभाव डालते हैं। **राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986** के अन्तर्गत माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा नवोदय, उच्च शिक्षा स्तर पर सेवारत् अध्यापक प्रशिक्षण, दूरवर्ती शिक्षा, आदि अनेक महत्वपूर्ण सुझाव दिए गए हैं। इन सुझावों को लागू भी किया गया है, जिससे नवीन परिस्थितियाँ भी उत्पन्न हुई हैं। पाठ्यक्रम का विकास करते समय शैक्षिक परिस्थितियों को भी ध्यान में रखना चाहिए।

8. विज्ञान एवं तकनीकी (Science and Technology)—विज्ञान एवं तकनीकी भी पाठ्यक्रम निर्धारकों में से एक प्रमुख है। विज्ञान तथा तकनीकी विकास के कारण आज बहुत से कार्यों के सम्पादन के लिए मनुष्य का स्थान मशीनों ने ले लिया है। अतः तकनीकी एवं व्यावसायिक विशेषज्ञों की आवश्यकता दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। दूसरी ओर अर्द्ध–कुशल तथा अशिक्षित व्यक्तियों में बेरोजगारी की समस्या बढ़ती जा रही है। इसके फलस्वरूप परम्परागत पाठ्यक्रम तकनीकी आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ है। अतः पाठ्यक्रम को निर्धारित करते समय विज्ञान एवं तकनीकी की आवश्यकता को ध्यान में रखना पड़ता है। विज्ञान एवं तकनीकी विकास के फलस्वरूप ही आज ऑनलाईन शिक्षा, दूरवर्ती शिक्षा, दूरदर्शन के माध्यम से शिक्षा प्रचलित हो गयी है। शिक्षा में कम्प्यूटर की उपयोगिता अत्यन्त बढ़ गयी है। साथ ही दृश्य–श्रव्य सामग्री के माध्यम से शिक्षा प्रदान की जाने लगी है। कठोर उपागमों का शिक्षा में काफी महत्व हो गया है। अतः पाठ्यक्रम भी उसी प्रकार निर्धारित हो रहा है।

9. नवीन विषयों का आविर्भाव (Origin of New subjects)—प्राचीन काल में शिक्षा केवल उच्च वर्ग तक सीमित थी। इस वर्ग को जीविकोपार्जन की कोई चिन्ता नहीं होती थी। वह अपने वर्गीय हितों को ध्यान में रखकर शिक्षा प्राप्त करता रहा। इस प्रकार पाठ्यक्रम भाषा साहित्य, ललित कलाओं और सामान्य शिष्टाचार पर केन्द्रित हो गया, किन्तु धीरे–धीरे शिक्षा का प्रसार मध्यम एवं निम्न वर्ग तक हुआ। मध्यम वर्ग को अपनी रोजी–रोटी की अधिक चिन्ता रहती थी। अतः पाठ्यक्रम में बौद्धिक विषयों के साथ–साथ व्यावसायिक विषयों को भी सम्मिलित कर लिया गया। अठ्ठारहवीं शताब्दी में

यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति ने पाठ्यक्रम में वैज्ञानिक और तकनीकी विषयों को शामिल करने पर बाध्य कर दिया। धीरे–धीरे व्यवसायों की संख्या बढ़ती चली गई। व्यवसायों की संख्या अधिक बढ़ने के कारण व्यवसाय विशेष में विशिष्टता प्राप्त करने की होड़ में अनुकूल विषयों के चयन की आवश्यकता महसूस हुई। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पाठ्यक्रम में विभिन्न विकल्पों तथा धाराओं की व्यवस्था हुई। छात्र अपनी योग्यताओं, क्षमताओं तथा रुचियों के अनुसार विषय का चयन कर सकें।

10. परीक्षा प्रणाली (Examination system)–पाठ्यक्रम के निर्धारकों में परीक्षा–प्रणाली का भी विशेष महत्व है। प्राचीन काल में परीक्षा निबन्धात्मक प्रकार से होती थी। अतः पाठ्यक्रम में ऐसे प्रकरण रखे जाते थे जिन पर निबन्धात्मक लिखित परीक्षा सम्पन्न कराई जा सके। वर्तमान समय में परीक्षा तथा मूल्यांकन के कई रूप सामने आये हैं, जिनमें वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं का विशेष महत्व है। ज्ञान को विस्तार देने के लिए तथा परीक्षा में सम्पूर्ण पाठ्यक्रम को स्थान देने के लिए वस्तुनिष्ठ परीक्षणों को अच्छा माना जाता है। वस्तुनिष्ठ परीक्षा प्रणाली में ज्ञान का तो आंकलन हो जाता है परन्तु छात्र की लिखित क्षमता, कल्पनाशीलता तथा चिन्तन–प्रणाली का उचित प्रकार से आंकलन नहीं हो पाता है। इस कमी को दूर करने के लिए परीक्षा प्रणाली में वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के साथ–साथ लघु उत्तरीय, अति लघु उत्तरीय तथा दीर्घ उत्तरीय प्रश्नों को भी परीक्षा में शामिल किया जाता है। इस प्रकार परीक्षा प्रणाली का स्वरूप बिल्कुल परिवर्तित हो गया है। इसमें पाठ्यवस्तु की प्रत्येक इकाई से प्रश्न पूछे जाते हैं तथा बहुत से प्रश्न पूछे जाते हैं जिससे छात्र को नक़ल का अवसर प्राप्त न हो सके। अतः पाठ्यक्रम निर्धारण में परीक्षा प्रणाली का भी महत्व है।

11. राजनैतिक विचारधारा (Political ideology)–पाठ्यक्रम के निर्धारकों में राजनैतिक विचारधारा का भी प्रभाव पड़ता है। समाज में विभिन्न राजनैतिक दल होते हैं। सभी के अपने सिद्धान्त होते हैं। सामाजिक व्यवस्था पर इसका प्रभाव पड़ता है। शिक्षा भी इनसे प्रभावित होती है। कोई दल धर्म निरपेक्षता पर बल देता है तो कोई दल, समाजवादी व्यवस्था का पोषण करता है। कोई दल बहुसंख्यक समाज की समस्याओं को महत्व देता है तो कोई दल अल्पसंख्यक समाज का हिमायती होता है। कुछ क्षेत्रीय दल भी होते हैं जो अपनी क्षेत्रीय समस्याओं की ओर लोगों का ध्यान खींचते हैं। इस प्रकार प्रत्येक दल अपने सिद्धान्तों का पोषण करने के लिए शिक्षा के पाठ्यक्रम को प्रभावित करता है। भारत में जहाँ बहुसंख्यक समाज के विचारों का पोषण करने वाले दल संस्कृत भाषा, प्राच्य भाषाओं तथा हिन्दी भाषा आदि को पाठ्यक्रम में अधिक स्थान देते हैं।

प्रश्न 4. पाठ्यक्रम विकास की आवश्यकता पर चर्चा कीजिए। **(ग्वालियर 2021)**

उत्तर–पाठ्यक्रम विकास की महत्व या आवश्यकता–पाठ्यक्रम के द्वारा ही शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती हैं, अतः शिक्षा नियोजन के लिए पाठ्यक्रम विकास आवश्यक है। इसकी आवश्यकता या महत्व निम्नलिखित हैं–

1. शिक्षा के उद्देश्य की प्राप्ति– शिक्षा की व्यवस्था पाठ्यक्रम पर आधारित होती है। जब तक पाठ्यक्रम का सही नियोजन नहीं किया जाता तब तक शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं हो सकती, क्योंकि पाठ्यक्रम का स्वरूप शिक्षा के उद्देश्यों के अनुसार निर्मित होता है।

2. शिक्षा प्रक्रिया का व्यवस्थीकरण– पाठ्यक्रम एक ऐसा लेखा–जोखा है जिसमें यह स्पष्ट रूप से अंकित किया जाता है कि शिक्षा के किस जीवन स्तर पर, विद्यालयों में कौन–सी क्रियाओं की तथा कौन–से विषयों की शिक्षा दी जायेगी। इस प्रकार पाठ्यक्रम विद्यालयी कार्यक्रम की रूपरेखा बनाता है या शिक्षा की प्रक्रिया को व्यवस्थित करता है।

3. क्या और कैसा ज्ञान– पाठ्यक्रम अध्यापकों के लिए अत्यंत उपयोगी है। इसके बिना वे यह नहीं जान सकते कि उन्हें क्या और कितना ज्ञान बालकों को देना है। पाठ्यक्रम के आधार पर ही ठीक प्रकार से काम करते हैं और उन्हें यह मालूम रहता है कि एक निश्चित अवधि के अंदर उन्हें अमुक कक्षा में कितना कार्य समाप्त करना है।

4. समय एवं शक्ति का प्रयोग– पाठ्यक्रम से अध्यापकों को यह ज्ञात रहता है की उन्हें क्या सिखाना है और कितने समय में सिखाना है ? इसी प्रकार छात्रों को भी यह ज्ञात रहता है कि उन्हें क्या सिखना है और कितने समय में सिखना है ? इस प्रकार शिक्षा और छात्र दोनों ही एक निश्चित अवधि के अंदर कार्य पूरा करते हैं। अतः इसके द्वारा समय एवं शक्ति का सदुपयोग होता है।

5. ज्ञानोपार्जन– ज्ञानोपार्जन करने में पाठ्यक्रम बालकों की सहायता करता है। यह सही है कि ज्ञान एक है, परन्तु मनुष्य ने अपनी सुविधा के लिए उसके कई भाग कर लिए हैं। **जैसे**–साहित्य, गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान इत्यादि। ज्ञान के इन विभिन्न भागों के ज्ञानार्थ पाठ्यक्रम की रचना की जाती है।

6. चारित्रिक विकास–चारित्रिक विकास की दृष्टि से शिक्षा इस बात पर बल देती है कि बालकों के अंदर मानवीय गुण; **जैसे**–सत्य, सेवा, त्याग, परोपकार, सद्भावना इत्यादि उत्पन्न किये जाये। यह कार्य पाठ्यक्रम के द्वारा ही पूर्ण होता है। इन गुणों को विकसित करके इन्हीं के अनुसार बालकों से आचरण करवाना पाठ्यक्रम का उद्देश्य है।

7. व्यक्तित्व का विकास–बालकों के व्यक्तित्व के विकास की दृष्टि से भी पाठ्यक्रम एक उपयोगी वस्तु है। बालक के नैसर्गिक गुणों तथा शक्तियों को समुचित तथा उपयुक्त दिशा में विकसित करना पाठ्यक्रम का ही कार्य है। बिना नैसर्गिक गुणों एवं शक्तियों के विकास के व्यक्ति का समुचित विकास संभव नहीं है।

8. पाठ्य–पुस्तकों का निर्माण–पाठ्यक्रम के आधार पर ही पाठ्य–पुस्तकों की रचना की जाती है। पाठ्य–पुस्तकों में वही सामग्री रखी जाती है जो किसी स्तर के पाठ्यक्रम के अनुकूल हो। पाठ्यक्रम न होने पर पुस्तकों में अनावश्यक बातें भी सम्मिलित हो सकती है। पाठ्यक्रम इस स्थिति से हमारी रक्षा करता है।

9. मूल्यांकन में सरलता–किसी कक्षा स्तर के पाठ्यक्रम के आधार पर ही उस कक्षा के छात्रों की योग्यता का मूल्यांकन संभव होता है। पाठ्यक्रम के अभाव में मूल्यांकन कठिन होगा।

10. नागरिकों का निर्माण–शिक्षा का उद्देश्य उपयोगी एवं आदर्श नागरिकों का निर्माण करना है। आदर्श एवं उपयोगी नागरिक वही है जिसकी शक्तियाँ पूर्णरूप से विकसित हों, जो कानून का पालन करे, न्यायानुकूल आचरण करें और जिसमें स्वतंत्र चिन्तन और निर्माण की शक्तियाँ शामिल हों, इन बातों की क्षमता एवं योग्यता उत्पन्न करने के लिए ही पाठ्यक्रम का निर्माण होता है।

11. अन्वेषकों की उत्पत्ति–पाठ्यक्रम ऐसे ज्ञान पिपासुओं तथा विद्वानों को जन्म देता है जो अध्ययन, उद्योग एवं शोधकार्य तथा ज्ञान में वृद्धि करते हैं। सामाजिक परिवर्तन के साथ समस्याओं के लिए शोध अध्ययनों की आवश्यकता है।

प्रश्न 5. पाठ्यक्रम विकास के उद्देश्यों को लिखिए। **(भोपाल 2022)**

उत्तर–पाठ्यक्रम विकास के उद्देश्य–सामान्य तौर पर पाठ्यक्रम विकास के उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. छात्रों का सर्वांगीण विकास करना–पाठ्यक्रम का प्रथम व सर्वप्रमुख उद्देश्य बालक के व्यक्तित्व के समस्त पहलुओं, जैसे– शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक, व्यावसायिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विकास करना है।

2. सभ्यता व संस्कृति का हस्तांतरण तथा विकास करना—पाठ्यक्रम मनुष्य की सभ्यता व अनमोल संस्कृति को सुरक्षित रखकर उसे आगामी पीढ़ी को हस्तांतरित करता है। इस प्रकार मानव सभ्यता व संस्कृति की रक्षा तथा उसके हस्तांतरण का विकास करना भी पाठ्यक्रम का उद्देश्य है।

3. बालक का नैतिक व चारित्रिक विकास करना—पाठ्यक्रम के माध्यम से बालक में सहानुभूति, सहयोग, सहनशीलता, सद्भावना, अनुशासन, मित्रता, निष्कपटता व ईमानदारी जैसे उच्च नैतिक गुणों का विकास किया जाता है। जिससे बालक एक श्रेष्ठ नागरिक बन सके। इस प्रकार पाठ्यक्रम का एक प्रमुख उद्देश्य बालक का नैतिक व चारित्रिक विकास करना भी है।

4. बालक की मानसिक शक्तियों का विकास करना—पाठ्यक्रम का एक उद्देश्य बालक की विभिन्न प्रकार की मानसिक शक्तियों तथा चिंतन–मनन को विवेक, निर्णय, स्मरण आदि का समुचित विकास करना भी होता है। इसी प्रकार बालक के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास होता है।

5. बालक की रचनात्मक व सृजनात्मक शक्तियों का विकास करना—पाठ्यक्रम के अंतर्गत आने वाले विषयों एवं खेलकूद व अन्य पाठ्येत्तर क्रियाकलापों को आयोजित करने का उद्देश्य बालक में निहित सृजन व निर्माण की शक्तियों को जगाना होता है।

6. बालक में गतिशील व लचीले मस्तिष्क का निर्माण करना—कहा गया है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है। इसमें स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण भी शिक्षा द्वारा ही किया जा सकता है। वस्तुतः पाठ्यक्रम विभिन्न विज्ञानों, सामाजिक विषयों व अन्य क्रियाओं के द्वारा मस्तिष्क की गतिशीलता व लचीलापन की वृद्धि करने में सहायक होता है।

7. खोज की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना—पाठ्यक्रम बालकों को विभिन्न प्रकार का गहन ज्ञान प्रदान करके उनमें उत्सुकता व जिज्ञासा की प्रवृत्ति बढ़ाता है, जिससे बालक अधिकारिक ज्ञान प्राप्ति का प्रयास करें। इस प्रकार बालक में खोजी व अनुसंधान के प्रवृत्ति को बढ़ाना भी पाठ्यक्रम के मुख्य उद्देश्य में आता है।

8. बालक को भावी जीवन के लिए तैयार करना—शिक्षा संपूर्ण जीवन की तैयारी है तथा पाठ्यक्रम बालकों को उनके भावी जीवन के लिए तैयार करता है। पाठ्यक्रम विषयवार क्रियाओं के मध्य सामान्य व सामंजस्य स्थापित करके बालकों को शारीरिक, मानसिक व सर्वांगीण विकास करने का प्रयत्न करता है, ताकि बालक का संतुलित विकास हो सके और वह अपने भावी जीवन में सफल मनुष्य बनकर उभर सके।

9. शैक्षिक प्रक्रिया का स्वरूप निर्धारित करना—पाठ्यक्रम का उत्तरदायित्व बालक के प्रति होने के साथ–साथ संपूर्ण शिक्षा प्रक्रिया की ओर भी है। पाठ्यक्रम शिक्षण क्रियाओं व शिक्षक के मध्य की अंतःक्रिया को स्पष्ट करता है। साथी, शिक्षक व शिक्षार्थी के मध्य किस प्रकार के अंतःक्रिया हो, इसका स्वरूप भी निर्धारित करता है।

10. बालकों की क्षमता, योग्यता व रुचि का विकास करना—पाठ्यक्रम का एक विशेष उद्देश्य बालकों को सुषुप्त क्षमताओं एवं योग्यताओं का विकास करना होता है। साथ ही वह बालकों की विभिन्न प्रकार की सूचियों को भी प्रोत्साहित करता है।

11. बालकों में लोकतांत्रिक भावना का विकास करना—पाठ्यक्रम का एक अन्य प्रमुख उद्देश्य छात्रों को सामाजिकता एवं सुनागरिकता का प्रशिक्षण देकर उनमें लोकतांत्रिक भावना का विकास करना है, ताकि बालक स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व अथवा उदारता के मूल्यों को आत्मसात् करके अपने समाज व देश का विकास कर सके।

इस प्रकार पाठ्यक्रम विकास के उद्देश्य के कारण पाठ्यक्रम का शैक्षिक प्रक्रिया में एक विशेष स्थान है। इन्हीं कारणों से पाठ्यक्रम की आवश्यकता होती है तथा यह ही वे महत्वपूर्ण कार्य हैं जिन्हें पाठ्यक्रम संपन्न करता है।

प्रश्न 6. समयानुसार पाठ्क्रम में संशोधन क्यों आवश्यक है ? **(ग्वालियर 2022)**

उत्तर–पाठ्यक्रम को एक बार तैयार तथा लागू कर देने का यह अर्थ कदापि नहीं है कि यह अब सर्वोचित है तथा अब हमें इसके बारे में विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है, अन्यथा यह सदैव विकासशील और संशोधनशील अवस्था में रहता है। यह एक वृद्धिशील तथा निरंतर प्रगतिशील प्रक्रिया है। विद्यालय वे प्रयोगशालाएँ हैं जहाँ पाठ्यक्रम को प्रयोग किया जाता है, अभ्यास में लाया जाता है तथा फिर विकसित अथवा संशोधित किया जाता है। तत्पश्चात् पाठ्यक्रम के संशोधित और विकसित रूप को पुनः प्रयोग में लाया जाता है तथा फिर वही पूर्ण चरण अभ्यास, व्याख्या, सैद्धांतिकरण आदि की पुनरावृत्ति की जाती है। वास्तव में, विद्यालयों को ऐसी प्रयोगशालाओं के समान कार्य करने योग्य बनाये जाने की आवश्यकता है जहाँ सर्वाधिक उपयुक्त प्रकार का पाठ्यक्रम विकसित किया जा सके। विद्यालयों को नियमित रूप से अपनी स्टाफ बैठकों के दौरान इन प्रश्नों पर विचार–विमर्श करना चाहिए–

(1) क्या पाठ्यक्रम विद्यालय अथवा कक्ष के उन सभी प्रकार के विद्यार्थियों के लिए सही है जहाँ इसे लागू किया गया है।

(2) क्या पाठ्यक्रम निश्चित रूप से उन लोगों के मूलभूत दर्शन के अनुसार है जिनके बच्चे उस विद्यालय में पढ़ते हैं।

(3) क्या पाठ्यक्रम शिक्षार्थियों की वर्तमान तथा भविष्यवर्ती रुचियों, आवश्यकताओं को ध्यान में रखता है।

(4) क्या पाठ्यक्रम विद्यार्थियों में उचित प्रकार के दृष्टिकोणों के विकास में सहायता करता है।

(5) क्या पाठ्यक्रम विद्यार्थियों में उन वांछित कौशलों के विकास में सहायता करता है जिनकी उन्हें अपने जीवन को सरल तथा सफल बनाने के लिए आवश्यकता है।

(6) क्या पाठ्यक्रम सफल, लोकतांत्रिक नागरिक बनने में विद्यार्थियों की सहायता करेगा?

(7) विद्यार्थियों तथा शिक्षकों के साथ संबंधित समस्याओं की खुले रूप से चर्चा करना तथा उन्हें उनके समाधान हेतु प्रेरित करना।

इस आधार पर कहा जा सकता है कि समय–समय पर पाठ्यक्रम में संशोधन आवश्यक है।

प्रश्न 7. पाठ्यक्रम मूल्यांकन के आधार कौन–कौन से हैं ? **(ग्वालियर 2022)**

उत्तर–पाठ्यचर्या मूल्यांकन उन कार्यक्रमों, प्रक्रियाओं और पाठ्यचर्या उत्पादों का मूल्यांकन है जो संसाधन है, लोग नहीं (ओलिवा, 2009)। पाठ्यक्रम निर्देश प्रक्रिया के मूल्यांकन के दो भाग हैं। पहला–विद्यार्थियों का मूल्यांकन है। (अक्सर मानकों को पूरा करने में) जो निर्देश से पहले, उसके दौरान और बाद में होता है। सवाल यह है कि क्या उद्देश्य पूरे हो गये ? शिक्षक यह देखने के लिए विद्यार्थी मूल्यांकन डेटा का विश्लेषण करते हैं कि कितने विद्यार्थियों ने उद्देश्यों को पूरा किया है या नहीं, और प्रदर्शन किस स्तर पर है। दूसरा मार्गदर्शकों और संसाधनों और प्रशिक्षक या शिक्षक की प्रभावशीलता का मूल्यांकन है। यह अकसर समूहों में और एक निश्चित अवधि में किया जाता है।

मूल्यांकन किसी कार्यक्रम के महत्व को स्थापित करने और परियोजना को जारी रखने, रोकने या संशोधित करने के बारे में निर्णय लेनें में मदद करता है।

इस प्रकार, पाठ्यक्रम मूल्यांकन किसी कार्यक्रम की गुणवत्ता, प्रभावशीलता और योग्यता का आकलन करने के लिए व्यवस्थित रूप से डेटा एकत्र करने की प्रक्रिया को संदर्भित करता है।

मूल्यांकन निम्नलिखित उद्देश्यों को पूरा करता है–

1. व्यक्तिगत छात्र प्रगति उद्देश्य–विद्यार्थियों ने क्या सीखा है। कक्षा में विद्यार्थी की स्थिति का पता लगाएँ तथा बच्चे को कहाँ सहायता की आवश्यकता है और सहायता की प्रकृति कैसी है।

2. कक्षा के उद्देश्य–शिक्षण की प्रभावशीलता निर्धारित करने में उपयोगी विधियाँ और गति–विधियाँ प्रासंगिक और व्यावहारिक है।

3. पाठ्यचर्या सामग्री के उद्देश्य–क्या वे प्रासंगिक, उपयोगी, उपयुक्त और किफायती है।

4. स्कूल व्यापी उद्देश्य–संस्था की समग्र प्रभावशीलता का आकलन करें। पूरे स्कूल में सीखने के उन क्षेत्रों को उजागर करें जिन पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

5. समुदाय–पाठ्यक्रम और पाठ्यक्रम विकास प्रक्रिया के प्रति समुदाय का दृष्टिकोण और इनपुट क्या है ?

अनिवार्य रूप से, मूल्यांकन यह सुनिश्चित करता है कि शुरुआती चरण में ही ताकत और कमजोरियों का पता चल जाए, जिससे कार्यक्रम की सफलता की संभावना को बढ़ाने के लिए समय, संसाधनों और हताशा की बचत होती है।

पाठ्यक्रम मूल्यांकन के मानदंड और आधार क्या है इस पर पाठ्यचर्या साहित्य में विभिन्न प्रकार के प्रस्ताव हैं। पाठ्यक्रम मूल्यांकन को किसी परियोजना के उद्देश्यों के साथ मूल्यांकन की स्थिरता से आँका जा सकता है, व्यापकता, वैधता और विश्वसनीयता और निरंतरता।

व्यापकता–पाठ्यक्रम के सभी उद्देश्यों का मूल्यांकन किया जाता है। अकसर तथ्यों के स्मरण के माध्यम से केवल संज्ञानात्मक डोमेन का परीक्षण किया जाता है। व्यापकता का परीक्षण करने के लिए कोई शिक्षा प्रणालियों के व्यापक प्रशासनिक और सामान्य पहलुओं का मूल्यांकन कर सकता है ताकि यह पता लगाया जा सके कि शिक्षा प्रणाली कितनी अच्छी है और कार्यक्रम कितना प्रासंगिक है।

वैधता–यह मानदंड इस प्रश्न का उत्तर देता है, ''क्या उपयोग किए गए मूल्यांकन उपकरण (जैसे–परीक्षा और परीक्षण) उस कार्य के मापते हैं जिसे वे मापने का इरादा रखते हैं ?''

विश्वसनीयता–विश्वसनीयता समय के संबंध में स्थिरता का माप प्रदान करती है। (यानि विश्वसनीय उपकरण अलग–अलग समय पर प्रशासित होने पर समान परिणाम देते हैं।)

निरंतरता–मूल्यांकन एक सतत् प्रक्रिया है, पाठ्यक्रम विकास प्रक्रिया और कक्षा निर्देश का एक अभिन्न अंग। इसलिए, सुधारात्मक कार्रवाई के लिए कमजोरियों और शक्तियों पर निरंतर प्रतिक्रिया प्रदान करना।

व्यापक रूप से साझा मूल्यांकन मानदंडों का एक ओर से जो किसी भी क्षेत्र में लागू होता है, प्रासंगिकता, क्षमता, प्रभावशीलता, प्रभाव और वहनीयता है।

प्रासंगिकता–प्रासंगिकता दूसरों के साथ हस्तक्षेप या कार्यक्रम के मूल्य को इंगित करती है। हितधारक की आवश्यकताएँ, राज्य और राष्ट्रीय प्राथमिकताएँ, विकास लक्ष्यों सहित अंतर्राष्ट्रीय भागीदारी की नीतियाँ।

क्षमता–दक्षता इस प्रश्न का उत्तर देती है, ''क्या कार्यक्रम अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए संसाधनों का सबसे प्रभावी तरीके से उपयोग करता है।''

प्रभावशीलता–प्रभावशीलता इस प्रश्न से संबंधित है, क्या गतिविधि बताए गए उद्देश्यों के संबंध में संतोषजनक परिणाम प्राप्त कर रही है।

प्रभाव—प्रभाव व्यक्तियों, संस्थानों और समुदायों पर सामाजिक आर्थिक और पर्यावरणीय प्रभावों सहित हस्तक्षेप के परिणामों (इच्छित और अनेपक्षित, सकारात्मक और नकारात्मक) पर केन्द्रित है।

वहनीयता—शिक्षा वह तरीका प्रदान करती है जिससे प्रत्येक पीढ़ी अपनी संस्कृति, खोजों, सफलताओं और असफलताओं को अगली पीढ़ी तक पहुँचाती है। यदि पर्याप्त पीढ़ीगत शिक्षा नहीं है, तो ज्ञान और उपलब्धियाँ कायम नहीं रह सकती। शिक्षा समुदायों, राष्ट्रों और विश्व स्तर पर विचारों, ज्ञान, कौशल और मूल्यों को तैयार करने, चुनौती देने और प्रसारित करने की नींव है।

प्रश्न 8. बी.एड. पाठ्यक्रम के व्यावसायीकरण से आप क्या समझते हैं ?(छतरपुर 2022)

उत्तर— पाठ्यक्रम व्यावसायीकरण का अर्थ—किसी व्यवसाय में प्रशिक्षण जिससे विद्यार्थी अपना जीवन–यापन सरलता से कर सके।

विस्तृत अर्थ में–शिक्षा के साथ ही उन व्यवस्थाओं का होना जिससे विद्यार्थी किसी व्यवसाय में कुशलता हासिल कर सके। कोठारी कमीशन के अनुसार व्यावसायीकरण से तात्पर्य है कि हम यह देखते हैं कि भविष्य की विद्यालयीन शिक्षा का स्थान साधारण शिक्षा व तकनीक शिक्षा के लाभप्रद संयोग में है, जिसमें पूर्व तकनीक शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा के कुछ हिस्से शामिल हैं और परिणामस्वरूप सामान्य शिक्षा का तत्व आ जाता है। हम जिस प्रकार के समाज में रह रहे हैं, उसमें इन दोनों प्रकार की शिक्षा को अलग–अलग करना अनुचित ही नहीं अपितु संभव नहीं होगा।

शिक्षा में व्यावसायीकरण का अर्थ विद्यार्थी की उस कुशलता या निपुणता से है जो उसे अन्य विषयों के साथ शिक्षा माध्यम से प्राप्त होती है।

पाठ्यक्रम व्यावसायीकरण की आवश्यकता—पाठ्यक्रम व्यावसायीकरण की आवश्यकता निम्नलिखित हैं—

(1) आर्थिक विकास के लिए,
(2) बेरोजगारी की समस्या हल करने के लिए,
(3) विद्यार्थियों की योग्यताओं, रुचियों तथा गुणों को प्रशस्त करने के लिए,
(4) आत्मसंतुष्टि के लिए,
(5) नैतिक तथा सांस्कृतिक विकास के लिए,
(6) बौद्धिक विस्तार के लिए,
(7) शिक्षा–प्रक्रिया को उद्देश्यपूर्ण बनाना।

व्यावसायिक शिक्षा के उद्देश्य—व्यावसायिक शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य निश्चित किए गए थे—

(1) कमाते हुए सीखना।
(2) सामाजिक क्रियाकलापों द्वारा सीखना।
(3) आर्थिक रूप से सुसंगत तकनीक कौशल सीखना।
(4) ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत् तकनीकी एवं व्यावसायिक संस्थाओं में नई सुविधाओं की व्यवस्था पर जोर देना।
(5) मानवीय श्रम की गरिमा समझाना।
(6) रोजगार मुख्य रूप से स्वयं रोजगार के अवसरों के प्रति उच्च शिक्षा प्रदान करना।

पाठ्यक्रम व्यावसायीकरण की विशेषताएँ—पाठ्यक्रम व्यावसायीकरण की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

(1) यह सामाजिक कार्यों में योगदान देने हेतु तैयार करती है।

(2) यह जीविकोपार्जन बनाने के लिए उनमें व्यावसायिक कौशल की प्रवृत्ति का विकास करती है।

(3) इससे वह अपने सामाजिक एवं पारिवारिक उत्तरदायित्व से परिचित हो जाते हैं।

(4) व्यावसायिक शिक्षा द्वारा शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य को मूर्त रूप प्रदान किया जाता है।

प्रश्न 9. शिक्षक शिक्षा के वर्तमान पाठ्यक्रम का मूल्यांकन कीजिए। (छतरपुर 2022)

उत्तर–शिक्षक शिक्षा हेतु पाठ्यक्रम–आज के शिक्षक को यह स्पष्ट नहीं है कि विद्यालय में उसको क्या भूमिका निर्वाह करना है। यद्यपि उसे समाज–सुधारक का शिल्पी एवं सामाजिक संरचना में वांछित परिवर्तन लाने वाला कहा जाता है। हमारे संविधान में सबको बराबर शिक्षा में समान अधिकार प्राप्त करने की बात स्पष्ट नहीं है और इसके लिए हमें अपने प्रशिक्षण कॉलेजों में शिक्षकों को इस बात की जानकारी देनी होगी, जिससे कि सम्पूर्ण समाज को संविधान में दिए गए प्रावधानों का उचित लाभ मिल सके।

शिक्षक शिक्षा के पाठ्यक्रम का मूल्यांकन–किसी भी संस्थान से आए हुए शिक्षकों की क्षमता उस शिक्षण संस्थान द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम पर निर्भर करती है। शिक्षक शिक्षा महाविद्यालयों के पाठ्यक्रमों के बारे में कई स्रोतों से शिकायत मिल रही है। शिक्षक शिक्षा पर समकालीन साहित्य में की गयी आलोचनाओं से निम्नलिखित बुराइयाँ सामने आती हैं–

(1) शिक्षक–शिक्षा–कार्यक्रम अल्प समय के लिए होता है।

(2) शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रम में शिक्षा की विधि पर अधिक बल दिया जाता है और विषय–वस्तु के ज्ञान पर ध्यान नहीं दिया जाता है।

(3) शिक्षक शिक्षा के अंतर्गत अभ्यास और सिद्धांत में कोई संबंध नहीं है।

(4) इस पाठ्यक्रम का स्वरूप भारतीय संस्थानों के अनुरूप नहीं है।

(5) शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रम व इसके प्रशिक्षण का ढंग पुराना हो चुका है।

(6) यह आधुनिक शिक्षा पर आधारित व लोचपूर्ण नहीं है।

(7) इसका संबंध विद्यालयों व समाज की वास्तविक आवश्यकताओं से संबंधित नहीं है।

(8) इसके प्रयोगात्मक कार्य अपूर्ण तथा अव्यावहारिक हैं।

(9) अधिकतर अध्यापकीय महाविद्यालयों का प्रशिक्षण वर्ग पूरी तरह से परिपक्व नहीं है।

शिक्षक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य शिक्षक कौशलों को विकसित करने और शिक्षकों में मूलभूत सिद्धांतों तथा सही अभिवृत्तियों को विकसित करना है। लेकिन यह सभी प्रारूप किसी मुख्य दृष्टिकोण से बनाये गए शिक्षक शिक्षा सिद्धांत पर आधारित नहीं है जो भारत की दशा से मेल नहीं खाते हैं। ये भारत के पुराने शिक्षक शिक्षा में आंशिक रूप से समायोजित किए गए हैं।

प्रश्न 10. पाठ्यचर्या में परिवर्तन की परिस्थितियों का चित्रण कीजिए। (भोपाल 2022)

उत्तर–शिक्षा ज्ञान प्रदान करने, कौशलों का विकास करने तथा समुचित अभिरुचियों, अभिवृत्तियों एवं मूल्यों का प्रतिपादन करने की एक त्रिपदीय प्रक्रिया है। हमारे विद्यालयों का संबंध शिक्षा–प्रक्रिया के प्रथम पद अर्थात् ज्ञान प्रदान करने तक ही सीमित है तथा यह कार्य भी संतोषजनक ढंग से संपन्न नहीं किया जा रहा है। भारतीय विद्यालयों की पाठ्यचर्या पुस्तकीय ज्ञान पर अधिक बल देता है तथा इसमें व्यावहारिक क्रियाओं एवं अनुभवों को कम महत्व प्रदान किया जाता है।

समय के साथ–साथ पाठ्यक्रम में परिवर्तन अनिवार्य होते हैं। ये परिवर्तन समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। अतः यह स्पष्ट होता है कि पाठ्यचर्या एक विद्यालय का वह साधन है जिसको हर छात्र को अपने उद्देश्यों की पूर्ति व विकास के लिए अपनाना ही पड़ता है।

पाठ्यचर्या को प्रभावित करने वाली परिस्थिति—पाठ्यचर्या को प्रभावित करने वाली परिस्थिति निम्नलिखित हैं—

(1) सामाजिक, आर्थिक एवं जनसंख्यात्मक शक्तियाँ—सामाजिक, आर्थिक एवं जनसंख्यात्मक शक्तियाँ करोड़ों ग्रामीण परिवारों, अल्पसंख्यक जातियों तथा सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़े हुए लोगों के जीवन को अनेक प्रकार से अस्त-व्यस्त करती रही है। मिश्रित संस्कृतियों एवं उप संस्कृतियों के उदय तथा उनकी सत्ता में भागीदारी की अपेक्षाओं के परिणामस्वरूप अनेक गंभीर सामाजिक शैक्षिक संघर्ष उत्पन्न हो जाते हैं। इसी प्रकार अल्पसंख्यकों की आवश्यकताओं, अपेक्षाओं एवं मूल्यों और विश्वास के कारण भी शिक्षा के नीति निर्धारकों को पाठ्यचर्या में समाविष्ट करना आवश्यक हो जाता है।

(2) तकनीकी प्रगति—तकनीकी विकास के फलस्वरूप अनेक कार्यों के संपादन हेतु मनुष्य का स्थान मशीनों ने ले लिया है जिससे एक तरफ तो तकनीकी एवं व्यावसायिक विशेषज्ञता के प्रशिक्षण की आवश्यकता बढ़ती जा रही है। अतः क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर पाठ्यचर्या में व्यापक परिवर्तन की आवश्यकता होती है।

(3) राजनैतिक शक्तियाँ—किसी भी देश की राजनैतिक व्यवस्था का वहाँ की शिक्षा व्यवस्था पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। शिक्षा के लिए धन की व्यवस्था प्रायः वहाँ की सरकारों द्वारा ही किया जाता है। अतः शिक्षा राज्य के नियंत्रण में ही रहती है। अवसरों की समानता प्रजातांत्रिक व्यवस्था का एक प्रमुख सिद्धांत है। अतः सभी के लिए शैक्षिक अवसरों की समानता वर्तमान समय में एक प्रमुख प्रश्न है। शिक्षा से वंचित वर्गों एवं क्षेत्रों के जन-प्रतिनिधियों द्वारा सभी के लिए शिक्षा हेतु निरंतर दबाव डाला जा रहा है। इसके लिए पाठ्यचर्या में परिवर्तन की आवश्यकता हो जाती है। इस प्रकार राजनैतिक शक्तियाँ पाठ्यक्रम परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

(4) ज्ञान में तीव्र वृद्धि—मानव ज्ञान में अप्रत्याशित गति से निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। विज्ञान एवं गणित में तो यह वृद्धि सर्वाधिक गति से हो रही है। सामाजिक विषयों में प्रतिवर्ष नवीन अन्तर्वस्तु का समावेश होता जा रहा है। मानवीय ज्ञान-कोष में वृद्धि एवं उसकी बढ़ती हुई आवश्यकताओं के परिणामस्वरूप अनेक नये विषयों का आविर्भाव भी होता जा रहा है। इससे यह चुनौती समाने आयी है कि बच्चों को ये कैसे और क्या पढ़ाया जाये। अतः शिक्षकों की योग्यता को ध्यान में रखते हुये पाठ्यचर्या में ऐसे बदलाव की आवश्यकता है जिससे उस शाला को छात्रों तक सुविधाजनक ढंग से सम्प्रेषित किया जा सके।

(5) शैक्षिक शोध—शैक्षिक शोधों के निष्कर्ष के आधार पर नवीन पाठ्यचर्या सिद्धांतों का प्रतिपादिन भी पाठ्यचर्या परिवर्तन का एक कारक होता है। शोधों पर आधारित पाठ्यचर्या सिद्धांतों में पाठ्यचर्या को परिवर्तन को थोड़ा ही प्रभावित किया है। शोधों के द्वारा ही पाठ्यचर्या परिवर्तन की सार्थकता का समुचित विश्लेषण एवं मूल्यांकन भी किया जाता है।

इसके अतिरिक्त कुछ लोग उत्तरदायित्व को भी पाठ्यचर्या परिवर्तन की एक शक्ति के रूप में मानते हैं। उत्तरदायित्व से तात्पर्य कार्यक्रम के नियोजन, आर्थिक व्यवस्था, क्रियान्वयन एवं संसाधनों के उपयोग के मूल्यांकन के प्रति जिम्मेदारी से है।

प्रश्न 11. बी.एड. पाठ्यक्रम और पाठ्यचर्या का मूल्यांकन कीजिए। **(भोपाल 2022)**

उत्तर—पाठ्यक्रम किसी भी विषय की वह संपूर्ण सामग्री होती है जिसके माध्यम से किसी भी क्षेत्र की संपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। पाठ्यक्रम वह साधन है जिसके द्वारा शिक्षा एवं जीवन के लक्ष्यों की प्राप्ति आसानी से की जा सकती है। पाठ्यक्रम शिक्षा पद्धति का एक महत्वपूर्ण अंग माना जाता है जिसके द्वारा शिक्षार्थी के व्यक्तित्व का विकास होता है। केवल इतना ही नहीं एक बेहतर पाठ्यक्रम की सहायता से विद्यार्थियों को जीवन का अनुभव एवं ज्ञान प्राप्त करने के कई अवसर प्राप्त होते हैं।

जो विषयवस्तु पढ़ने अथवा सीखने योग्य होती है उसे पाठ्यचर्या के नाम से जाना जाता है। पाठ्यचर्या शब्द पाठ्य एवं चर्या शब्द से मिलकर बना है जिसका अर्थ होता है पढ़ने योग्य या पढ़ाने योग्य। शिक्षा के क्षेत्र में पाठ्यचर्या का नियमपूर्वक अनुसरण किया जाता है। इसमें उन सभी क्रियाओं को शामिल किया जाता है जिसकी सहायता से एक विद्यालय में शिक्षार्थियों को संपूर्ण शिक्षा प्रदान की जाती है। यह विभिन्न शिक्षा के अंतर्गत आने वाले शिक्षा व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु होता है। पाठ्यचर्या वह साधन होता है जिसके माध्यम से छात्र और अध्यापक के बीच एक संबंध स्थापित होता है। एवं इसकी सहायता से ही शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति की जाती है। एक अध्यापक पाठ्यचर्या की सहायता से छात्रों को शारीरिक, मानसिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक एवं नैतिक विकास के लिए प्रेरित करता है। अतः पाठ्यचर्या की मदद से ही विद्यार्थियों का जीवन व्यतीत करने की शिक्षा प्राप्त होती है।

पाठ्यक्रम और पाठ्यचर्या में अंतर—पाठ्यक्रम की प्रकृति वर्णात्मक होती है जबकि पाठ्यचर्या की प्रकृति निर्देशात्मक होती है। पाठ्यक्रम का क्षेत्र संकुचित या छोटा होता है परन्तु पाठ्यचर्या का क्षेत्र व्यापक एवं विस्तृत होता है। पाठ्यक्रम किसी विषयवस्तु का केवल एक क्रम मात्र होता है जबकि पाठ्यचर्या संपूर्ण विद्यालय जीवन की एक चर्चा होता है। पाठ्यक्रम के माध्यम से विद्यार्थियों के ज्ञानात्मक पक्ष का विकास होता है जबकि पाठ्यचर्या के माध्यम से छात्रों का सर्वांगीण विकास होता है। पाठ्यक्रम में पाठ्यचर्या का केवल एक अंग मौजूद होता है परन्तु पाठ्यचर्या में संपूर्ण पाठ्यक्रम के साथ–साथ शिक्षण संस्थानों की अन्य क्रियाएँ भी शामिल होती हैं। पाठ्यक्रम का निर्माण शिक्षार्थियों की रुचि, क्षमता एवं ज्ञान को ध्यान में रखकर किया जाता है जबकि पाठ्यचर्या का निर्माण समाज एवं देश की आवश्यकता को ध्यान में रखकर किया जाता है। पाठ्यक्रम उपलब्धियों का मापन किया जा सकता है परन्तु पाठ्यचर्या में उपलब्धियों का मापन नहीं किया जा सकता। पाठ्यक्रम का निर्धारण शिक्षा संस्थानों के वरिष्ठ अधिकारियों एवं परीक्षा समिति के द्वारा किया जाता है परन्तु पाठ्यचर्या का निर्धारण विश्वविद्यालय, संस्थानों एवं विद्यालयों के द्वारा किया जाता है। पाठ्यक्रम मुख्य रूप से बाल केंद्रित होता है जबकि पाठ्यचर्या समाज केंद्रित होता है। पाठ्यक्रम का संबंध केवल शिक्षक एवं विद्यार्थियों से होता है परन्तु पाठ्यचर्या का संबंध शिक्षक एवं विद्यार्थियों के साथ–साथ अन्य से भी होता है।

बी.एड. में पाठ्यचर्या का मूल्यांकन—एक कुशल व दक्ष शिक्षक की शिक्षा में उपाधि की पाठ्यचर्या ऐसी होनी चाहिए जो उसमें बालक के विकास और उसके मनोविज्ञान के ज्ञान, विभिन्न शिक्षण कौशलों तथा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में कुशलता, पाठ्य सहगामी क्रियाओं के आयोजन में दक्षता, निर्देशन–मार्गदर्शन, सेवाओं तथा मापन मूल्यांकन की विधियों में प्रवीणता नवीन शिक्षण व तकनीकी तथा अपने द्वारा पढ़ाए जाने वाले विषय के सैद्धांतिक तथा शिक्षा शास्त्रीय ज्ञान को छात्राध्यापकों में उत्पन्न कर सके। शिक्षक शिक्षा की पाठ्यचर्या में सैद्धान्तिक पक्ष तथा शिक्षण अभ्यास आदि के प्रायोगिक ज्ञान का समुचित अनुपातिक प्रतिनिधित्व होना चाहिए।

राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् (NCTE) द्वारा निर्मित बी.एड. पाठ्यचर्या की संरचना में निम्नलिखित तीन प्रमुख किन्तु अन्तर्संबंधित क्षेत्रों को पाठ्यचर्या में सम्मिलित किया गया है।

शिक्षा के परिप्रेक्ष्य ⟷ पाठ्यचर्या तथा शिक्षा शास्त्रीय अध्ययन



क्षेत्र से जुड़ाव

राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् (NCTE) ने वर्ष 2014-15 से बी.एड. पाठ्यचर्या कैसी हो इसकी रूपरेखा बनाई तथा इस रूपरेखा के आधार पर स्वायत्तशासी विश्वविद्यालयों ने अपने–अपने बी.एड. पाठ्यक्रम को जारी किया गया। मध्यप्रदेश के विश्वविद्यालयों में दो वर्षीय (चार सेमेस्टर) वाली पाठ्यचर्या जारी की गई।

बी.एड. कार्यक्रम का उद्देश्य माध्यमिक शालाओं में शिक्षण कार्य करने वाले ऐसे उपयुक्त विषय शिक्षकों को तैयार करना है जिन्हें बाल मनोविज्ञान व बाल विकास के समुचित के साथ माध्यमिक शालाओं में पढ़ाए जा रहे विभिन्न विषयों तथा उनकी शिक्षण शास्त्र का व्यावहारिक ज्ञान हो। स्कूल में इंटर्नशिप में पाठ योजना बनाकर शिक्षण अभ्यासों को करना, पाठयोजना बनाकर शिक्षण अभ्यास को करना।

इस पाठ्यचर्या में सैद्धांतिक एवं प्रायोगिक विषयों का अनुपातिक प्रतिनिधित्व है। बी.एड. पाठ्यचर्या में कुल 200 अंक है जिसमें 885 आंतरिक मूल्यांकन तथा 1215 बाह्य मूल्यांकन के लिए प्रावधानित है। इस प्रकार कोरे सैद्धांतिक विषयों को महत्व न देते हुए व्यावहारिक पक्ष को भी अनुपातिक उचित दिया गया है।

बी.एड. में पाठ्यक्रम का मूल्यांकन–इसके लिए शिक्षण की सभी प्रक्रियाओं की पर्याप्तता का निदान होना आवश्यक है क्योंकि छात्रों की असफलताओं के लिए उन्हें उत्तरदायी माना जाता है परन्तु शिक्षा की संपूर्ण प्रक्रियायें उनकी असफलता के लिए समान रूप से उत्तरदायी है अतः मूल्यांकन के अंतर्गत शिक्षण की संपूर्ण प्रक्रियाओं के महत्व को बालक के व्यवहार दर्शाता है।

मूल्यांकन की प्रक्रिया में 'शिक्षण तथा परीक्षण' साथ–साथ संपादन किया जाता है इसलिए मूल्यांकन का प्रयोग अधिक व्यापक रूप में किया जाता है। इसमें मापन छात्रों की निष्पत्तियों तक ही सीमित नहीं होता है अपितु शिक्षण की संपूर्ण प्रक्रिया का मूल्यांकन किया जाता है।

मूल्यांकन की प्रक्रिया में शिक्षण के व्यावहारिक उद्देश्यों पर ही अधिक बल दिया जाता है। शिक्षण के सामान्य व्यावहारिक उद्देश्यों को निम्नांकित भागों में विभाजित किया जा सकता है–

(1) ज्ञान उद्देश्य–बालकों की परिस्थितियों, पदों, प्रत्ययों, सिद्धान्तों तथा नियमों का बोध कराया जाता है जिससे वह पहचान कर सके, स्मरण कर सके तथा परख सके।

(2) कौशल उद्देश्य–शिक्षण द्वारा बालकों में परिस्थितियों और जीवन की समस्याओं के हल ढूँढने की कुशलता, वातावरण के साथ अनुकूलन की क्षमता उत्पन्न कर सके। मानवीय क्रियाओं पर पड़ने वाले तथ्यों के प्रभाव को कारण एवं प्रभाव के रूप में समझने की क्षमता का विकास हो सके।

(3) अभिवृत्ति का विकास–शिक्षा द्वारा बालक में अपने व्यक्तिगत, सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों के प्रति सही दृष्टिकोण विकसित करना है।

(4) ज्ञान प्रयोग उद्देश्य–शिक्षा से प्राप्त ज्ञान को अपने जीवन की परिस्थितियों के लिए प्रयोग करने की समता का विकास करना।

(5) मूल्यों का विकास उद्देश्य–शिक्षा द्वारा जीवन के प्रति अपेक्षित मूल्यों को विकसित करना एक प्रमुख उद्देश्य होता है। जिससे बालक अपने समाज, राष्ट्र तथा विश्व का सुयोग्य नागरिक बन सके। शिक्षण के लिए मूल्यांकन में निम्नलिखित विशिष्ट उद्देश्यों का प्रतिपादन किया गया है–

(1) तथ्यों एवं सिद्धान्तों का बोध करना।

(2) परिस्थितियों के ज्ञान से दैनिक जीवन की समस्याओं का समाधान निकालने की क्षमता का विकास करना।

(3) तत्वों पर मानवीय निर्भरता की सराहना की क्षमता का विकास करना।

(4) मानवता एवं विश्व व्यापकता की अभिवृत्ति का विकास करना।

पाठ्यक्रम का मूल्यांकन, अध्यापकों और निर्णयकर्त्ताओं की पाठ्यक्रम तथा इसके विकास और कार्यान्वयन पर वस्तुनिष्ठ निर्णय लेने में सहायक कर सकता है। निःसन्देह यह पाठ्यक्रम मूल्यांकन कार्य का भावी शैक्षिक प्रयास को उन्नत करने में किया जा सकता है। पाठ्यक्रम मूल्यांकन के किसी प्रयोग का कोई अर्थ नहीं है। प्रशासकों, नीति निर्माताओं, अध्यापकों, माता–पिता तथा विद्यार्थी भी उन ढंगों से संबंधित है जिनके द्वारा किसी स्कूल पाठ्यक्रम को कार्यान्वित किया जा रहा है उनके पास इसे उत्तरदायी बनाने के पर्याप्त कारण है। इसलिए इन कारणों से पाठ्यक्रम मूल्यांकन की प्रक्रिया महत्वपूर्ण बन जाती है।

प्रश्न 12. समाज की बदली हुई आवश्यकताओं के विषय में आप क्या जानते हैं ?

(उज्जैन 2022)

उत्तर–मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज के बिना व्यक्ति का किसी प्रकार का विकास संभव नहीं है। व्यक्ति ही समाज की इकाई है। व्यक्ति की सभी आवश्यकताएँ समाज में ही रहकर पूर्ण होती हैं। भोजन, आवास, वस्त्र, शिक्षा, आजीविका, अनेक मानवीय गुण एवं व्यावहारिक ज्ञान भी मनुष्य समाज में रहकर ही संभव है। प्रत्येक समाज में प्राचीन काल से ही कुछ–न–कुछ परिवर्तन होते रहे हैं। इन परिवर्तनों से नवीन स्थितियाँ भी उत्पन्न होती रही हैं जिनके कारण समाज में बदलाव की स्थिति उत्पन्न होती है। किसी भी आधुनिक समाज की बदलती हुई आवश्यकताएँ प्रमुख रूप से सामाजिक, राजनैतिक, तकनीकी, आर्थिक एवं पारिस्थितिकीय परिवर्तनों से संबंधित होती हैं। किसी समाज में परिवर्तन निम्न क्षेत्रों में होता है–

(1) राजनैतिक क्षेत्र–प्रायः सभी नवीन समाजों में सामान्य जनजातीय या परम्परागत ग्रामीण राज–व्यवस्था के स्थान पर लोकतन्त्रीय व्यवस्था, विभिन्न राजनीतिक दलों के उदय एवं उनके प्रतिनिधित्व तथा नागरिक सेवाओं हेतु अधिकारी तंत्र व्यवस्था को प्रश्रय दिया जा रहा है। अतः यह समाज के बदलाव का एक प्रमुख बड़ा कारण व आवश्यकता है।

(2) शैक्षिक क्षेत्र–वर्तमान समाज में निरक्षरता को दूर करने तथा विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादन–शील ज्ञान एवं कौशल के विकास पर अत्यधिक बल दिया जा रहा है।

(3) सामाजिक क्षेत्र–समाज की बदलती परिस्थितियों में व्यक्ति के जीवन, सामाजिक संबंधों एवं व्यवहार के नये प्रतिमान एवं मानदण्ड विकसित हो रहे हैं।

(4) आर्थिक क्षेत्र–वर्तमान समाज में उत्पादन के नये उपागम अपनाये जा रहे हैं तथा व्यक्तियों के जीवन स्तर एवं रहन–सहन के ढंग में व्यापक परिवर्तन की आवश्यकता है।

(5) तकनीकी क्षेत्र–आधुनिक समाज में जीवन के विविध पक्षों एवं कार्य क्षेत्रों में विज्ञान एवं तकनीकी की तीव्र प्रगति का भरपूर उपयोग करने का प्रयास किया जा रहा है जिससे समाज में आधुनिकीकरण के क्षेत्र में बदलाव की आवश्यकता है।

(6) धार्मिक क्षेत्र–समाज में परम्परागत धार्मिक विश्वासों के स्थान पर धर्म–निरपेक्ष एवं तर्कसंगत दृष्टिकोण विकसित हो रही है।

(7) पारिवारिक क्षेत्र–वर्तमान समय में विस्तृत एवं सुदृढ़ नातेदारी व्यवस्था का बंधन धीरे–धीरे ढीला पड़ता जा रहा है तथा छोटे एवं एकाकी परिवारों का उदय हो रहा है।

(8) सामाजिक स्तरीकरण संबंधी आयाम–भौगोलिक एवं सामाजिक गतिशीलता के कारण सुदृढ़ वर्ण व्यवस्था एवं जातीय श्रेष्ठता का स्तरीकरण टूटने की कगार पर दिखाई पड़ रहा है।

समाज में ये उपर्युक्त सभी क्षेत्रों में होने वाले परिवर्तन अलग–अलग समय पर तथा विभिन्न गति से प्रारंभ होते हैं। अतः परिवर्तनशील आधुनिक समाज में एक साथ ही कई संस्थागत परिवर्तन भी होते हैं, ये परिवर्तन अग्रानुसार हैं–

(1) कार्य संबंधों में परिवर्तन,

(2) पारिवारिक संबंधों में परिवर्तन,

(3) सामुदायिक संबंधों में परिवर्तन।

उपरोक्त क्षेत्र में परिवर्तन के और भी अनेक कारण हैं जिसके कारण समाज में बदलाव की आवश्यकता है।

समाज में बदलाव की आवश्यकता के कुछ प्रमुख बिन्दु—समाज में बदलाव की आवश्यकता के कुछ प्रमुख बिन्दु निम्नलिखित हैं—

(1) औद्योगीकरण,

(2) नगरीकरण,

(3) प्रौद्योगिकीय उन्नति,

(4) विज्ञान की प्रगति,

(5) सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि,

(6) सामाजिक विभेदीकरण,

(7) परम्परागत मूल्यों एवं आदर्शों में परिवर्तन,

(8) धर्म के महत्व में कमी,

(9) आर्थिक संगठन एवं व्यवस्था में नवीन परिवर्तन,

(10) राज्य के कल्याणकारी कार्यों का विस्तार,

(11) भौतिक संस्कृति का विकास एवं प्रसार,

(12) स्वतंत्रता एवं समानता की धारणा का विकास,

(13) सामान्य तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा का प्रसार,

(14) अंतर्राष्ट्रीय सहयोग का विकास।

प्रश्न 13. पाठ्यक्रम मूल्यांकन के लाभ लिखिए। **(छतरपुर 2022; उज्जैन 22**

उत्तर—एक बार पाठ्यक्रम विकसित कर दिये जाने का अर्थ यह नहीं है कि यह सबसे अच्छ पाठ्यक्रम है तथा सदैव उद्देश्य की पूर्ति करता रहेगा। क ोई भी पाठ्यक्रम सार्वभौमिक महत्व क नहीं हो सकता। सर्वश्रेष्ठ प्रकार का पाठ्यक्रम वह होता है जिसकी निर्माण की प्रक्रिया सदैव चलत रहती है। प्रत्येक पाठ्यक्रम के कुछ सशक्त तथा कमजोर पक्ष होते हैं। इनको केवल मूल्यांकन द्वारा प्रकाश में लाया जा सकता है। पाठ्यक्रम को सुनिश्चित करने की आवश्यकता सदैव अनुभव क जाती है। पाठ्यक्रम का मूल्यांकन एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है तथा इसका परिणाम पाठ्यक्र में संशोधन और परिवर्तन की ओर ले जाता है।

मूल्यांकन के आधार पर पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियों, सहायक सामग्री आदि में आवश्यक सुधा किया जा सकता है। मूल्यांकन कक्षा शिक्षण में सुधार लाता है। अध्यापक को अपनी कमी ज्ञात ह जाती है जिससे वह अपने शिक्षण को अधिक सुसंगठित बनाता है। मूल्यांकन आधार पर छात्रों क शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन दिया जा सकता है।

मूल्यांकन द्वारा ही शिक्षा के स्वरूप, उद्देश्यों एवं शिक्षा के पाठ्यक्रम में समाज के प्रभाव क पता चलता है। मूल्यांकन द्वारा छात्रों की अभिवृत्तियाँ, रुचियाँ, शारीरिक कुशलताएँ आदि के बारे यह पता चलता है कि इससे समाज का कितना भला होगा अथवा होगा भी या नहीं।

पाठ्यक्रम शिक्षा का एक अभिन्न अंग है। जिसके द्वारा शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति होती है। शिक्षा के संपूर्ण क्षेत्र में इसका एक विशेष स्थान है, जो उद्देश्यों एवं आदर्शों के निर्धारण एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह एक ऐसा साधन है जो छात्र एवं अध्यापक को जोड़ता है। अध्यापक पाठ्यक्रम के माध्यम से छात्रों के मानसिक, शारीरिक, नैतिक, सांस्कृतिक, संवेगात्मक, आध्यात्मिक तथा सामाजिक विकास के लिए प्रयास करता है।

पाठ्यक्रम द्वारा छात्रों को प्रशिक्षण एवं अध्यापकों को दिशा–निर्देश के अवसर प्राप्त होते हैं। पाठ्यक्रम में विषयों के साथ–साथ स्कूल के सारे कार्यक्रम का आधार पाठ्यक्रम ही है। यदि पाठ्यक्रम को शिक्षा का प्राण कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति ना होगी।

पाठ्यक्रम मूल्यांकन के लाभ–पाठ्यक्रम मूल्यांकन के निम्नलिखित लाभ हैं–

(1) क्रमबद्धता–पाठ्यक्रम मूल्यांकन का सबसे बड़ा लाभ यह है कि किये जा रहे कार्य की प्रत्येक स्तर पर पुष्टि होती रहती है। प्रत्येक सोपान के बाद मूल्यांकन का कार्य अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति तक क्रमबद्ध ढंग से चलता रहना चाहिए। इस प्रकार मूल्यांकन कार्यक्रम में क्रमिकता या क्रमबद्ध का विशेष महत्व है। मूल्यांकन के कार्य में निश्चितता होना भी आवश्यक है। जिस प्रकार पाठ्यक्रम के उद्देश्यों में पूर्व संबंध होता है तथा जिस प्रकार उन्हें महत्व में व्यवस्थित किया जाता है। उसी प्रकार का क्रम उनकी जाँच में भी रहना चाहिए। पाठ्यक्रम का मूल्यांकन पाठ्यक्रम को क्रमबद्धता प्रदान करता है।

(2) विश्वसनीयता–अच्छा मूल्यांकन विश्वसनीय भी होना चाहिए। मूल्यांकन के बार–बार होने पर भी निष्कर्षों में कोई अंतर न आना पाठ्यक्रम की विश्वसनीयता को प्रदर्शित करता है। मूल्यांकन की दृष्टि में निबंधात्मक परीक्षा से ज्यादा वस्तुनिष्ठ परीक्षा विश्वसनीय होती है।

(3) वैधता–पाठ्यक्रम का मूल्यांकन उसकी वैधता को भी प्रमाणित करता है। कोई मूल्यांकन प्रक्रिया तभी वैध कहलाती है जब वह उसी गुण, पक्ष, विशेषता आदि का मापन करती है जिसका करना अभीष्ट होता है। पाठ्यक्रम का मूल्यांकन उन्हीं पक्षों पर ध्यान केन्द्रित करता है जिस पक्षों पर पाठ्यक्रम आधारित होता है।

(4) व्यावहारिकता–एक अच्छे मूल्यांकन की प्रमुख विशेषता यह होती है कि उसका प्रयोग, अंकन एवं प्रदत्तों का अर्थापन करना सरल होता है। इस प्रकार के मूल्यांकन से शिक्षार्थियों में व्यवहारिकता का गुणों का विकास होता है। मूल्यांकन कार्यक्रम को इस प्रकार बनाया जा रहा है जो व्यावहारिक हो।

(5) व्यापकता–मूल्यांकन कार्यक्रम में सभी पक्षों एवं शैक्षिक उद्देश्यों की जाँच की जाती है। जिससे शिक्षार्थियों के व्यवहार में ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक सभी क्षेत्रों में हुये परिवर्तनों का व्यापक मूल्यांकन होता है। पाठ्यक्रम के मूल्यांकन में तो व्यापकता का होना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

(6) शिक्षार्थी की सहभागिता–शिक्षार्थी मूल्यांकन प्रक्रिया में भाग लेते हैं। इससे शिक्षार्थी को लाभ होता है कि वह स्वयं तथा अपने साथियों के व्यवहार में होने वाले परिवर्तनों का निरन्तर मापन एवं मूल्यांकन करता रहता है।

●●

अध्याय 5

पाठ्यक्रम के प्रतिमान

लघु एवं दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. पाठ्यक्रम प्रतिमान से आप क्या समझते हैं ? स्पष्ट कीजिए।
(छिंदवाड़ा 2021, 22; ग्वालियर 21; जबलपुर 21; भोपाल 22)

***अथवा*, प्रतिमान से आप क्या समझते हैं ? पाठ्यक्रम प्रतिमानों के प्रमुख तीन वर्गों को विस्तृत रूप से समझाइये।** **(उज्जैन 2021; रीवा 22)**

***अथवा*, प्रतिमान का अर्थ स्पष्ट कीजिए।** **(उज्जैन 2022)**

***अथवा*, पाठ्यचर्या प्रतिमान के प्रक्रिया मॉडल को समझाइए।** **(जबलपुर 2022)**

उत्तर—पाठ्यक्रम प्रतिमान—प्राचीन समय में पाठ्यक्रम निर्माण का कोई निश्चित ढंग नहीं होता था। पाठ्यक्रम निर्माण का विधिवत् कार्य बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से शुरू हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् पाठ्यक्रम विकास की संकल्पना विकसित होने के साथ इसके अनेक प्रतिमान प्रकाश में आये हैं।

प्रतिमान का अर्थ—प्रतिमान किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा क्रिया का ऐसा परिकल्पनात्मक या कार्यात्मक रूप होता है जिससे उसके वास्तविक स्वरूप का बोध होता है। प्रतिमान अंग्रेजी के 'Model' शब्द का पर्यायवाची है। सामान्य जीवन में हमें विभिन्न वस्तुओं के मॉडल देखने को मिलते हैं।

हेनरी सीसिल वील्ड के अनुसार—"किसी आदर्श के अनुरूप व्यवहार क्रिया को ढालने तथा क्रिया की ओर निर्देशित करने की प्रक्रिया मॉडल या प्रतिमान होती है।"

पाठ्यक्रम प्रतिमान—पाठ्यक्रम प्रतिमान का अर्थ पाठ्यक्रम के स्वरूप से हैं। पाठ्यक्रम प्रतिमान का स्वरूप शैक्षिक लक्ष्यों पर आधारित होता है। समय परिवर्तन एवं सामाजिक परिवर्तन के साथ–साथ शिक्षा के लक्ष्यों में भी परिवर्तन होता रहता है इसीलिए पाठ्यक्रम विकास के प्रतिमान भी बदलते रहते हैं। पाठ्यक्रम में तीन तथ्यों–उद्देश्य, प्रक्रिया एवं परिस्थिति को अधिक महत्व दिया जाता है। इसलिए पाठ्यक्रम प्रतिमानों को प्रमुख रूप से तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-

1. उद्देश्य प्रतिमान (The objective model)
2. प्रक्रिया प्रतिमान (The process model)
3. परिस्थिति प्रतिमान (The situational model)।

1. पाठ्यक्रम का उद्देश्य प्रतिमान (The objective model of curriculum, 2018)—पाठ्यक्रम के उद्देश्य प्रतिमान का आधार व्यावहारिक मनोविज्ञान है। इसमें शैक्षिक उद्देश्यों पर अधिक बल देते हुए पाठ्यक्रम के प्रारूप को विकसित किया जाता है। उद्देश्यों की प्राप्ति छात्रों के अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन के रूप में की जाती है। व्यवहार परिवर्तन का ज्ञान मूल्यांकन से होता है। अतः इसे **मूल्यांकन प्रतिमान** भी कहा जाता है।

बी.एस.ब्लूम (1962) ने शिक्षा में सुधार हेतु शिक्षण एवं परीक्षण की क्रियाओं को उद्देश्य केन्द्रित बनाने पर बल दिया तथा कहा कि शिक्षण में जिन उद्देश्यों को महत्व दिया जाये उन उद्देश्यों के लिए परीक्षण भी किया जाना चाहिए। मूल्यांकन प्रतिमान के अन्तर्गत निम्नांकित सोपानों का अनुसरण किया जाता है—

(i) शिक्षण उद्देश्यों का प्रतिपादन, (ii) उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सीखने के अनुभवों का सृजन, (iii) बालकों में होने वाले व्यवहार परिवर्तनों का मूल्यांकन।

2. पाठ्यक्रम का प्रक्रिया प्रतिमान (The process model of curriculum)—पाठ्यक्रम के प्रक्रिया प्रतिमान में प्रक्रिया को प्राथमिकता दी जाती है। इसमें उद्देश्यों को परिभाषित नहीं किया जाता है, बल्कि पाठ्यक्रम के प्रारूप को विकसित करने में पाठ्य–वस्तु के ज्ञान को ही ध्यान में रखा जाता है। इसके अन्तर्गत पाठ्य–वस्तु की सहायता से मानवीय गुणों को विकसित करने का प्रयास किया जाता है। इसीलिए इस प्रकार के पाठ्यक्रम को **'मानववादी पाठ्यक्रम'** भी कहा जाता है। चूँकि इसमें प्रक्रिया को महत्व दिया जाता है तथा शिक्षा प्रक्रिया शिक्षक द्वारा ही सम्पादित की जाती है। अतः इस प्रतिमान में शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। पाठ्यक्रम का उद्देश्य प्रतिमान व्यवहार मनोविज्ञान पर आधारित होता है जबकि **'प्रक्रिया प्रतिमान'** का प्रारूप मानव व्यवस्था सिद्धान्त पर आधारित होता है। मानव व्यवस्था में परिवर्तन के साथ–साथ शिक्षा का पाठ्यक्रम भी बदलता रहता है। मानव व्यवस्था का परम्परागत सिद्धान्त कार्य केन्द्रित है तथा **"संबंध सिद्धान्त"** सम्बन्ध–केन्द्रित है। मानव व्यवस्था का आधुनिक सिद्धान्त कार्य एवं संबंध–केन्द्रित है। इसके अनुसार व्यवस्था के सदस्य समस्या का समाधान एवं निर्णय लेने की भी क्षमता रखते हैं। इस प्रकार इसमें कार्य और संबंधों के साथ–साथ सदस्यों की निर्णय क्षमता को भी महत्व दिया जाता है। इसके अन्तर्गत शिक्षण व्यवस्था छात्र–केन्द्रित होती है तथा इसमें कार्य के साथ–साथ छात्रों की आवश्यकताओं का भी ध्यान रखा जाता है। इस विचारधारा का संबंध स्वतन्त्र अध्ययन अनुदेशन प्रणाली, अनुदेशन प्रारूप तथा अनुदेशन तकनीकी से हैं।

आई .के . डेवीज के अनुसार, इसे शैक्षिक तकनीकी का एक पक्ष माना जाता है, जिसे **प्रणाली उपागम** (System Approach) कहा जाता है। इसमें डेवीज ने शिक्षक को एक प्रबन्धक की संज्ञा प्रदान की है तथा उसके चार प्रमुख कार्य–नियोजन, व्यवस्था, अग्रसरण (Leading) तथा नियन्त्रण (Controlling) बताए हैं। शिक्षण के इन चारों सोपानों के अन्तर्गत शिक्षक द्वारा शिक्षण अधिगम प्रणाली की रूपरेखा तैयार की जाती है। डेवीज द्वारा इस कार्य में निम्नांकित पक्षों को सम्मिलित किया गया है—

(1) सम्पूर्ण प्रणाली का विश्लेषण करना, (2) कार्य विश्लेषण करना, (3) छात्रों की योग्यता को ज्ञात करना, (4) छात्रों के ज्ञान, कौशल एवं अभिवृत्तियों का विशिष्टीकरण करना, (5) छात्रों की आवश्यकताओं को पहचानना, (6) अधिगम उद्देश्यों की व्याख्या करना, (7) अधिगम के स्त्रोतों की व्यवस्था करना, (8) समुचित शिक्षण व्यूह–रचना का चयन करना, (9) छात्रों को अभिप्रेरण एवं प्रोत्साहन प्रदान करना, (10) शिक्षण प्रणाली का मूल्यांकन करना, (11) शिक्षण प्रणाली का निरन्तर निरीक्षण करना, (12) अधिगम प्रणाली का निरन्तर निरीक्षण करना, (13) अधिगम प्रणाली में सुधार करना, (14) मापन के मानदण्ड का मूल्यांकन करना, (15) कार्यक्षमताओं के आधार पर मापन के मानदण्ड का विकास करना।

पाठ्यक्रम के प्रक्रिया प्रतिमान के आधार पर ही अनुभव केन्द्रित, कार्य–केन्द्रित तथा एकीकृत पाठ्यक्रमों का निर्माण किया गया है।

3. पाठ्यक्रम का परिस्थिति प्रतिमान (The situation model of curriculum)—पाठ्यक्रम के परिस्थिति प्रतिमान के अन्तर्गत शिक्षा एवं पाठ्यक्रम को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों को महत्व प्रदान किया जाता है इसमें **'प्रणाली विश्लेषण'** (System Analysis) उपागम का प्रयोग करके परिस्थितियों का विश्लेषण किया जाता है। विश्लेषण के द्वारा शैक्षिक परिस्थितियों के बाह्य एवं आन्तरिक घटकों की पहचान की जाती है।

(1) आन्तरिक घटक—शैक्षिक परिस्थितियों के आन्तरिक घटक कक्षा शिक्षण तथा विद्यालय की व्यवस्था संबंधी क्रियाओं को प्रभावित करते हैं। छात्रों की रुचियों एवं अभिवृत्तियों, शिक्षक का

कौशल, नैतिकता एवं अभिवृत्तियाँ, उपलब्ध साधन एवं उपकरण तथा विद्यालय का वातावरण आदि आन्तरिक घटक में सम्मिलित किये जा सकते हैं।

(2) बाह्य घटक—बाह्य घटक भी शैक्षिक परिस्थितियों को बहुत अधिक प्रभावित करते हैं। सामाजिक परिवर्तन, राजनैतिक परिवर्तन, आर्थिक स्थिति में परिवर्तन, समाज एवं अभिभावकों की आकांक्षाओं एवं अभिवृत्तियों में परिवर्तन, नये विषयों का आविर्भाव आदि बाह्य घटक के रूप में कार्य करते हैं।

अतः इन घटकों को ध्यान में रखकर ही पाठ्यक्रम का निर्माण करना होता है। कुछ अन्य घटक जैसे—परीक्षा प्रणाली, पाठ्य—पुस्तकें तथा व्यवस्था भी पाठ्यक्रम प्रतिमान को प्रभावित करते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 के अन्तर्गत माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा नवोदय विद्यालय, उच्च शिक्षा स्तर पर सेवारत अध्यापक प्रशिक्षण, दूरवर्ती शिक्षा आदि अनेक महत्वपूर्ण सुझाव दिये गये हैं। इन सुझावों को लागू भी किया गया है जिससे नवीन परिस्थितियाँ भी उत्पन्न हुई है। अतः पाठ्यक्रम विकास में इन परिस्थितियों को भी ध्यान में रखना होगा।

पाठ्यक्रम के परिस्थिति प्रतिमान के आधार पर ही विषय—केन्द्रित पाठ्यक्रम, बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम, शिल्पकला केन्द्रित पाठ्यक्रम, सुसम्बद्ध पाठ्यक्रम, कोर पाठ्यक्रम आदि का विकास किया गया है।

प्रश्न 2. पाठ्यक्रम विकास के तकनीकी/वैज्ञानिक मॉडलों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
(छतरपुर 2022)

***अथवा*, हिल्डा ताबा मॉडल (Hilda Taba Model) के सोपानों को स्पष्ट कीजिए।**

***अथवा*, ताबा के व्यापक मूल्यांकन पाठ्यक्रम प्रतिमान का वर्णन कीजिए।**

***अथवा*, टॉयलर मॉडल को स्पष्ट कीजिए।**

***अथवा*, सेलर अलेक्जेण्डर मॉडल को संक्षेप में समझाइए।**

***अथवा*, पाठ्यक्रम विकास के नवीन प्रतिमान कौन से हैं ? आपके अनुसार सर्वोच्च प्रतिमान कौन—सा है एवं क्यों ?** **(उज्जैन 2021; छिंदवाड़ा 21)**

***अथवा*, ताबा प्रतिमान से आप क्या समझते हैं ?** **(ग्वालियर 2021)**

***अथवा*, पाठ्यक्रम विकास के प्रमुख सोपानों का वर्णन कीजिए। पाठ्यक्रम विकास के शैक्षिक उद्देश्यों के प्रमुख स्रोत कौन—कौन से हैं ?** **(उज्जैन 2021)**

***अथवा*, पाठ्यचर्या कार्यान्वयन का कौन—सा प्रतिमान सर्वाधिक उपयुक्त है व क्यों ?**
(इंदौर 2023)

***अथवा*, विभिन्न पाठ्यक्रम मॉडल की चर्चा करते हुए बताइये कि सर्वाधिक प्रचलित मॉडल कौन—सा है और क्यों ?** **(ग्वालियर 2022)**

उत्तर—तकनीकी वैज्ञानिक मॉडल के द्वारा पाठ्यचर्या को विस्तृत रूप से देखा जा सकता है। विभिन्न तकनीकी तथा वैज्ञानिक मॉडल के अन्तर्गत शिक्षाविदों से यह अपेक्षाएँ की जाती है कि वे अपने कार्यों को उचित प्रकार से करने के लिए बौद्धिक व तार्किक उपागमों का प्रयोग करेंगे। अतः तकनीकी व वैज्ञानिक उपागमों के समर्थकों का यह मानना है कि किस प्रकार से पाठ्यचर्या नियोजन की अलग—अलग प्रक्रियाओं की विधिपूर्वक रूपरेखा बनाई जाती है, जिससे पाठ्यचर्याओं का नियोजन किया जाता है।

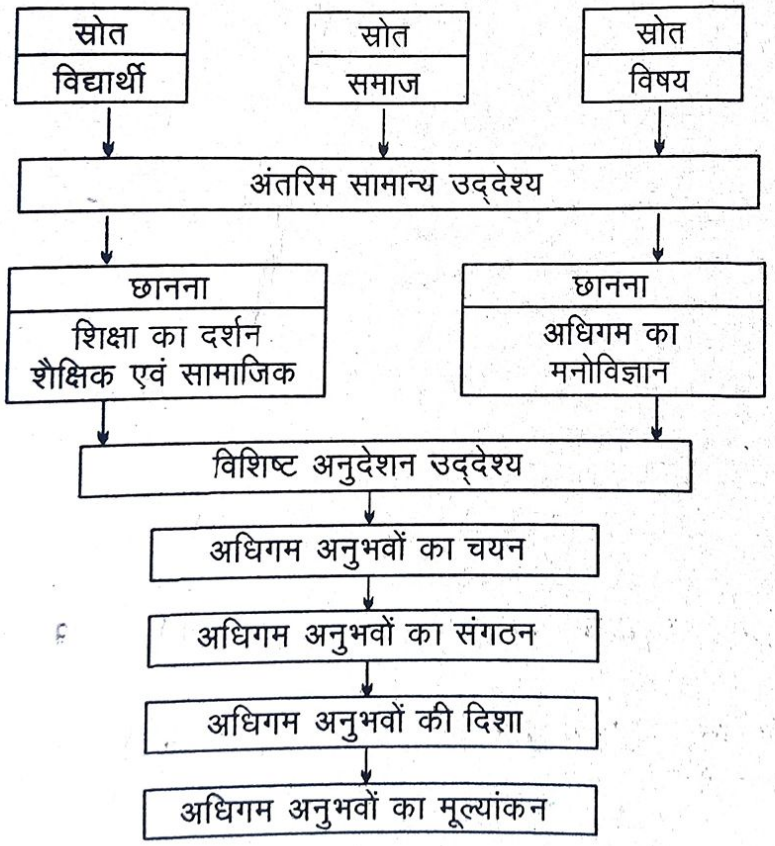
तकनीकी व वैज्ञानिक उपागमों पर आधारित मॉडल निम्नलिखित हैं–

(1) टॉयलर मॉडल (Tyler model), (2) ताबा मॉडल (Taba model), (3) सेलर व अलेक्जेण्डर मॉडल (Sayler and Alexander model), (4) मिलर–सेलर मॉडल (Miller and Seller model), (5) गुडलैड मॉडल (Goodlad model), (6) हंकिंस मॉडल (Hunkins model)।

उपरोक्त मॉडल में से कुछ प्रमुख मॉडल/प्रतिमान का विवरण नीचे दिया जा रहा है–

(1) टॉयलर पाठ्यक्रम प्रतिमान (Tyler Curriculum Model) **(इंदौर 2022)** –टॉयलर के प्रतिमान को लक्ष्य प्राप्ति मॉडल या कभी–कभी उद्देश्य–केन्द्रित मॉडल कहा जाता है जो पाठ्यक्रम प्रारूप, विकास और मूल्यांकन में सबसे आम मॉडल का आधार है इसका कारण इसमें नियोजन सोपान पर विशेष ध्यान दिया गया है। **टॉयलर** के अनुसार, पाठ्यचर्या नियोजक सामान्य उद्देश्यों की पहचान हेतु तीन स्त्रोतों–(i) विद्यार्थी (ii) समाज तथा (iii) विषय–वस्तु से प्रकरण एकत्र करता है। अनेक सामान्य उद्देश्यों की पहचान के पश्चात् नियोजक उन्हें दो छलनियों–(i) विद्यालयों के शैक्षिक एवं सामाजिक दर्शन एवं (ii) सीखने के मनोविज्ञान से छानने के पश्चात् परिष्कृत करता है। इन छलनियों में से छानने के पश्चात् सामान्य उद्देश्य विशिष्ट उद्देश्यों में परिवर्तित हो जाते हैं।

टॉयलर ने सामान्य उद्देश्यों को वर्णित करते हुये 'लक्ष्य', 'शैक्षिक उद्देश्य' एवं 'शैक्षिक प्रयोजन' कहा है।



I. स्रोत (Source) –

(i) विद्यार्थी (Student) –पाठ्यक्रम निर्माता शैक्षिक उद्देश्यों की खोज का प्रारंभ विद्यार्थियों की आवश्यकताओं एवं रुचियों के बारे में प्रदत्त एकत्र एवं विश्लेषित करता है। टॉयलर ने इस हेतु अध्यापकों द्वारा निरीक्षण, विद्यार्थियों से साक्षात्कार, प्रश्नावलियों और परीक्षण इत्यादि तकनीक प्रदत्त संकलन हेतु सुझाया है। इसी के आधार पर पाठ्यचर्या विकास, संभावित उद्देश्यों के समुच्चयों की पहचान करता है।

(ii) समाज (Society) – सामान्य उद्देश्यों के प्रतिपादन में समाज एवं समुदाय का विश्लेषण करना होता है। पाठ्यक्रम निर्माता एक वर्गीकरण योजना विकसित करता है जो समाज के विभिन्न पहलुओं; जैसे– स्वास्थ्य, परिवार, मनोरंजन, व्यवसाय, धर्म, उपयोग एवं नागरिकों, भूमिकाओं में विभाजित करता है। समाज की आवश्यकताओं के विश्लेषण से सम्भावित शैक्षिक उद्देश्यों का प्रवाह बहता है।

(iii) विषय–सामग्री (Content) –पाठ्यक्रम निर्माता द्वारा विभिन्न नवाचार, नवीन गणित, श्रव्य भाषिक, विदेशी भाषा, विज्ञान कार्यक्रम आदि विषय–सामग्रियों को एकत्र किया जाता है। उक्त वर्णित तीनों स्रोतों से सामान्य एवं व्यापक उद्देश्यों की प्राप्ति होती है उन्हें अनुदेशनात्मक लक्ष्य (Instructional goal) कहा जाता है।

II. छानना (Screen) –

(i) शिक्षा में शैक्षिक एवं सामाजिक दर्शन (Educational and social philosophy in education) –टॉयलर ने विद्यालय के अध्यापकों को शैक्षिक, सामाजिक दर्शन प्रतिपादित करने की सलाह दी। यह कार्य निम्न चार प्रजातांत्रिक लक्ष्यों पर बल देकर किया जा सकता है–

(1) प्रत्येक व्यक्ति की मानव के रूप में पहचान।

(2) समाज के सामाजिक समूहों में सभी प्रकार की गतिविधियों में व्यापक सहभागिता के लिये अवसर।

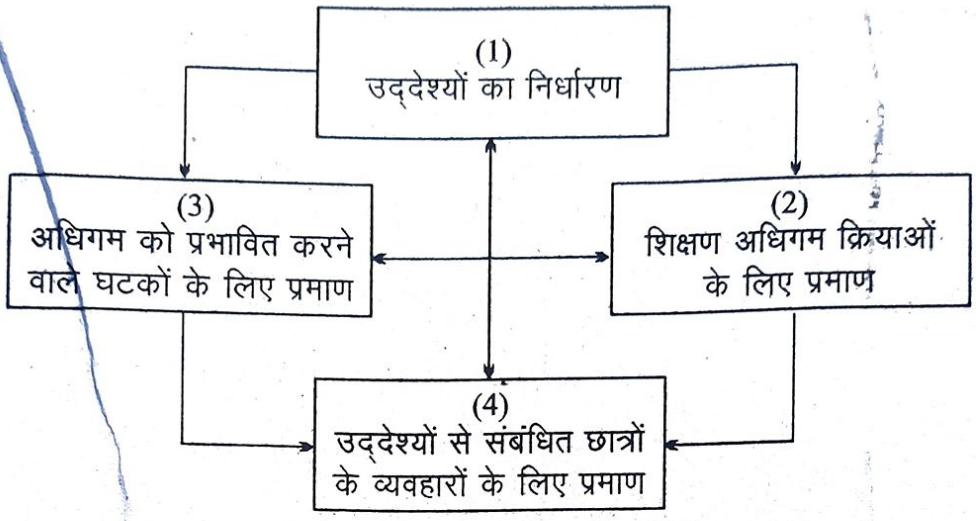
(3) एकाकी प्रकार के व्यक्तित्व के अलावा विभिन्नता को प्रोत्साहन।

(4) महत्वपूर्ण समस्याओं का सामना करने के रूप में अपनी बुद्धि में विश्वास।

(ii) अधिगम का मनोविज्ञान (Psychology of learning)–मनोवैज्ञानिक छानने का प्रयोग टॉयलर प्रतिमान का अगला सोपान है। इसका उपयोग करने के लिये अध्यापकों को अधिगम सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण करना चाहिए। टॉयलर के अनुसार, अधिगम सिद्धान्तों से अधिगम की प्रकृति, यह कैसे घटित होता है, किन स्थितियों में, किस प्रकार की युक्तियाँ इत्यादि का पता लगता है। इसके लिये शिक्षा मनोविज्ञान एवं मानव अभिवृद्धि एवं विकास में प्रशिक्षण आवश्यक होता है। छानने की प्रक्रिया के पश्चात् सामान्य उद्देश्य विशिष्ट अनुदेशनात्मक उद्देश्यों में परिवर्तित हो जाते हैं। इसके पश्चात् इस प्रक्रिया में पाठ्यक्रम नियोजन के तीन अधि–सोपान दिये हैं–(1) अधिगम अनुभवों का चयन। (2) अधिगम अनुभवों का संगठन। (3) अधिगम अनुभवों का मूल्यांकन।

(2) हिल्डा ताबा मॉडल /प्रतिमान (Hilda Taba model) **(ग्वालियर 2021)** –हिल्डा ताबा पाठ्यक्रम के प्रारूप को विकसित करने में मूल्यांकन की भूमिका को महत्वपूर्ण मानती है। यहाँ पर मूल्यांकन का अर्थ शिक्षण आयाम से है, परीक्षण से नहीं। **ब्लूम** (B.S. Bloom) ने मूल्यांकन की जो परिभाषा प्रस्तुत की है उसी के अर्थ में हिल्डा ताबा ने **'मूल्यांकन'** शब्द का प्रयोग किया है। ब्लूम ने मूल्यांकन को इस प्रकार परिभाषित किया है–

"विद्यालयों में छात्रों की प्रगति हेतु उनके व्यवहार के संबंध में प्रमाणों को एकत्रित करने तथा उनका अर्थापन करने की प्रक्रिया मूल्यांकन कहलाती है।" हिल्डा ताबा ने अपने व्यापक मूल्यांकन पाठ्यक्रम प्रतिमान के चार प्रमुख सोपानों का उल्लेख किया है जिन्हें प्रतिमान के रेखाचित्र में प्रदर्शित किया गया है–



चित्र–हिल्डा ताबा का पाठ्यक्रम प्रतिमान

सोपान (Steps) –

1. प्रथम सोपान–उद्देश्यों का निर्धारण (Identification of objectives)–इस सोपान के अन्तर्गत शिक्षा के उद्देश्यों की दृष्टि से पाठ्यक्रम का मूल्यांकन किया जाता है इसमें ज्ञानात्मक, भावात्मक, क्रियात्मक, सृजनात्मक एवं प्रत्यक्षीकरण उद्देश्यों से संबंधित प्रमाणों को एकत्रित करके शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है।

2. द्वितीय सोपान– शिक्षण अधिगम क्रियाओं के लिए प्रमाण (Evidence on teaching learning operations)– इस सोपान के अन्तर्गत समुचित शिक्षण–विधियों, प्रविधियों एवं पाठ्य–सामग्री को प्रयुक्त करके अधिगम के लिए परिस्थितियाँ उत्पन्न की जाती है तथा अधिगम अनुभवों हेतु प्रमाण एकत्रित किये जाते हैं।

3. तृतीय सोपान – अधिगम को प्रभावित करने वाले घटकों के लिए प्रमाण (Evidence on factors affecting learning)– इसके अन्तर्गत अधिगम को प्रभावित करने वाले घटकों के लिए प्रमाण एकत्रित किये जाते हैं। **उदाहरणार्थ**–पुनर्बलन एवं अभिप्रेरणा से छात्र अधिक सीखते हैं। अभ्यास अधिगम को स्थायी बनाता है। दृश्य–श्रव्य सामग्री का प्रयोग बालकों के अधिगम को प्रभावित करता है।

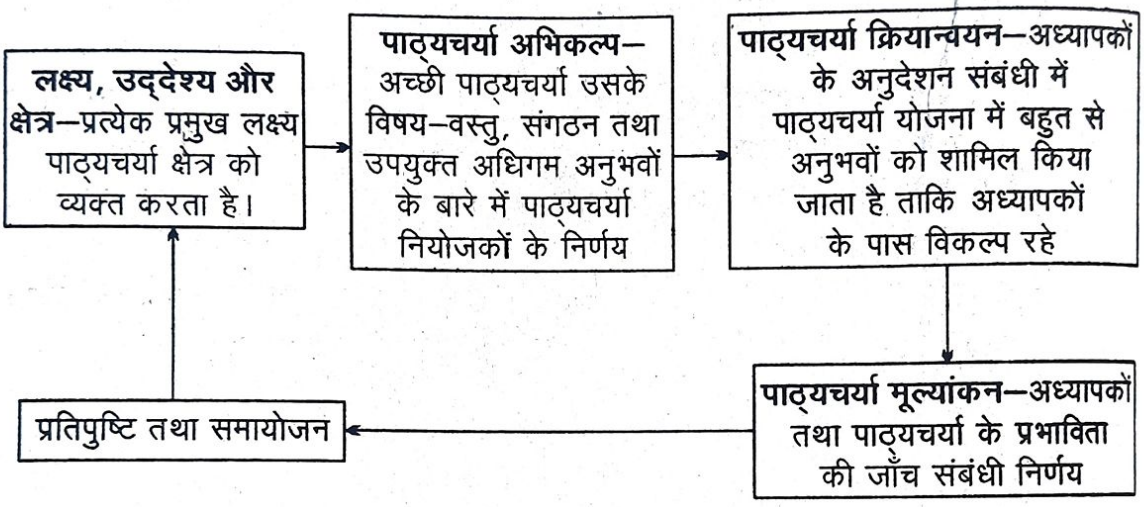
4. चतुर्थ सोपान – उद्देश्यों को संबंधित छात्रों के व्यवहारों के लिए प्रमाण (Evidence on pupil behaviour pertaining objectives) – अन्तिम सोपान के अन्तर्गत पाठ्यक्रम की सार्थकता एवं उपादेयता की जाँच उद्देश्यों की दृष्टि से की जाती है। इस प्रकार परीक्षण का स्वरूप उद्देश्य केन्द्रित होता है। अतः व्यवहार परिवर्तन के लिए प्रमाणों का संकलन किया जाता है। इन प्रमाणों के आधार पर पाठ्यक्रम का सुधार एवं विकास किया जाता है।

हिल्डा टाबा ने इन्हीं सोपानों के आधार पर पाठ्यक्रम के प्रारूप के लिए चार अवस्थाओं का भी उल्लेख किया है। इन अवस्थाओं एवं सोपानों में बहुत अधिक समीपता भी है। ये चार अवस्थाएँ निम्न हैं–

1. मूल्यांकन हेतु आवश्यक प्रदत्तों के स्वरूप का निर्धारण करना।
2. आवश्यक यन्त्रों एवं प्रक्रिया का चयन करना अथवा उनके स्वरूप को निर्मित करना।
3. आवश्यक परिवर्तन से संबंधित परिकल्पना के विकास हेतु प्रदत्तों का विश्लेषण एवं अर्थापन करना।
4. परिकल्पना को कार्य रूप में परिवर्तित करना।

इस प्रकार इस प्रतिमान में अवस्थाओं अथवा सोपानों का अनुसरण करते हुए प्रमाणों के आधार पर पाठ्यक्रम का विकास एवं सुधार किया जाता है।

(3) सेलर एवं एलेक्जेण्डर मॉडल (Saylor and Alexander model)—**गैलन सेलर एवं विलियम अलेक्जेंडर के अनुसार**— "पाठ्यक्रम एक योजना है जो किसी एक विद्यालय केन्द्र में पढ़ने वाले अभिज्ञेय जनसंख्या को वृहत् शैक्षिक लक्ष्यों तथा उनसे संबंधित विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अधिगम अवसरों का संग्रह प्रदान करता है।" उनके मत के अनुसार, पाठ्यक्रम विकास में 4 सोपान शामिल होते हैं, जिसे हम निम्नलिखित चित्र के द्वारा दर्शायेंगे—

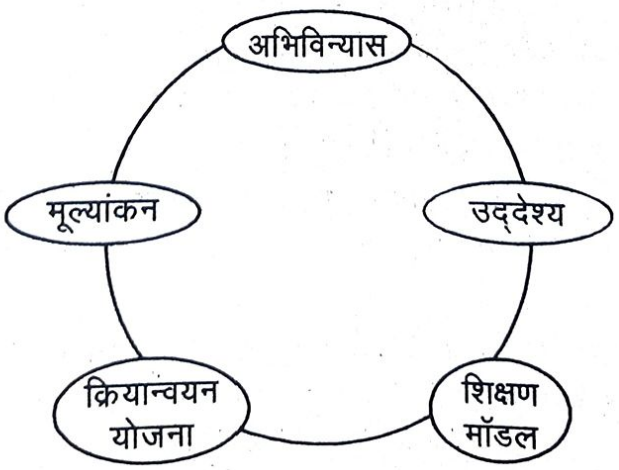


(4) मिलर–सेलर मॉडल—यह एक सामान्य मॉडल है जो कि इस बात पर बल देता है, कि पाठ्यचर्या विकास के प्रत्येक मॉडल, पाठ्चर्या प्रयोजन के अन्तर्गत निम्नलिखित तीन स्थितियों का प्रदर्शन कर सकती है—

(1) प्रेषण अवस्था—जिसमें पाठ्यचर्या छात्रों के मूल्यों तथ्यों व कौशलों का प्रेषण करती है।

(2) संचालन अवस्था—संचालन अवस्था के अन्तर्गत अध्यापक तथा छात्रों में संवादात्मक प्रक्रिया अर्थात् शिक्षाशास्त्री अन्योन्य क्रियाओं द्वारा होना चाहिए।

(3) रूपान्तरण अवस्था—यहाँ पर पाठ्यचर्या से व्यक्तिगत बदलाव तथा सामाजिक अभिवृत्तियों को प्रभावित किया जा सकता है।



चित्र—मिलर और सेलर मॉडल

प्रश्न 3. पाठ्यक्रम विकास के गैर–तकनीकी एवं गैर–वैज्ञानिक मॉडलों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

***अथवा*, खुला विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के प्रारूप का विस्तृत वर्णन कीजिए।**

***अथवा*, खुला/मुक्त स्कूल के विषय में संक्षेप में टिप्पणी लिखिए। (जबलपुर 2021)**

***अथवा*, खुले विश्वविद्यालय से आपका क्या तात्पर्य है ? खुले विश्वविद्यालय का शिक्षण प्रतिमान बताइये। (छिंदवाड़ा 2021)**

***अथवा*, भारतीय परिप्रेक्ष्य में मुक्त विश्वविद्यालय का क्या अर्थ है ? संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।**

***अथवा*, मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम की विशेषताएँ लिखिए। (छतरपुर 2021; उज्जैन 21)**

***अथवा*, मुक्त शिक्षा प्रणाली के उद्देश्य क्या हैं ? (छतरपुर 2022)**

***अथवा*, मुक्त विश्वविद्यालय पर एक लेख लिखिए। (उज्जैन 2022)**

***अथवा*, मुक्त विश्वविद्यालय की व्यूह रचना समझाइए। (छिंदवाड़ा 2022)**

***अथवा*, खुले विद्यालय की धारणा को स्पष्ट कीजिए। (जबलपुर 2022)**

***अथवा*, मुक्त विश्वविद्यालय से आप क्या समझते हैं ? शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति के संदर्भ में इसका क्या महत्व है ? (छतरपुर 2022)**

उत्तर—गैर–तकनीकी मॉडल के अन्तर्गत तीन महत्वपूर्ण मॉडल आते हैं—

1. मुक्त कक्षा मॉडल (Free classroom model) —खुला/मुक्त कक्षा मॉडल क्रियाकलापों पर आधारित पाठ्यचर्या पर आधारित होता है। इसके साध्य क्रियाकलाप होते हैं। इसमें छात्र के द्वारा 'स्वयं करके' (Learning by doing) सीखने पर बल दिया जाता है। इस मॉडल में छात्र अपने अधिगम हेतु स्वयं उत्तरदायी होने चाहिए। इस मॉडल के अनुसार पाठ्यचर्या छात्रों की रुचियाँ, आवश्यकताओं व अभिवृत्तियों पर आधारित होना चाहिए।

2. विन्स्टीन फान्टिनी मॉडल (Weinstein Fantini model)— इस मॉडल में वर्तमान पाठ्यचर्या की विषय–वस्तु तथा प्रविधियों की प्रासंगिकता के जाँचने हेतु अध्यापक नई–नई सामग्री व नई प्राविधियों की तैयारी करता है। अतः यहाँ अध्यापक पाठ्यचर्या को नया रूप देता है। यहाँ छात्रों की जरूरतों को पूर्ण करने हेतु वर्तमान पाठ्यक्रम को सुधारा जाता है। अतः इस तरह की पाठ्यचर्या विकास की प्रक्रिया का केन्द्र छात्र ही होता है। इस विषय–वस्तु के मुख्य स्रोत निम्नलिखित हैं—

(1) व्यक्तियों के अनुभव, (2) छात्रों के अनुभवों का बोध (यह बोध मित्रों व खेलों से संबंधित होता है), (3) छात्रों के निजी सामाजिक पर्यावरण का ज्ञान।

3. रोजर्स का अन्तर्वैयत्किक संबंध मॉडल (Roger's interpersonal relationship model)— कार्ल रोजर्स का संबंध पाठ्यचर्या से नहीं था, फिर भी इन्होंने एक मॉडल का विकास किया जो पाठ्यचर्या विकास हेतु प्रयोग में लाया गया। इस मॉडल को व्यक्ति समूह के अनुभवों की जाँच हेतु प्रयुक्त किया गया। समूह के सदस्य स्वयं व समूह के लोगों को जाँचते हैं। साथ ही समूह के हर प्रतिभागी का ईमानदारी से सम्प्रेषण करते हैं। अतः इस मॉडल को अन्तर्वैयक्तिक संबंध मॉडल कहते हैं।

मुक्त/खुला विश्वविद्यालय (Open University) **(छतरपुर 2021)**— मुक्त शिक्षा का अभिप्राय उस शिक्षा या अधिगम से है जो उन व्यक्तियों को उपलब्ध करायी जाती है, जो कोई भी हों, कहीं भी हों या कभी भी अध्ययन करने की इच्छा रखतें हों। मुक्त शब्द का अभिप्राय है— **'छात्रों को अध्ययन की मुक्त सुविधा (Open access) चाहे उनकी आयु या पिछली योग्यता कुछ भी हो।'**

1976 ई. में भारत सरकार द्वारा **श्री जी. पार्थसारथी** की अध्यक्षता में गठित समिति की संस्तुति के आधार पर एक राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना हेतु एक विधेयक का प्रारूप तैयार किया था, किन्तु कुछ अज्ञात कारणों से उसे संसद में प्रस्तुत नहीं किया जा सका था। इसी दौरान विभिन्न राज्यों द्वारा भी उच्च शिक्षा की बढ़ती माँग को पूरा करने तथा उच्च शिक्षा के लोकतंत्रीकरण हेतु मुक्त विश्वविद्यालयों की स्थापना के संबंध में कुछ प्रयास एवं विचार–विमर्श किये जा रहे थे। 1969 ई. में ब्रिटेन में स्थापित मुक्त विश्वविद्यालय की सफलता से उन्हें और बल मिल रहा था।

प्रारंभ में इस विश्वविद्यालय द्वारा बी. ए., बी. एस–सी. एवं बी. कॉम पाठ्यक्रमों की शुरुआत की गई। इन पाठ्यक्रमों में कोई भी व्यक्ति किसी पूर्व शैक्षिक योग्यता के बिना प्रवेश ले सकता है, किन्तु उसे इसके लिए विश्वविद्यालय की प्रवेश परीक्षा को उत्तीर्ण करना अनिवार्य होता है। इस प्रवेश परीक्षा का उद्देश्य शिक्षार्थियों की वांछित कोर्स न्यूनतम योग्यता का आंकलन करना होता है किन्तु ऐसे शिक्षार्थी जिन्होंने पहले से ही इण्टरमीडिएट परीक्षा उत्तीर्ण की है, बिना प्रवेश परीक्षा के ही नामांकन करा सकते है। बी. एस–सी. पाठ्यक्रम हेतु शिक्षार्थियों का विज्ञान विषयों के साथ इण्टरमीडिएट उत्तीर्ण होना अनिवार्य है। उपर्युक्त तीनों कार्यक्रमों हेतु तीन स्तरीय पाठ्यक्रम निर्धारित किये गये हैं–

1. आधारभूत पाठ्यक्रम (Foundation course)—इसमें चार पाठ्यक्रम होते हैं, जिनमें दो भाषाओं (अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू, तेलुगु में से कोई दो), विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी तथा मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान का एक–एक पाठ्यक्रम होता है। इन्हें पहले वर्ष में पूरा करना होता है।

2. सामान्य पाठ्यक्रम (Core courses)—द्वितीय वर्ष में तीन विभिन्न विषयों के दो–दो पाठ्यक्रमों का अध्ययन करना होता है।

3. विशिष्ट अथवा व्यावहारिक पाठ्यक्रम (Specialization or Applied courses)—तीसरे वर्ष में तीन विभिन्न विषयों (जिन्हें दूसरे वर्ष में लिया गया है) के दो–दो अतिरिक्त पाठ्यक्रम के साथ-साथ विशिष्ट अध्ययन का पाठ्यक्रम भी पूरा करना होता है।

इस शैक्षिक कार्यक्रम की विशेषता यह है कि इसमें सामान्य पाठ्यक्रम हेतु ऐच्छिक विषयों को चुनने में शिक्षार्थी को पूरी स्वतन्त्रता होती है तथा वह अपनी आवश्यकता एवं रुचि के अनुसार विषयों का चयन कर सकता है।

शिक्षण सामग्री का निर्माण (Teaching materials) — इस विश्वविद्यालय में पाठ्यक्रमों का निर्माण विषय विशेषज्ञ समितियों द्वारा किया जाता है। पाठ्य–सामग्री का निर्माण एक टीम द्वारा किया जाता है जिसमें विषय से संबंधित सम्पादक, कई पाठ लेखक, एक भाषा सम्पादक तथा एक समन्वयक होता है।

मुद्रण का कार्य बाहरी व्यावसायिक मुद्रकों से करवाया जाता है किन्तु बाद में विश्वविद्यालय की अपनी निजी मुद्रण व्यवस्था की योजना है।

मुद्रित शिक्षण सामग्री के अतिरिक्त पाठों को रेडियो से भी एक निर्धारित समय पर प्रसारित किया जाता है तथा इन पाठों के वीडियो कैसेट भी तैयार किये जाते हैं जिनका लाभ शिक्षार्थी अध्ययन केन्द्रों पर उठा सकते हैं।

अध्ययन केन्द्र (Study centres) —विद्यार्थियों को पर्याप्त सुविधा प्रदान करने की दृष्टि से अध्ययन केन्द्र बनाये जाते हैं जहाँ से विद्यार्थी अपने Course संबंधी सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकते हैं तथा अध्ययन सामग्री भी प्राप्त कर सकते हैं।

मुक्त / खुला विद्यालय (Open School) (**जबलपुर 2021; रीवा 22**) — केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड ने माध्यमिक शिक्षा में छात्रों की बढ़ती हुई भीड़ तथा औपचारिक शिक्षा में प्रवेश न पा सकने वाले विद्यार्थियों की सुविधा हेतु 1979 ई. में 'राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय' की स्थापना की है। इस विद्यालय का उद्देश्य दूरवर्ती शिक्षा प्रणाली के माध्यम से दूरस्थ शिक्षार्थियों को माध्यमिक स्तर की शिक्षा प्रदान करना है।

इस मुक्त विद्यालय में भी मुक्त विश्वविद्यालय जैसी पद्धति ही अपनायी जाती है। दूरस्थ शिक्षार्थियों की मुद्रित पाठ्य–सामग्री डाक द्वारा प्रेषित की जाती है। सत्र के बीच में व्यक्तिगत सम्पर्क कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं तथा शिक्षार्थियों को अन्य सहायक सेवायें भी उपलब्ध करायी जाती हैं। 1982-83 सत्र से राष्ट्रीय खुला विद्यालय केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद् की 'स्कूल सर्टीफिकेट' की परीक्षायें ले रहा है।

देश के कई राज्यों ने भी राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय की पद्धति पर अपने यहाँ माध्यमिक शिक्षा हेतु पत्राचार पाठ्यक्रम प्रारंभ किये हैं।

उद्देश्य–मुक्त विद्यालय के प्रमुख उद्देश्य निम्नांकित रखे गए–

(1) औपचारिक विद्यालय प्रणाली के विकल्प के रूप में एक समानान्तर अनौपचारिक प्रणाली प्रस्तुत करना।

(2) विद्यालय प्रणाली से बाहर रह गए छात्रों, शिक्षा छोड़ देने वालों, कार्यकारी प्रौढ़ों, गृहणियों, समाज के वंचित वर्गों के छात्रों तथा देश के दूरस्थ क्षेत्रों में रहने वाले ऐसे लोगों को जो नियमित विद्यालयों में नहीं जा पाते, उनके लिए शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराना।

(3) दूरवर्ती शिक्षण की विधियों के द्वारा माध्यमिक वरिष्ठ, माध्यमिक तकनीकी व्यावसायिक तथा जीवन को समृद्ध करने वाले पाठ्यक्रम संचालित करना।

(4) माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रमों तक ले जाने वाले ब्रिज या प्रारम्भिक पाठ्यक्रमों का आयोजन करना।

(5) अनुसंधान, प्रकाशन तथा सूचना के प्रसार के द्वारा शिक्षा की एक मुक्त तथा दूरवर्ती अधिगम पर आधारित प्रणाली को प्रोत्साहित करना।

मुक्त विद्यालयों की प्रमुख विशेषताएँ (**उज्जैन 2021**)–(1) मुक्त विद्यालय के द्वार प्रत्येक व्यक्ति के लिए खुले हैं। इसमें आयु सीमा या अन्य शैक्षिक अहर्ताओं का कोई बन्धन नहीं है।

(2) इसका कार्य क्षेत्र सीमित नहीं है, भारत या भारत से बाहर जिसे भी इसकी सेवाएँ चाहिए उसके लिए यह खुला हुआ है।

(3) छात्रों को एक निश्चित सूची से अपनी पसन्द के विषय चुनने की स्वतंत्रता है और अपनी सुविधा के अनुसार पढ़ने की आजादी।

(4) पाँच वर्षों की अवधि में तथा नौ प्रयासों में बारी–बारी से विभिन्न विषयों में या एक ही बार में पूरी परीक्षा पास की जा सकती है।

(5) भाषा का माध्यम आवश्यकतानुसार हिन्दी या अंग्रेजी का चयन किया जा सकता है।

(6) छात्रों के लिए सरल, सुगम तथा बोधगम्य पाठ्य–सामग्री प्रत्येक छात्र तक पहुँचायी जाती है।

(7) छात्रों की कठिनाइयों के निवारण के लिए पूरे देश में अध्ययन केन्द्रों की सुविधा दी जाती है।

(8) औपचारिक शिक्षा प्रणाली की तुलना में अध्ययन शुल्क काफी कम होता है।

(9) 'Tutor Marked Assignments' (TMA) के द्वारा अनवरत् मूल्यांकन व्यवस्था जारी रहते हैं।

(10) अध्ययन केन्द्रों पर व्यक्ति सम्पर्क कार्यक्रम (Personal Contact Programmes, PCP) की सहायता के लिए आयोजित किए जाते हैं।

(11) व्यावसायिक पाठ्यक्रम या तो एक विषय के रूप में, अलग से अथवा व्यावसायिक (Vocational Package) या ऐकेडैमिक पाठ्यक्रम के साथ–साथ भी आवश्यकतानुसार दिए जा सकते हैं।

(12) यह आधुनिक शिक्षा, संचार तथा सूचना तकनीकियों के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्रदान करती है।

प्रश्न 4. इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय पर विस्तृत लेख लिखिए।

(रीवा 2022)

***अथवा*, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय का वर्णन निम्न बिन्दुओं पर कीजिए–**

(i) स्वरूप, (ii) उद्देश्य, (iii) शिक्षण कार्यक्रम, (iv) क्षेत्रीय केन्द्र, (v) पाठ्यक्रम एवं पाठ्य-सामग्री।

***अथवा*, इंदिरा गाँधी मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना व उसके उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।**

(इंदौर 2022)

उत्तर–जनवरी 1985 ई. में तत्कालीन प्रधानमंत्री **श्री राजीव गाँधी** ने राष्ट्र के नाम अपने पहले संदेश में नई शिक्षा नीति के एक भाग के रूप में राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना की घोषणा की। इसके लिये शिक्षा मंत्रालय द्वारा प्रख्यात शिक्षा शास्त्रियों की समीति का गठन किया गया। इस समिति ने राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना के उद्देश्यों, पाठ्यक्रमों, प्रशासनिक व्यवस्था, वित्तीय व्यवस्था एवं प्रसारण माध्यमों से संबंधित एक प्रोजेक्ट रिपोर्ट प्रस्तुत की। संसद ने दोनों सदनों में अगस्त 1985 में इस विधेयक को मंजूरी दे दी गई तथा 20 सितंबर, 1985 ई. को 'इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय' की स्थापना की गयी।

(i) स्वरूप (Form/Character/Nature) – इस विश्वविद्यालय का स्वरूप सामान्य विश्वविद्यालयों से भिन्न होता है। इस विश्वविद्यालय का अध्यक्ष कुलपति होता है। इसकी व्यवस्था के लिये प्रबन्ध समिति, योजना परिषद्, विद्या परिषद, वित्त समिति के सदस्य होते हैं। कुलपति की सहायता के लिये उपकुलपति एवं डायरेक्टर्स होते हैं। इस विश्वविद्यालय का एक कुल सचिव तथा वित्त अधिकारी भी होता है। इसका केन्द्रीय कार्यालय नई दिल्ली में है।

शिक्षण के लिए शिक्षक के स्थान पर– (1) दृश्य–श्रव्य सामग्री, (2) श्रव्य उपकरण, (3) दूर-दर्शन, (4) सम्पादित पाठ्य–सामग्री, (5) पत्राचार, (6) सम्पर्क कार्यक्रम आदि साधनों की व्यवस्था होती है।

(ii) उद्देश्य (Objectives) –इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय द्वारा शिक्षार्थियों के लिए प्रकाशित की गई हस्त पुस्तिका एवं विवरणिका में उद्देश्यों को संक्षेप में निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया गया है–

(1) शिक्षा को विद्यार्थियों के द्वार तक पहुँचाकर उच्च शिक्षा का लोकतंत्रीकरण करना।

(2) आयु, क्षेत्र या औपचारिक शिक्षा पर विचार किये बिना शिक्षा पाने के इच्छुक सभी विद्यार्थियों को उच्चकोटि की शिक्षा सुलभ कराने की व्यवस्था करना।

(3) वृत्तिक (Professional) एवं व्यवसायमूलक पाठ्यक्रमों द्वारा आवश्यकता पर आधारित शैक्षिक कार्यक्रम प्रारंभ करना।

(4) भारत में दूर शिक्षा को प्रोत्साहित एवं विकसित करना।

(5) इस प्रयोजन के लिए शीर्षस्थ निकाय के रूप में देश में दूर शिक्षा के स्तर निर्धारित करना तथा उन्हें बनाये रखना।

(iii) शिक्षण कार्यक्रम (Educational programs) –इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (Indira Gandhi National Open University; IGNOU) के अध्ययन विद्यापीठों द्वारा कई प्रकार के

कार्यक्रम विकसित किये गये हैं। इनमें से कुछ पाठ्यक्रम सीधे किसी डिग्री/डिप्लोमा/सर्टीफिकेट से जुड़े होते हैं तथा कुछ पाठ्यक्रम किसी डिग्री/डिप्लोमा के एक विषय (घटक) के रूप में होते हैं। इस प्रकार कुछ उपाधियों हेतु एक से अधिक अध्ययन विद्यापीठों द्वारा निर्मित सामग्री को प्रयुक्त किया जाता है।

उदाहरण—बी.ए. की डिग्री हेतु यदि किसी शिक्षार्थी ने ऐच्छिक विषय के रूप में हिन्दी, समाजशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र विषय चुने हैं तब हिन्दी की सामग्री मानविकी अध्ययन विद्यापीठ तथा समाजशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र की सामग्री सामाजिक विज्ञान अध्ययन विद्यापीठ के द्वारा निर्मित की होगी।

प्रत्येक कार्यक्रम के अन्तर्गत कुछ पाठ्यक्रम, प्रत्येक पाठ्यक्रम में कुछ खण्ड (Block) तथा प्रत्येक खण्ड में कुछ इकाइयाँ होती हैं। प्रत्येक कार्यक्रम मॉड्यूलर स्वरूप का होता है तथा उनके निश्चित क्रेडिट होते हैं। कार्यक्रम को सफलतापूर्वक पूरा करने हेतु निर्धारित क्रेडिट्स को अर्जित करना आवश्यक होता है।

(iv) पाठ्य–सामग्री (Learning/Course material) — **इग्नू** (IGNOU) के अधिकांश कार्यक्रम इन कार्यक्रमों से संबंधित अध्ययनों की माँग के प्रारंभिक सर्वेक्षण के उपरान्त विकसित किये जाते हैं। चूँकि इन कार्यक्रमों (पाठ्यक्रमों) को दूर शिक्षा पद्धति से संचालित करना होता है, अतः इनकी पाठ्य–सामग्री को अधिक–से–अधिक छात्रोन्मुख बनाने का प्रयास किया जाता है जिससे वह स्वतः अनुदेशनात्मक अर्थात् स्वशिक्षण सामग्री का रूप ले सकें। इसलिए इस विश्वविद्यालय की समस्त शिक्षा सामग्री देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों/संस्थाओं तथा अपने अध्ययन विद्यापीठों के विशेषज्ञों के समूह द्वारा विशेष रूप से तैयार की जाती है। मुद्रण से पूर्व विषय विशेषज्ञों द्वारा शिक्षण–सामग्री की गम्भीरता से जाँच की जाती है। शैक्षिक इकाई डिजाइनर इनका पर्यवेक्षण करते हैं तथा भाषा विशेषज्ञों द्वारा सामग्री का सम्पादन किया जाता है। पाठ्य इकाइयों से संबंधित श्रव्य–दृश्य कैसेट तैयार करने हेतु कोर्स लेखकों, संकाय सदस्यों एवं प्रोड्यूसरों से आवश्यक परामर्श किया जाता है। पाठ्य–सामग्री एवं श्रव्य–दृश्य कैसेट के निर्माण को अन्तिम रूप प्रदान करने से पूर्व संकाय विशेषज्ञों एवं बाहरी मीडिया विशेषज्ञों द्वारा सामग्री का पूर्वावलोकन एवं पुनरावलोकन भी किया जाता है तथा आवश्यकतानुसार उसमें संशोधन अथवा पुनर्सम्पादन भी किया जाता है।

(v) क्षेत्रीय अध्ययन केन्द्र (Regional Study Centres) —दूर शिक्षा के विद्यार्थियों की सुविधा के लिए इग्नू द्वारा पूरे देश में अध्ययन एवं प्रशिक्षण केन्द्रों का जाल फैलाया गया है। वर्तमान समय में पूरे देश में 21 क्षेत्रीय केन्द्र तथा इन क्षेत्रीय केन्द्रों के अन्तर्गत लगभग 400 अध्ययन केन्द्र चल रहे हैं। क्षेत्रीय केन्द्रों का संचालन क्षेत्रीय निदेशकों द्वारा किया जाता है। शिक्षार्थी अध्ययन केन्द्रों की विस्तृत जानकारी क्षेत्रीय केन्द्रों से अथवा विश्वविद्यालय की विवरणिका से प्राप्त कर सकते हैं।

अध्ययन केन्द्र सामान्यतया किसी शिक्षण संस्था में बनाया अथवा स्थापित किया जाता है। प्रत्येक अध्ययन केन्द्र में एक अंशकालिक समन्वयक की नियुक्ति की जाती है जो आमतौर पर उसी शिक्षण संस्था का प्राध्यापक/अधिकारी होता है। इन अध्ययन केन्द्रों पर एक पुस्तकालय एवं श्रव्य–दृश्य माध्यमों की भी व्यवस्था की जाती है। विभिन्न विषयों से संबंधित विशेषज्ञों को अंशकालिक काउन्सलर के रूप में भी नियुक्त किया जाता है। अध्ययन केन्द्र का प्रबन्ध क्षेत्रीय निदेशक एवं विश्वविद्यालय के माध्यम से समन्वयक द्वारा किया जाता है।

प्रश्न 5. पाठ्यक्रम विकास हेतु डी.के. व्हीलर मॉडल क्या है ? विस्तार से समझाइए।

उत्तर—व्हीलर प्रतिमान या मॉडल—व्हीलर (1970) ने पाठ्यचर्या प्रक्रिया के पाँच सोपान बताए हैं—

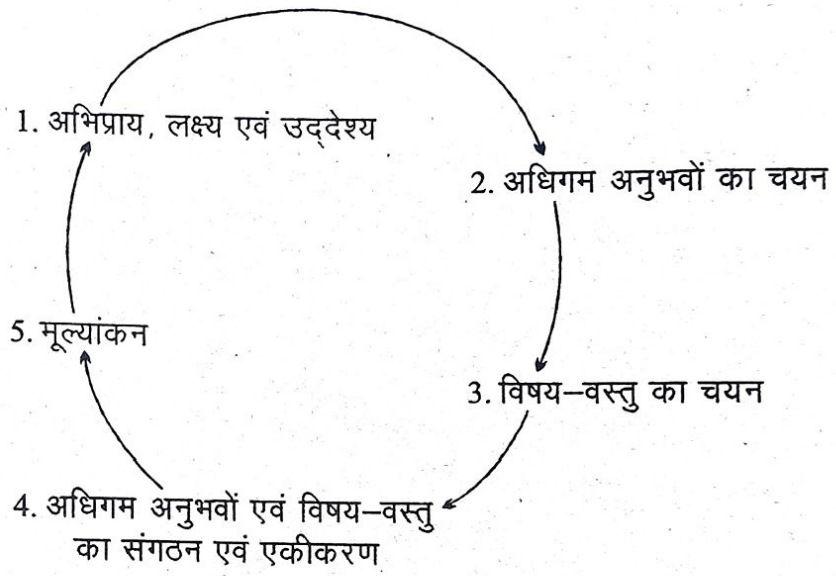
1. अभिप्रायों, लक्ष्यों एवं उद्देश्यों का चयन।

2. अधिगम अनुभवों का चयन जिनकी सहायता से अभिप्रायों, लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके।

3. विषय–वस्तु का चयन जिसके द्वारा निश्चित प्रकार के अनुभव प्रस्तुत किया जा सके।

4. अधिगम अनुभवों एवं विषय–वस्तु का विद्यालय एवं कक्षा के अंदर अध्ययन अधिगम प्रक्रिया के सन्दर्भ में संगठन एवं एकीकरण।

5. सोपान 2, 3 एवं 4 के सभी पहलुओं की प्रभाविता का प्रथम सोपान के लक्ष्यों की प्राप्ति में मूल्यांकन।



चित्र–सरल पाठ्यचर्या प्रक्रिया

प्रथम सोपान–अभिप्राय, लक्ष्य एवं उद्देश्य (First phase : Aims, Goals and Objectives)– पाठ्यचर्या प्रक्रिया की मुख्य कठिनाई सामान्य अभिप्रायों को कक्षा के विशिष्ट उद्देश्यों में परिवर्तित (Transition) करना है। यहाँ तीन सोपान प्रक्रिया आवश्यक है। अंतिम (Ultimate) लक्ष्यों को घोषित (Stated) किया जाना चाहिए, मध्यवर्ती लक्ष्य उत्पन्न किये जाते हैं, और अंतिम रूप में निकटस्थ (Proximate) लक्ष्यों को स्थापित किया जाता है ताकि विशिष्ट (Specific) उद्देश्यों को कक्षा स्तर पर नियोजित किया जा सके।

अंतिम लक्ष्य अपेक्षित परिणाम हैं जो व्यवहार के वर्गों के रूप में व्यक्त किये जाते हैं। वे अधिक सफलता के व्यवहार के अभिलेखों के विश्लेषण द्वारा एवं सामान्यीकरण द्वारा उत्पन्न किए जा सकेंगे। शिक्षाशास्त्रियों की ऐसी आशा है कि अंतिम लक्ष्य व्यवहार के वे प्रकार हैं जिन्हें विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने के परिणामस्वरूप प्रदर्शित करेंगे। वह वांछित कार्यों, अनुभूतियों, अभिवृत्तियों एवं ज्ञान के कथन हैं।

शैक्षिक कालांशों में दिए गए सोपानों में मध्यवर्ती लक्ष्य अपेक्षित व्यवहार के तरीके हैं। चूँकि व्यवहार के तरीके अधिगम अनुभवों से विकसित होते हैं। जिस व्यवहार की अपेक्षा हमें 16 वर्ष के बालक से होगी वही अपेक्षा हम 8 वर्ष के बालक से नहीं कर सकते। व्यवहार के मापदण्डों (Norms) की सहायता से मध्यवर्ती लक्ष्यों को स्थापित किया जा सकता है।

विशिष्ट कक्षाओं का चयन बिना किसी विशेष कक्षा के बच्चों की प्रकृति को जाने नहीं किया जा सकता है। बालक का निश्चित प्रकार से व्यवहार करना, बालक एवं उसके मनोवैज्ञानिक पर्यावरण

के मध्य अन्तर्क्रिया का परिणाम है। केवल बालक के अपेक्षित व्यवहार को ही ध्यान में नहीं रखा जाना चाहिए। पाठ्यचर्या प्रक्रिया का विकास अनेक सोपानों की शृंखला से होता है, उनमें से प्रत्येक सोपान के लिए प्रवेश व्यवहार (पूर्व ज्ञान) का ज्ञान आवश्यक होता है।

सोपान द्वितीय–अधिगम अनुभवों का चयन (Second Phase : The Selection of Learning Experiences)–सोपान प्रथम में स्थापित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए उपयुक्त अधिगम अनुभवों का चयन किया जाता है। व्हीलर ने अधिगम अनुभवों के चयन के लिए निम्न सात बिन्दुओं का निष्कर्ष दिया है–

1. वैधता (Validity)–अधिगम अनुभव वैध होने चाहिए। अधिगम अनुभव वैध उन स्थितियों में होते हैं जबकि वे अपेक्षित उद्देश्यों से संबंधित हों। अधिगम अनुभव ऐसे भी होने चाहिए जिन्हें क्रियान्वित किया जा सके। ऐसे अनेक व्यवहार होते हैं जो शैक्षिक रूप से महत्वपूर्ण होते हैं, किन्तु उन्हें परम्परागत विद्यालयीन विषयों के अध्ययन से प्राप्त नहीं किया जा सकता है। अतः हमें इन्हें परिणामों से संबंधित करने के लिए प्रत्यक्ष व्यवस्था करनी होगी। यदि विद्यार्थियों में तथ्य एवं अभिवृत्ति में भेद करने की क्षमता विकसित करना हो तब हमें पाठ्यचर्या में इस प्रकार के अभ्यास देना होगा। यदि विद्यार्थियों में उत्तरदायित्वपूर्ण निर्णय लेने की क्षमता का विकास करना है, तब विद्यार्थियों को निर्णय लेना तथा परिणामों का पालन करने की अनुमति देनी होगी। भावात्मक क्षेत्र के अन्तर्गत अभिवृत्ति, विश्वासों एवं मूल्यों का चयन किया जाता है। मनोगामक क्षेत्र के अंतर्गत समूह कौशलों एवं अन्तर्वैयक्तिक संबंध आते हैं। संज्ञानात्मक क्षेत्र के अन्तर्गत अध्यापक को ज्ञान, व्यापकता, अनुप्रयोग, संश्लेषण एवं मूल्यांकन को विकसित करने के लिए अलग–अलग अधिगम अनुभवों का चयन करना चाहिए।

2. व्यापकता (Comprehensiveness)–अधिगम अनुभवों की व्यापकता से तात्पर्य है कि उनका चयन इस प्रकार से किया जाना चाहिए ताकि पाठ्यचर्या में घोषित प्रत्येक उद्देश्य के लिए उपयुक्त अधिगम अनुभव का चयन हो सके। प्रायः यह देखा गया है कि शैक्षिक उद्देश्यों की सूची तो तैयार की जाती है। किन्तु, उन्हें कार्य रूप में परिणित करने के लिए उपयुक्त अधिगम अनुभव का चयन नहीं किया जाता। प्रायः यह होता है कि उच्च स्तर की प्रक्रियाओं; जैसे–अनुप्रयोग, संश्लेषण, विश्लेषण एवं मूल्यांकन के लिए कोई प्रावधान नहीं होता।

3. विविधता (Variety)–अनुभव की विविधता का व्यापकता से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। चूँकि बालक पूर्ण प्राणियों के रूप में कार्य करते हैं इसलिए अधिगम चुनाव अधिगमक के पूर्ण विकास के परिप्रेक्ष्य में किया जाना चाहिए। बालकों में व्यक्तिगत भिन्नताएँ होती हैं। भिन्न–भिन्न प्रकार के बालक भिन्न–भिन्न विधियों से सीखते हैं। इसी कारण, अधिगम अनुभवों में विविधता होनी चाहिए ताकि बालकों की व्यक्तिगत भिन्नताओं की समस्या का समाधान किया जा सके।

विकासात्मक अध्ययन भी यही बताते हैं कि बालकों की न केवल अधिगम आवश्यकताओं में अंतर होता है अपितु वे अलग गतियों एवं विधियों से सीखते हैं। यह सब अनुभवों में विविधता की ओर संकेत करते हैं। अधिगम अनुभवों में जितनी ज्यादा विविधता होगी उतनी अधिक बालकों की सन्तुष्टि होगी। बालक अलग–अलग गृह पृष्ठभूमियों से अध्ययन के लिए आते हैं।

यदि विद्यार्थियों के व्यवहार को बदलना है, तब उनकी रुचियों की सन्तुष्टि के लिए कार्य करना विद्यालय का एक महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व होगा।

4. उपयुक्तता (Suitability) –अधिगम अनुभवों का उपयुक्त होना आवश्यक है। अधिगम अनुभव बालक एवं कक्षा दोनों ही दृष्टियों से उपयुक्त होना चाहिए। छात्रों के समूहों के अनुदैर्ध्य

(Longitudinal) एवं आयु समूहों के निरीक्षण से तथा केस अध्ययनों से मानव के सामान्य विकास क्रम के सम्बन्ध में काफी अंश तक ठीक–ठीक अनुमान लगाना सम्भव हो सका है।

बचपन में बालक के जीवन में समाज की माँग उसके मनोवैज्ञानिक विकास से अन्तर्क्रिया करती है, जिससे वह अपने आन्तरिक एवं बाह्य संसार का प्रत्यक्षण करता है। बालक का अपना संसार होता है, जो वयस्कों के संसार से भिन्न होता है। सम्भवतः यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि वह अलग–अलग स्तरों पर अलग–अलग संसारों से होकर गुजरता हुआ वयस्कों के संसार में पहुँचता है। अतः वे अधिगम अनुभव ही बालक के लिए उपयुक्त होंगे जो उसकी उम्र के अनुसार हो।

5. प्रतिरूप (Pattern)–विभिन्न अधिगम अनुभवों के पारस्परिक सम्बन्ध एवं तारतम्य को प्रतिरूप कहते हैं। अभिवृद्धि के निर्धारण में प्रतिरूप को ध्यान में रखना आवश्यक होता है। अधिगम अनुभवों के चुनाव के समय प्रतिरूप के दो पहलुओं–(1) दिये गये समय में बालक की मापी गयी विशेषताएँ एवं (2) समय के साथ होने वाले परिवर्तन के अन्तर्सम्बन्धों को ध्यान में रखना चाहिए। प्रतिरूप के प्रमुख पक्ष भिन्न हैं–

(1) सन्तुलन, (2) सततता, (3) प्रायोगिक सततता, (4) संचय, (5) अधिगम अनुभवों की पुनरावृत्ति एवं (6) बहु–अधिगम।

(1) सन्तुलन (Balance) –मानव अभिवृद्धि प्रक्रिया एवं पर्यावरण के मध्य की अन्तर्क्रिया के द्वारा परिपक्वता की ओर बढ़ता है, परिपक्वता पाने के लिए निश्चित अनुभवों की आवश्यकता होती है। इनमें से कुछ विद्यालय के बाहर पाये जायेंगे, किन्तु विद्यार्थी की अंगीय एकता (Orgnic unity) के लिए विकास के सभी पहलुओं में न्यूनतम अनुभवों की आवश्यकता होती है जिन्हें विद्यालय को प्रदान करना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता है, तब असन्तुलन की स्थिति निर्मित हो जाती है। गतिविधियों का सन्तुलन अलग–अलग कालांशों में व्यक्ति–दर–व्यक्ति बदलेगा।

(2) सततता (Continuity)–अधिगम एक सतत् प्रक्रिया है। प्रत्येक अनुभव अलग से निर्धारित नहीं किया जा सकता, प्रत्येक नवीन अनुभव पर पूर्व के अनुभव का प्रभाव कम अथवा ज्यादा अवश्य पड़ता है। जब अनुभवों का प्रत्यक्षण असतत् और असम्बन्धित रूप में किया जाता है, तब विद्यार्थी प्रयोजन अथवा क्रम का भान (Consciousness) खो देता है और परिणामस्वरूप उसका अधिगम प्रभावित होता है। यह सततता न केवल विद्यालयीन अनुभवों में होनी चाहिए। अपितु विद्यालय के बाहर के अनुभवों में भी होनी चाहिए। विकास विद्यालयीन एवं विद्यालय के बाहर दोनों की अनुभवों से प्रभावित होता है।

अनुभवों की सततता अन्तिम (Eventual) परिणामों के परिप्रेक्ष्य में विषय–सामग्री की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण है। अनुभवों की सततता (जो कि विषय–वस्तु में क्रम के समतुल्य है) व्यवहार परिवर्तन की एक स्थिति है। विषय सामग्री का क्रम केवल तभी महत्वपूर्ण है जब वह अनुभवों का प्रतिनिधित्व करें जिनसे विशिष्ट परिणाम प्राप्त हों।

(3) प्रायोगिक सततता (Practical continuity)–कक्षा में प्रायोगिक सततता भी होनी चाहिए। सततता का सिद्धांत यह माँग करता है कि कालांश पर्याप्त लंबा होना चाहिए ताकि वह अनुभवों से सम्बन्ध स्थापित कर सकें और उद्देश्यों की प्राप्ति की ओर प्रगति की जा सकें। यह पूर्व में बिना उद्देश्यों के ज्ञान के निश्चित नहीं किए जा सकते हैं।

(4) संचय (Cumulation)–अधिगम अनुभव परस्पर एक–दूसरे से सम्बन्धित होते हैं। कोई भी अनुभव विशुद्ध रूप से किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति नहीं करता अपितु विभिन्न अधिगम अनुभव किसी एक दूरगामी उद्देश्य की पूर्ति में सहायक होते हैं। प्राथमिक कक्षाओं में छात्रों को कक्षा को स्वच्छ रखने, दूध वितरित करने अथवा पौधों, पशुओं एवं फूलों की देखरेख का उत्तरदायित्व सौंपा

जाता है। माध्यमिक कक्षाओं में उन्हें सामाजिक एवं खेलकूद की गतिविधियाँ आयोजित करने का उत्तरदायित्व सौंपा जाता है। इस प्रकार के संचित प्रयास से अंतिम उद्देश्य की पूर्ति की जा सकती है।

(5) अनुभवों की पुनरावृत्ति (Repetition of experiences) –शिक्षा का उद्देश्य केवल किन्हीं निश्चित व्यवहार प्रतिरूपों को निर्मित करना ही नहीं है अपितु इसका अभ्यास कराना एवं आदत डालना भी है। अतः अधिगम अनुभवों की पुनरावृत्ति करना उपयोगी है। पुनरावृत्ति की प्रक्रिया वैज्ञानिक, गणितीय, साहित्यिक, ऐतिहासिक, व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याओं के साथ–ही–साथ अलग–अलग सामग्रियों एवं क्षेत्रों में अपनायी जा सकती है। विद्यार्थियों को इस योग्य बनाया जाना चाहिए ताकि वे एक क्षेत्र में अर्जित ज्ञान का उपयोग अन्य क्षेत्रों में कर सकें।

(6) बहु–अधिगम (Multiple learning)–चूँकि अधिगमक एक पूर्ण प्राणी है, अनेक अधिगम साथ–साथ घटित होते है। यदि विद्यार्थी को सम्राट अकबर के बारें में पढ़ाया जा रहा हो तब वे उस समय की भौगोलिक स्थिति, परम्पराओं, शासन प्रणाली, साहित्य, युद्ध कौशल, इत्यादि सभी का साथ–साथ अध्ययन करते हैं। ब्लूम का यह मानना है कि संज्ञानात्मक क्षेत्र के उद्देश्यों की पूर्ति के समय भावात्मक क्षेत्र में भी अधिगम होता है, इन्हें अलग नहीं किया जा सकता है।

6. जीवन से सम्बद्ध (Relevance to life) –अधिगम अनुभवों का जीवन से अधिकतम संबंध होना चाहिए। यह संबंध न केवल भावी जीवन के लिए होना चाहिए अपितु इनका वर्तमान जीवन से भी सम्बन्ध होना चाहिए। अधिगम का स्थानांतरण अधिकतम तब होगा जबकि अधिगम स्थितियाँ उन स्थितियों के समान हों जिसमें उनका उपयोग किया जाना हो। अतः ऐसे परिप्रेक्ष्यों को चयन किया जाना चाहिए जिससे अधिगमक अपने जीवन में उनका उपयोग कर सकें।

7. नियोजन में शिक्षार्थियों की सहभागिता (Pupil participation in planning) –शिक्षार्थियों की नियोजन में सहभागिता अवश्य होनी चाहिए। यदि शिक्षार्थी की नियोजन में सहभागिता होगी तब शिक्षार्थी उसमें सहर्ष भाग लेगा एवं उसे अपना कार्यक्रम समझेगा। यदि ऐसा न किया गया तब वह दबाव में आकर अनिच्छा से भाग लेगा। परिणामस्वरूप उसके अधिगम परिणाम न्यून होंगे। शिक्षार्थियों का सहभागित्व तीन स्तरों पर हो सकता है–

(1) पूरे समूह का सहभागित्व,

(2) लघु समूह का विशिष्ट क्षेत्रों में सहभागित्व एवं

(3) व्यक्तिशः सहभागित्व।

इसमें शिक्षक की भूमिका निर्देशक की होती है।

सोपान तृतीय–विषय–वस्तु का चयन (Third phase : The selection of content)–पाठ्यचर्या निर्माताओं के लिए विषय–वस्तु का चयन महत्वपूर्ण बिन्दु है। विषय–वस्तु का चुनाव करने के लिए व्हीलर ने निम्न निष्कर्ष दिया है–

1. वैधता (Validity)–विषय–वस्तु उस समय वैध होगी जबकि यह वांछित परिणामों को प्राप्त करने में सहायता करे। वैधता के दृष्टिकोण से विषयों के साथ–साथ उनके अंश भी लिए जा सकते हैं। **उदाहरण के लिए,** यदि इतिहास अध्ययन का उद्देश्य विद्यार्थियों को तथ्यों को उसी दृष्टिकोण से देखने के लिए प्रोत्साहित करना है जिस दृष्टिकोण से इतिहासकार देखते हैं, तब किसी निश्चित काल का अध्ययन के लिए चयन किया जा सकता है।

विषय–वस्तु की वैधता के दूसरे पक्ष का संबंध विषय–वस्तु की प्रामाणिकता (Authenticity) से है। विषय–वस्तु उस सीमा तक वैध होगी जिस सीमा तक उसकी विषय–वस्तु सत्य है। आज ज्ञान में

द्रुत गति से परिवर्तन हो रहे हैं। इस परिवर्तन के कारण तथ्यों एवं मूल संकल्पनाओं में भी परिवर्तन हो रहा है। इस कारण से प्रत्येक ज्ञान का महत्व शाश्वत् न होकर अस्थायी होता है। अतः विषय–वस्तु की वैधता की जाँच के लिए उसका परीक्षण बार–बार किया जाना चाहिए।

वैधता से सम्बन्धित तीसरा बिन्दु विषय–वस्तु की त्रुटि है। कई बार वैध एवं उपयोगी विषय वस्तु को भी पाठ्यचर्या में स्थान नहीं दिया जाता है। ऐसा प्रायः व्यावहारिक विज्ञानों में किया जाता है। **उदाहरणार्थ**—मानवशास्त्र (Anthropology) संस्कृति, संस्कृति परिवर्तन मानव प्रकृति एवं मानव मूल्यों के बारे में उपयोगी विषय–वस्तु प्रदान करती है। किन्तु उसका उपयोग सामाजिक अध्ययन की पाठ्यचर्या में नहीं किया जाता है। **टाबा** (1962) ने बताया कि समूहों, समाज और समुदाय, साथ–ही–साथ सामाजिक प्रक्रियाएँ मानव परिस्थिति व्यक्तित्व, समाजीकरण की प्रक्रिया आदि संकल्पनाओं को पहली कक्षा की पाठ्यचर्या में शामिल किया जाना चाहिए तथा क्रमशः इन विचारों का विकास एवं एकीकरण अगली कक्षाओं में किया जा सकता है। इसी प्रकार से उन संस्थाओं में जिनका प्राथमिक संबंध अधिगम से होता है, वे अधिगम प्रक्रियाओं, पठन कौशलों, कार्य एवं अध्ययन आदतों संबंधी विषय–सामग्री की उपेक्षा करती है।

महत्व (Significance) —विषय–वस्तु चयन का दूसरा निष्कर्ष विषय–वस्तु के महत्व से संबंधित है। विषय–वस्तु का महत्व तब होगा जब वह तार्किक रूप से अनेक समस्याओं के समाधान के लिए प्रयुक्त की जा सके। किसी विषय का महत्व उसकी आधारभूत संकल्पनाओं एवं उस विषय से संबंधित उन सिद्धांतों से होता है जो उसकी सीमाओं को पाटकर उसे अन्य क्षेत्रों तक ले जाते हैं। जैसे पारिस्थितिकी का उपयोग शिक्षा, समाजशास्त्र एवं जीवविज्ञान में किया जाता है।

2. गौण निकस (Minor Criteria) —विद्यार्थी की आवश्यकताएँ एवं रुचियाँ न केवल विषय–वस्तु चयन का निकष है अपितु पाठ्यचर्या उन्मुखीकरण के भी आधार हैं। इन दोनों में से कोई भी विषय–वस्तु चयन का मूल निकष नहीं हो सकता है। इसलिए इसे पूरक अथवा गौण निकष के रूप में ही स्वीकार किया गया है। विषय–वस्तु के पूर्व निकष पर खरी उतरने के बाद ही इस निकष पर उसका परीक्षण किया जाना चाहिए। अलग–अलग उम्र समूह के विद्यार्थियों की रुचियाँ भी अलग–अलग होती है। अन्य निकषों की पूर्ति होने पर विषय–वस्तु हेतु इन रुचियों पर ध्यान दिया जाना चाहिए। इसी प्रकार कक्षा स्तर पर विषय–वस्तु का चयन अधिगमकों की रुचियाँ या तो सम्पूर्ण समूह के आधार अथवा उनकी व्यक्तिगत रुचियों के आधार पर किया जाना चाहिए।

3. उपयोगिता (Utility) —विषय–वस्तु शिक्षार्थियों के लिए उपयोगी होनी चाहिए। विशिष्ट एवं व्यावसायिक शिक्षा में इस निकष का उपयोग किया जाता है। कुछ व्यवसायों एवं प्रशिक्षण संस्थाओं में विषय–वस्तु से संबंधित समझ एवं कौशलों की आवश्यकता होती है। स्पष्ट रूप से इन संस्थाओं में विषय–वस्तु आंशिक रूप से पूर्व में ही तय कर ली जाती है। साथ ही इन संस्थाओं में प्रवेश के लिए विद्यार्थियों में निश्चित स्तर की योग्यता की आवश्यकता होती है। विषय–वस्तु निर्धारित रहने के बावजूद उसे कैसे पढ़ाया जाये इसकी पूर्ण स्वतंत्रता अध्यापक को होती है।

4. सीखने के योग्य होना (Learnability)—सीखने के योग्य होना एवं कठिनाई एक ही सिक्के के दो पहलू है। हालाँकि दोनों में अंतर होता है। कठिनाई को प्रायः सांख्यिकीय शब्दावली में इस प्रकार से व्यक्त किया जाता है कि विषय–वस्तु 9 वर्ष के बालक के लिए उपयुक्त है अथवा 6 वीं कक्षा के लिए अध्यापक के दृष्टिकोण में सीखने के योग्य होना व्यक्तिगत मामला है। कठिनाई स्तर से विषय–वस्तु की गुणवत्ता का पता नहीं चलता है।

5. सामाजिक वास्तविकताओं से संगति (Consistency with social realities)—**टाबा** (1962) ने बताया कि ऐसी विषय–वस्तु का चयन किया जाना चाहिए, जो हमारे आसपास के संसार का सर्वाधिक उपयोगी उन्मुखीकरण प्रदान करे।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि पहले हमें विद्यालय में पढ़ाये जाने वाले विषयों को निश्चय करना होगा और दूसरे उन विषयों का निश्चय जिन्हें विद्यार्थी अपनी रुचि के अनुसार चुनेंगे।

सोपान चतुर्थ–अनुभवों एवं विषय–वस्तु का संगठन एवं एकीकरण (Fourth phase : Organization and integration of experiences and content)—सोपान चतुर्थ का संबंध शैक्षिक क्रमों से होता है, अर्थात् चयनित अधिगम अनुभवों का विषय–वस्तु के साथ क्रम जिन्हें निश्चित व्यवहार उत्पन्न करने के लिए नियोजित किया गया हो। वर्तमान पाठ्यचर्या में संगठन का सिद्धांत उपस्थित नहीं है अपितु प्रत्येक प्रकार की पाठ्यचर्या विभिन्न बिंदुओं पर केन्द्रित है। विषय पाठ्यचर्या विद्यालयीन विषयों एवं उनके आंतरिक भागों पर केन्द्रित है, गतिविधि पाठ्यचर्या रुचियों पर केन्द्रित है, सत पाठ्यचर्या जीवन के क्षेत्रों अथवा सामाजिक कार्यों एवं समस्याओं पर केन्द्रित है। गतिविधि पाठ्यचर्या में व्यक्ति की आवश्यकता पर बल दिया गया है, तथा सत पाठ्यचर्या में सामाजिक आवश्यकताओं पर बल दिया गया।

सोपान चतुर्थ प्रत्यक्ष रूप से अध्यापन–अधिगम स्थिति में ले जाता है। इस सोपान को संचालित करने वाले सिद्धांत सामान्य अधिगम स्थितियों एवं विशेषकर विद्यालय एवं कक्षा से उत्पन्न होंगे। जबकि संगठन प्रयोजनों से निर्मित होता है, पाठ्यचर्या निर्माता द्वारा वापस सोपान द्वितीय एवं तृतीय में अपने विश्लेषण को भेज दिया जाता है।

सोपान प्रथम में की गयी गतिविधियाँ सामान्य अभिप्रायों में अन्तर्निहित (Implicit) व्यवहार एवं व्यवहार के तरीकों को बतायेंगी। सोपान द्वितीय की गतिविधियाँ अधिगम अनुभवों के प्रकारों को बतायेंगी। विशेषकर क्या व्यवहार निर्धारित किए गए हैं, साथ–ही–साथ विभिन्न विषयों की बुनियादी संरचना पर विषय–वस्तु का विस्तृत विश्लेषण कुछ प्रकाश डालेगा। ऐसी संकल्पनाओं एवं सामान्यीकरणों जो कि एक से अधिक विषयों के लिए समान हो, की आगे खोज की आवश्यकता होगी।

सोपान पंचम–मूल्यांकन (Fifth phase : Evaluation)—पाठ्यचर्या प्रक्रिया का अंतिम सोपान मूल्यांकन होता है। मूल्यांकन द्वारा शैक्षिक कार्यक्रम की सफलता अथवा असफलता के बारे में निष्कर्ष निकाले जाते हैं। मूल्यांकन के द्वारा व्यवहार परिवर्तन का मापन किया जाता है। प्रस्तुत सोपान का कार्य अनेक शीर्षकों में निर्धारित किया जाता है। सर्वप्रथम निश्चित लक्ष्य घोषित किए जाते हैं।

औपचारिक शिक्षा के परिणामस्वरूप निश्चित व्यवहार परिवर्तन अपेक्षित होते हैं। क्या वे वास्तव में होते हैं ? क्या विद्यार्थी ने वास्तव में तथ्यों, ज्ञान, कौशलों, अभिवृत्तियों, विश्वासों एवं वांछित मूल्यों को अर्जित किया ? और क्या उसने आदतन अपेक्षित प्रकार से अनुक्रिया की ? साथ–ही–साथ इस बात का भी पता लगाया जाता है कि क्या चुने गए अनुभव लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उपयुक्त थे अथवा अन्य अनुभव, शायद अधिक उपयुक्त होते ? क्या चुनी गयी विषय–वस्तु उपयुक्त थी अथवा अन्य विषय–वस्तु अधिक उपयुक्त होती ? क्या विषय–वस्तु एवं अनुभवों का एकीकरण प्रभावी था अथवा क्या संबंधित क्षेत्रों की विषय–वस्तु खण्ड रूप में सीखी गयी ? उपयोग में लाये गये संगठन से किस प्रकार की सहवर्ती अधिगम उत्पन्न हुआ ? क्या अलग प्रकार के संगठन से वांछित दिशा में अधिकतम परिवर्तन कुछ या सभी विद्यार्थियों के लिए उत्पन्न किया जा सकता था ? इस प्रकार के अनेक प्रश्नों का उत्तर मूल्यांकन से प्राप्त होता है।

●●

अध्याय 6



पाठ्यक्रम प्रकल्प

लघु एवं दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. पाठ्यक्रम प्रकल्प से क्या आशय है ? इसके प्रकार बताइए।

***अथवा*, पाठ्यक्रम प्रकल्प के सोपानों को विस्तार से समझाइए।** (रीवा 2022; भोपाल 22)

***अथवा*, पाठ्यक्रम प्रकल्प के विभिन्न स्रोत क्या हैं ? विवेचना कीजिए।**

***अथवा*, पाठ्यक्रम संरचना के अंगों का वर्णन कीजिए।** (रीवा 2022)

***अथवा*, पाठ्यचर्या अभिकल्प के घटकों को परिभाषित कीजिए।** (इन्दौर 2023)

***अथवा*, पाठ्यक्रम अभिकल्प को समझाइए।** (छतरपुर 2022)

***अथवा*, विभिन्न पाठ्यक्रम संरचनाओं के सोपान लिखिए।** (छतरपुर 2022)

***अथवा*, पाठ्यचर्या डिजाइनिंग क्या होती है ?** (भोपाल 2022)

उत्तर– पाठ्यक्रम प्रकल्प का आशय–जे. एम. ली के अनुसार, पाठ्यक्रम की संरचना का निर्माण छः पृथक् तत्त्व मिलकर करते हैं। ये तत्व हैं–आयोजन या प्रकल्प (Design), क्षेत्र (Scope), अनुक्रम (Sequence), सातत्य (Continuity), सन्तुलन अथवा विस्तार (Balance or Range) तथा एकीकरण (Integration) पाठ्यक्रम का आयोजन जिस ढंग से किया जायेगा, वह पाठ्यक्रम को एक स्वरूप प्रदान करेगा। इस प्रकार आयोजन के तरीकों में जितने प्रकार के अन्तर या भेद हो सकते हैं, उतने ही प्रकार के पाठ्क्रम के स्वरूप होंगे। दूसरे शब्दों में, उतने ही पाठ्यक्रम के प्रकार होंगे।

सेलर एवं **एलेक्जेण्डर** ने पाठ्यक्रम आयोजन के प्रकल्प के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है– "पाठ्यक्रम प्रकल्प वह ढाँचा या संरचना है जिसका विद्यालय में शैक्षिक अनुभवों के चुनने, नियोजित करने तथा कार्यान्वित करने में प्रयोग किया जाता है। अतः प्रकल्प वह योजना है जिससे सीखने की क्रियाओं को प्रदान करने के लिए शिक्षक द्वारा अनुसरण किया जाता है।"

अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रकल्प (Design) वह ढंग है जिसको अपनाकर सीखने के अनुभवों एवं चयनित अन्तर्वस्तु को संगठित तथा निर्मित किया जाता है।

पाठ्यक्रम प्रकल्प के प्रकार–ओरेन्स्टीन एवं **हॉकिन्स** के अनुसार, सभी पाठ्यक्रम प्रकल्प तीन आधारभूत प्रकार के अभिकल्पों में संशोधन एवं समन्वयन के द्वारा प्राप्त किये जा सकते हैं। ये तीन आधारभूत पाठ्यक्रम प्रकल्प निम्न हैं–

पाठ्यक्रम प्रकल्प

- विषय केन्द्रित प्रकल्प (Subject Centered Design)
  - विषय–वस्तु (Subject matter)
  - अनुशासन (Discipline)
  - विस्तृत क्षेत्र (Broad field)
  - सह–संबंधात्मक (Correlational)
- अधिगमकर्ता केन्द्रित प्रकल्प (Learner Centered Design)
  - बाल–केन्द्रित (Learner centered)
  - गतिविधि केन्द्रित (Activity centered)
  - अनुभव केन्द्रित (Experience centered)
- समस्या केन्द्रित प्रकल्प (Problem Centered Design)
  - मानवतावादी (Humanistic)
  - दैनिक परिस्थिति केन्द्रित (Daily life situations centered)
  - समाज केन्द्रित (Society centered)

पाठ्यचर्या अभिकल्प के स्रोत (भोपाल 2022)— पाठ्यचर्या अभिकल्प के मुख्यतः चार स्रोत बताये जाते हैं—

(1) विज्ञान, (2) समाज, (3) शाश्वत् स्रोत, (4) ज्ञान।

(1) विज्ञान (Science)— विज्ञान को पाठ्यचर्या का स्रोत माना जाता है। इसके लिए वैज्ञानिक विधि का उपयोग किया जाता है। पाठ्यचर्या में वास्तविकता के उन तत्वों का चयन एवं व्यवस्था करते हैं जिन्हें निरीक्षित एवं परिमाणित किया जा सके।

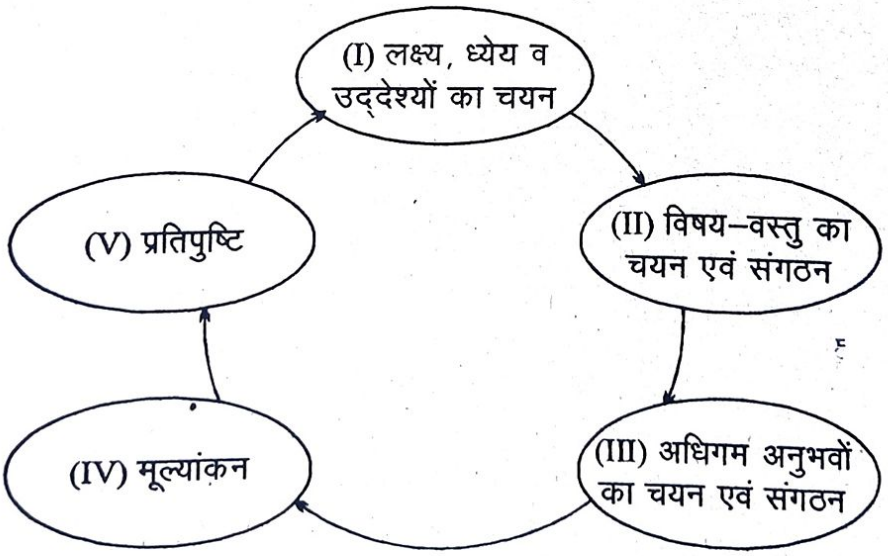
(2) समाज (Society) —समाज को भी पाठ्यक्रम स्रोत के रूप में अपनाया जाता है क्योंकि विद्यालय ही समाज का अभिकर्ता है। अतः विद्यालय को पाठ्यचर्या के लिये किंवार सामाजिक स्थितियों के विश्लेषण से प्राप्त करना चाहिए। पाठ्यचर्या एवं अनुदेशन सामग्री में संशोधन भी बदलती सामाजिक स्थितियों के कारण होते हैं।

(3) शाश्वत् स्रोत (Eternal source) — शाश्वत् स्रोतों का अर्थ दर्शन पर आधारित उस सत्य से है जिसकी अनुशंसा महान व्यक्तियों द्वारा पूर्व में की गयी है। इन प्रकल्पों में विषय–वस्तु पर बल दिया जाता है।

(4) ज्ञान (Knowledge) — **हॉकिन्स** व **हरबर्ट स्पेन्सर** ने प्रकल्प के स्रोत के रूप में ज्ञान को भी महत्व दिया है।

बेलक ने विभिन्न संकायों एवं पाठ्यचर्या संरचना तथा ज्ञान के संबंध का परीक्षण किया। जहाँ अनुशासित ज्ञान की निश्चित संरचना एवं विधि होती है, वहीं गैर अनुशासित ज्ञान की कोई निश्चित विषय–वस्तु नहीं होती।

पाठ्यक्रम प्रकल्प के सोपान (Steps of Curriculum design) — पाठ्यचर्या प्रकल्प के निम्नलिखित सोपान होते हैं—



नोट—उपरोक्त सोपानों का विवरण अध्याय–4 'पाठ्यक्रम विकास एवं पाठ्यक्रम के निर्धारक' में दिया जा चुका है।

प्रश्न 2. पाठ्यक्रम में अन्तर्वस्तु चयन करने का मूल आधार क्या है ? वर्णन कीजिए।
***अथवा*, अन्तर्वस्तु चयन प्रक्रिया के पद संक्षेप में लिखिए।**

उत्तर—अन्तर्वस्तु के चयन के लिए प्रस्तावित मानदण्ड को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—

1. मुख्य मानदण्ड–इसके अन्तर्गत दो बिन्दु हैं– (i) वैधता एवं (ii) महत्व।

2. गौण मानदण्ड–इसके अन्तर्गत चार बिन्दु हैं– (i) शिक्षार्थी की आवश्यकतायें एवं अभिरुचियाँ, (ii) उपयोगिता, (iii) अधिगम योग्यता, (iv) सामाजिक तथ्यों के साथ संगति।

1. मुख्य मानदण्ड (Main Criteria) –

(i) वैधता (Validity) –वैधता उस विषय–वस्तु या सामग्री की प्रामाणीकता को दर्शाती है, जिसे हमने चुना है।

वैधता के अर्थ में दृष्टिकोणों के आधार पर भिन्नता हो सकती है। जहाँ तक अन्तर्वस्तु का संबंध है, वैधता को तीन अर्थों में देखा जा सकता है–

(a) तकनीकी दृष्टिकोण–तकनीकी दृष्टिकोण से वैधता का तात्पर्य अन्तर्वस्तु और अपेक्षित लक्ष्यों के गहन संबंध से लिया जाना चाहिए। इस दृष्टि से उसी अन्तर्वस्तु को वैध कहा जा सकता है जो अपेक्षित उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक हो। वैधता के इस दृष्टिकोण में सम्पूर्ण विषयों के साथ–साथ उनके अंश भी लिये जा सकते हैं।

(b) अन्तर्वस्तु की प्रमाणिकता – मानव ज्ञान में जितनी तीव्रता से वृद्धि हो रही है, उतनी ही तेजी से वह बदलता भी जा रहा है। अतः वैधता की दृष्टि से अन्तर्वस्तु की प्रामाणिकता सिद्ध करने हेतु उसका निरन्तर निरीक्षण किया जाना चाहिए। ऐसा न करने पर प्रामाणिकता समाप्त होने पर भी हम उस अन्तर्वस्तु को पाठ्यक्रम में परम्परागत रूप से स्थान प्रदान करते रहेंगे जो अनुपयुक्त होगा।

(ii) महत्व (Importance) –अन्तर्वस्तु के चयन के प्रमुख मानदण्ड का दूसरा बिन्दु उसके महत्व से संबंधित है। किसी विषय–वस्तु के महत्व का पता लगाने के लिए दो बातों की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक होता है–

(a) उस विषय की आधारभूत संकल्पनायें एवं अवधारणायें क्या हैं ?

(b) उस विषय से संबंधित वे कौन–से सिद्धान्त हैं जो उनकी सीमाओं को पार करके दूसरे क्षेत्रों तक भी पहुँचते हैं ?

इन दो प्रश्नों के उत्तर पाठ्यक्रम निर्धारकों को इस बात की जानकारी दे सकेंगे कि आलोच्य अन्तर्वस्तु का उपयोग समस्याओं के समाधान अर्थात् उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कितने व्यापक क्षेत्र में किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त इनसे तथ्यों को समझने, उन्हें व्यवस्थित करने, उनके पारस्परिक संबंधों को ज्ञात करने, पूर्वानुमान लगाने तथा नवीन ज्ञान की खोज करने में सहायता मिल सकेगी।

2. गौण मानदण्ड (Secondary Criteria) –

(i) शिक्षार्थी की आवश्यकतायें एवं अभिरुचियाँ– शिक्षार्थियों की आवश्यकतायें तथा अभिरुचियाँ केवल अन्तर्वस्तु के चयन के लिए ही नहीं, अपितु पाठ्यक्रम की पुनर्स्थापना की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण मानदण्ड हैं। चूँकि इनकी विश्वसनीयता के बारे में आश्वस्त नहीं हुआ जा सकता है इसलिए इन्हें अन्तर्वस्तु के चयन का मुख्य मानदण्ड न मानकर गौण मानदण्ड के रूप में स्वीकार किया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि इनका प्रयोग उसी अन्तर्वस्तु के लिए किया जाना चाहिए जो मुख्य मानदण्ड के आधार पर सन्तोषजनक सिद्ध हो चुकी हों। इसके अतिरिक्त इनका उपयोग समान स्तर की वैकल्पिक अन्तर्वस्तुओं में से किसी एक का चयन करने की सुविधा की दृष्टि से भी किया जा सकता है।

(ii) उपयोगिता–सामान्यतः उपयोगिता का मानदण्ड सभी विषयों पर लागू किया जा सकता है किन्तु विशिष्ट तथा व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में इसकी स्थिति अधिक स्पष्ट रहती है। इन क्षेत्रों में विषय–वस्तु का एक निश्चित सीमा में निर्धारण पहले से ही हुआ रहता है तथा प्रवेश के समय ही शिक्षार्थियों से एक निश्चित स्तर की योग्यता रखने की अपेक्षा पूर्ण कर ली जाती है, किन्तु विषय–वस्तु

का पहले से ही निर्धारण होने पर भी शिक्षण विधि के बारे में कोई दृढ़ता नहीं होती है। अतः शिक्षण विधियों के चयन के संबंध में उपयोगिता का मानदण्ड लागू किया जा सकता है।

(iii) अधिगम योग्यता—अन्तर्वस्तु के संबंध में अधिगम योग्यता एवं कठिनता का स्तर एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इनमें अन्तर केवल इतना है कि कठिनता स्तर की बात वर्ग के स्तर से संबंधित होती है तथा इसके अन्तर्गत यह देखा जाता है कि एक विशेष अर्न्तवस्तु किसी कक्षा विशेष के लिए उपयुक्त है अथवा नहीं, जबकि अधिगम योग्यता प्रायः व्यक्तिगत स्तर से संबंधित होती है तथा इसके अन्तर्गत अन्तर्वस्तु की उपयुक्तता को शिक्षार्थी की वैयक्तिकता की दृष्टि से देखने का प्रयास किया जाता है।

(iv) सामाजिक तथ्यों के साथ संगति—अन्तर्वस्तु के चयन में भी उद्देश्यों एवं अधिगम अनुभवों की तरह ही परिवेश अर्थात् सामाजिक तथ्यों के साथ संगति का विशेष महत्व है। अन्तर्वस्तु के चयन में इस मानदण्ड को भी एक आधार बनाया जाना चाहिए।

अन्तर्वस्तु चयन प्रक्रिया के पद (Steps in the Process of Selection of Content)—अन्तर्वस्तु के चयन की प्रक्रिया के दो मुख्य पद होते हैं—

प्रथम पद— 1. विद्यालय में पढ़ाए जाने वाले विषयों का निश्चय।

2. उन विषयों का निश्चय जिनमें से छात्र अपनी रुचि के अनुसार वैकल्पिक चयन कर सकें।

द्वितीय पद—प्रत्येक विषय के शिक्षण के लिए समय की अवधि का निर्धारण।

प्रश्न 3. पाठ्यक्रम के श्रेणीकरण पर निबंध लिखिए।

***अथवा*, श्रेणीबद्धता के आधार पर पाठ्यक्रम को कितने भागों में बाँटा जाता है ?**

***अथवा*, माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम कैसा होना चाहिए ? विस्तृत वर्णन कीजिए।** **(जबलपुर 2021; उज्जैन 22)**

उत्तर—पाठ्यक्रम की संरचना निर्धारित करते समय इसे कई श्रेणियों में विभाजित किया जाता है। ये श्रेणियाँ निम्न होती हैं—

1. प्राथमिक स्तर पर पाठ्यक्रम— प्राथमिक स्तर के पाठ्यक्रम का निर्माण न्यूनतम 5 वर्ष के विद्यार्थियों के लिये तैयार किया जाता है। प्रत्येक बालक की अपनी रुचि, सीखने की गति एवं क्षमता होती है। अतः प्राथमिक स्तर के पाठ्यक्रम को श्रेणी रहित बनाने का प्रयास किया जा रहा है। श्रेणी रहित पाठ्यक्रम की स्थापना की मुख्य धारणा यह है कि प्रत्येक बालक को अपनी स्वाभाविक गति से आगे बढ़ने का अवसर दिया जाये। वर्तमान समय में भी कई प्राथमिक विद्यालयों में इसे लागू करने का प्रयास किया जा रहा है। इसके लिए पाठ्यक्रम छात्रों की योग्यता के अनुरूप चयनित किया जाता है तथा मूल्यांकन या परीक्षा प्रणाली भी अति सामान्य रूप में रखी जाती है।

2. माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम—माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रम को श्रेणीबद्ध करते समय अगला स्तर पहले से अधिक कठिनाई के क्रम में शृंखलित किया जाता है। अतः पाठ्यक्रम का विस्तार इस प्रकार हो कि प्रकरण का चयन प्राथमिक स्तर पर जिसका ज्ञान दिया जा चुका हो, उससे आगे के ज्ञान की प्रक्रिया को बढ़ाया जा सके। माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रम में उपयोगी विषयों का चुनाव किया जाता है तथा चयनित विषयों की सामान्य जानकारी छात्रों को प्रदान की जाती है।

3. उच्च माध्यमिक स्तर का पाठ्यक्रम — उच्च माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रम को छात्रों की रुचियों एवं योग्यताओं के अनुसार समूहों में बाँटा जाता है। ये समूह निम्न हैं — विज्ञान समूह, कॉमर्स समूह तथा कला समूह। पाठ्यक्रम विषयों के प्रकरणों का चयन समूहों के आधार पर किया जाता है।

4. स्नातक स्तर पर पाठ्यक्रम—स्नातक स्तर पर पाठ्यक्रम का विस्तार किया जाता है उच्चतर माध्यमिक स्तर पर चुने गये समूह को उनके उपविषयों के साथ विस्तारित रूप से अध्ययन कराया जाता है। अतः पाठ्यक्रम में पाठ्य–वस्तुओं का चयन भी बहुत सूक्ष्मता के साथ किया जाता

है। जैसे—रसायन विज्ञान विषय के उपविषय भौतिक रसायन, कार्बनिक रसायन तथा अकार्बनिक रसायन। इस स्तर पर सभी विषयों एवं उपविषयों की मौलिक जानकारी छात्र को दी जाती है।

5. स्नातकोत्तर स्तर पर पाठ्यक्रम—स्नातकोत्तर स्तर पर पाठ्यक्रम के विषयों का विशेषीकरण प्रारंभ हो जाता है। इस स्तर पर पाठ्यक्रम का चुनाव करते समय प्रत्ययों का स्पष्टीकरण करने का प्रयास किया जाता है। इसकी अंतर्वस्तु का चयन इस प्रकार किया जाता है जिससे छात्र उस विषय के सभी अंगों का ज्ञान एक विशेषज्ञ के तौर पर जान सकें। स्नातकोत्तर स्तर पर सभी प्रत्ययों का अंतर्सम्बंध, विभेदों तथा प्रत्ययों का ज्ञान दिया जाता है।

6. प्रशिक्षण स्तर पर पाठ्यक्रम—व्यवसाय के रूप में चुने जाने वाले पाठ्यक्रम प्रशिक्षण स्तर पर निर्धारित किए जाते हैं। प्रशिक्षक सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक पाठ्यक्रम का चुनाव इस प्रकार करते हैं कि छात्र उसे पढ़ कर तथा समझ कर शिक्षण कौशल में पारंगत हो सके। इसी प्रकार विभिन्न व्यवसायों के प्रशिक्षण स्तर पर छात्रों को रोजगारपरक बनाने के लिये जिन कौशलों की आवश्यकता होती है उसी के आधार पर छात्र में कौशलों का विकास किया जाता है।

पाठ्यक्रम की अंतर्वस्तु के संबंध में अधिगम योग्यता एवं कठिनता स्तर एक जैसे होते हैं। इनमें अंतर यह है कि कठिनता स्तर की बात वर्ग के स्तर से संबंधित होती है तथा इसमें यह देखते हैं कि एक विशेष पाठ्यवस्तु किसी कक्षा स्तर के लिए उपयुक्त है या नहीं।

प्रश्न 4. पाठ्यक्रम कार्यान्वयन की प्रक्रिया को समझाइए तथा पाठ्यक्रम विकास एवं कार्यान्वयन की नवीन प्रवृत्तियों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

***अथवा*, पाठ्यचर्या कार्यान्वयन क्या है ? यह कैसे होता है ?** **(भोपाल 2022)**

उत्तर—पाठ्यक्रम के क्रियान्वयन में छात्र को पाठ्यक्रम किस रूप में प्रस्तुत किया जाय इस बात का वर्णन किया जाता है। इसके लिए सर्वप्रथम शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है। अतः पाठ्यक्रम विकास के लिये उत्तरदायी प्रशासकों के मार्ग–निर्देशन में शिक्षकों एवं प्रधानाध्यापकों की एक समन्वय समिति को यह उत्तरदायित्व सौंपा जाना चाहिए। अन्य शिक्षकों एवं प्रधानाध्यापकों से पृष्ठ पोषण प्राप्त करने की विधियों का भी विकास किया जाना चाहिए। कार्य, उद्देश्यों के निर्धारण के पश्चात् उन्हें प्राप्त करने के लिए शिक्षण व्यूह रचनाओं का विकास किया जाता है। इसके अंतर्गत संदर्भ सामग्री, प्रयुक्त की जाने वाली प्रक्रियाओं तथा अधिगम क्रियाओं के बारे में निर्णय लेना होता है। व्यवस्था को क्रियान्वित करने हेतु अंतिम समीक्षा एवं स्वीकृति पाठ्यक्रम समिति द्वारा होना चाहिए।

पाठ्यक्रम विकास की नवीन प्रवृत्तियाँ—वर्तमान समय में मनुष्य जहाँ एक ओर अपनी बुद्धि एवं विवेक से नये ज्ञान को अर्जन करके मानव जीवन की समस्याओं के समाधान के उपाय ढूंढ रहा है वहीं दूसरी ओर रोज नयी समस्याएँ जन्म ले लेती हैं। अतः शिक्षा का दायित्व बहुत अधिक बढ़ जाता है। इसके लिये शिक्षा के माध्यम से अपेक्षित परिवर्तन हेतु पाठ्यक्रम में आवश्यक परिवर्तन करना आवश्यक हो जाता है। परिणामस्वरूप पाठ्यक्रम विकास की अनेक नवीन प्रवृत्तियों का उदय होता है। अतः आधुनिक समय में पाठ्यक्रम विकास की अनेक नवीन प्रवृत्तियाँ विकसित होती जा रही हैं।

1. शिक्षा में व्यवसायीकरण—पहले शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य ज्ञान अर्जित करना था परंतु आधुनिक युग में शिक्षा के उद्देश्यों के कई महत्वपूर्ण उद्देश्य आ गये हैं जिनमें प्रमुख उद्देश्य शिक्षा का जीविकोपार्जन भी सम्मिलित हो चुका है तथा शिक्षा का संबंध उत्पादन एवं व्यवसाय से जुड़ चुका है। इससे पाठ्यक्रम में व्यावसायिक शिक्षा को सम्मिलित करने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है।

2. तकनीकी, व्यावसायिक एवं सामान्य विषयों का संतुलित समावेश—औद्योगिक क्रांति, विज्ञान एवं तकनीकी के विकास के परिणामस्वरूप शिक्षा में सामान्य विषयों के स्थान पर पाठ्यक्रम

में धीरे–धीरे विज्ञान एवं तकनीकी विषयों का समावेश हो गया है। उपयोगिता की दृष्टि से यह परिवर्तन बहुत लाभकारी रहा है।

3. पाठ्यक्रम को अधिक व्यापक बनाना—मनुष्य अपनी बढ़ती आवश्यकताओं एवं समस्याओं के समाधान हेतु निरन्तर प्रयास करता रहता है। जिससे उसके ज्ञान में निरंतर वृद्धि भी होती रहती है। अतः पाठ्यक्रम को विस्तृत एवं व्यापक बनाने की आवश्यकता भी बढ़ रही है। इसका प्रभाव सभी विषयों पर पड़ने के साथ–साथ नवीन विषयों का उदय भी हो रहा है। साथ ही विद्यालयीन जीवन का कार्यकाल बढ़ने के कारण बालकों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये भी पाठ्यक्रम को विस्तार प्रदान करना अनिवार्य हो गया है।

4. पाठ्यक्रम विकास में केन्द्रीय प्रभाव में वृद्धि—भारतीय संविधान में प्रारंभ में शिक्षा को राज्य सूची में रखा गया था किन्तु बाद में इसे समवर्ती सूची में शामिल कर दिया गया, जिसके परिणामस्वरूप अब शिक्षा एवं पाठ्यक्रम पर केन्द्रीय नियंत्रण अधिक हो गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति का निर्माण एवं उसके क्रियान्वयन पर बल इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। अतः पाठ्यक्रम निर्माण में अब केन्द्रीय अर्थात् राष्ट्रीय प्रवृत्ति का तीव्रता से विकास हो रहा है।

5. नवाचारों को अपनाना—वर्तमान समय में शिक्षा में नवाचारों को अपनाने की प्रवृत्ति भी बढ़ती जा रही है। अभिक्रमिक अनुदेशन, शिक्षण मशीन, टेप रिकॉर्डर, वीडियो टेप, फिल्म, रेडियो, दूरदर्शन, दल शिक्षण जैसी शिक्षण विधियों के साथ–साथ शिक्षण की उच्च प्रविधियों जैसे—समूह चर्चा, वार्तालाप, संवाद, अनुवर्ग शिक्षण, पर्यवेक्षित अध्ययन आदि का प्रयोग भी तीव्र गति के अधिगम हेतु किया जा रहा है।

6. पाठ्यक्रम में लचीलापन—पाठ्यक्रम निर्माण का एक प्रमुख सिद्धान्त 'उसका लचीला होना' है। इसका तात्पर्य यह है कि विद्यालय तथा शिक्षकों को इतनी स्वतंत्रता होनी चाहिए कि वे स्थानीय समुदाय एवं छात्र वर्ग की आवश्यकताओं तथा तात्कालिक परिस्थितियों के अनुरूप पाठ्यक्रम में यथोचित परिवर्तन संशोधन एवं परिवर्धन कर सकें।

7. अधिगम प्रक्रिया में परिवर्तन—बीसवीं शताब्दी में अधिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में हुए प्रयोगों एवं अनुसन्धान कार्यों के निष्कर्षों ने अधिगम के संप्रत्यय में अनेक प्रकार के परिवर्तन कर दिए हैं।

इस प्रकार वर्तमान समय में स्वयं शिक्षण पर अधिक बल देते हैं। इसके लिए नवीन शिक्षण विधियों एवं नवीन अधिगम सामग्री भी निर्मित की गई है। इस नवीन शिक्षण विधियों एवं शिक्षण सामग्री के प्रयोग के परिणामस्वरूप अधिगम प्रक्रिया में बहुत अधिक परिवर्तन आया है। अब कक्षा में शिक्षकों एवं छात्रों की स्थिति में अन्तर आ गया है। धीरे–धीरे शिक्षण पृष्ठभूमि में परिवर्तन होता जा रहा है। 'एक कक्षा एक शिक्षक' का परम्परागत सम्प्रत्यय भी बदलता जा रहा है। इसके स्थान पर 'दल शिक्षण' तथा अन्य वर्ग विधियों का प्रसार हो रहा है। अतः इसने पाठ्यक्रम विकास में नवीन प्रवृत्ति को जन्म दिया है।

प्रश्न 5. पाठ्यक्रम समृद्धशीलता से आपका क्या तात्पर्य है ? इसकी क्या विशेषताएँ होनी चाहिए ? **(छिंदवाड़ा 2021; इंदौर 22)**

***अथवा*, पाठ्यक्रम समृद्धिशीलता क्या है ? समझाइए।** **(छिंदवाड़ा 2022)**

***अथवा*, पाठ्यचर्या समृद्धि क्या होती है ?** **(भोपाल 2022)**

उत्तर—पाठ्यक्रम की समृद्धशीलता—कुछ और जोड़कर किसी चीज की गुणवत्ता या शक्ति में सुधार करने की क्रिया या प्रक्रिया समृद्धशीलता कहलाती है। इसी प्रकार पाठ्यक्रम संवर्धन अथवा समृद्धशीलता का अर्थ है—संपूर्ण शिक्षा प्रक्रिया को अधिक–से–अधिक महत्वपूर्ण एवं रुचिकर बनाना। विशेष परिस्थितियों, शिक्षण सामग्रियों, विचारों, संगठन की सहायता से शिक्षण पाठ्यक्रम को जीवन प्रदान किया जाता है।

पाठ्यचर्या समृद्धिकरण में निम्न बिन्दुओं का महत्वपूर्ण योगदान है–

1. अधिगम परिस्थिति का चयन एवं संगठन–विद्यालय वह स्थान है, जहाँ विद्यार्थियों को उपयुक्त वातावरण में रखकर उनके व्यवहार में परिवर्तन लाने का प्रयास किया जाता है। इस नियंत्रित वातावरण में उनको अच्छी आदतों के लिए पुरस्कृत किया जाता है, तो बुरी आदतों के लिए दंड दिया जाता है। विद्यालय को साफ–सुथरा रखना चाहिए और बच्चों को भी इसके लिए प्रेरित करना चाहिए। विद्यालय का निर्माण स्वच्छ व सुगम एवं शांत वातावरण वाले स्थान में करवाना चाहिए।

इसके अतिरिक्त भी कुछ आवश्यक नियम, कानून एवं कार्य भी हैं, जैसे–

(1) आवश्यकता से अधिक कक्षा में बोलने न देना।

(2) बच्चों को व्यस्त रखने के लिए अधिक मात्रा में होमवर्क दे देना।

(3) सहपाठियों के सामने शारीरिक एवं मानसिक दण्ड देना।

(4) समय की पाबंदी का अधिक सख्ती से पालन कराना आदि।

क्योंकि कई बार बच्चे निजी कारणों से जैसे–ट्रैफिक में फँसने की वजह से विद्यालय देरी से पहुँचना या घर से शोरगुल, अस्वस्थ या अन्य कारणों से होमवर्क नहीं कर पाते हैं। लेकिन जब उन्हें इसके लिए दंड दिया जाता है, तो बच्चों के अन्दर शिक्षक एवं स्कूल के प्रति नकारात्मक भावना पैदा होती है।

2. उपलब्ध अवसंरचना व संसाधन–पाठ्यचर्या का सबसे महत्वपूर्ण संसाधन पाठ्य–पुस्तक को माना जाता है, क्योंकि पाठ्य–पुस्तक के माध्यम से ही विभिन्न विषय जैसे–गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान इत्यादि की शिक्षा दी जाती है। इन्हीं पुस्तकों के माध्यम से बच्चों को कक्षा कार्य एवं गृह कार्य भी प्रदान किए जाते हैं। परन्तु इसके अलावा भी कई अन्य सामग्रियाँ एवं संरचना हैं जो अधिगम प्रक्रिया को तेज कर सकते हैं, जैसे–मानचित्र, ग्लोब, विभिन्न जानवरों, पक्षियों, फलों इत्यादि के पोस्टर, पुस्तकालय, शैक्षिक तकनीक, उपकरण एवं प्रयोगशाला, विभिन्न सार्वजनिक स्थल, कम्प्यूटर, प्रोजेक्ट, खेल के सामान इत्यादि।

3. सांस्कृतिक कार्यक्रम एवं आनंदमय वातावरण–पाठ्यक्रम संवर्धन में सांस्कृतिक कार्यक्रम एवं आनंदमय वातावरण भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जिन विद्यालयों में राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय उत्सवों के कार्यक्रम, प्रतियोगिता एवं खेल–कूद आदि आयोजन कराए जाते हैं उन विद्यालयों के बच्चों में अपनी सभ्यता, संस्कृति के प्रति आदर का विकास होता है। साथ ही विद्यालय वातावरण आनंदमय एवं शिक्षक–छात्र रिश्ते मधुर रहते हैं। ऐसे आयोजन विद्यालय में मासिक, अर्धवार्षिक या वार्षिक तौर पर होते रहना चाहिए।

कई विद्यालय अपने यहाँ ऐसे वातावरण बनाते हैं जिससे उनके बच्चे समाज में ऊँचें दर्जे का नागरिक बन सकें। ऐसे विद्यालय प्रतिदिन प्रार्थना सभागार में ही प्रार्थना होने के पश्चात् अखबार की सुर्खियों को पढ़ाना, राष्ट्रगान गाना, पी. टी. एवं अन्य महत्वपूर्ण मुद्दों पर बातें करना जैसी संस्कृति विकसित करते हैं।

4. शिक्षक एवं अन्य शिक्षण शास्त्रीय समर्थन की भूमिका–पाठ्यक्रम के संवर्धिकरण में शिक्षकों का भी विशेष योगदान होता है। प्रायः प्रत्येक शिक्षक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से बालकों को अपने विचारों, आस्था, मान्यता, शैक्षिक योग्यता एवं सामाजिक पृष्ठभूमि से प्रभावित करते रहते हैं। यह कार्य शिक्षक जाने या अनजाने रूप में करते हैं। **उदाहरणस्वरूप**–अधिकांश शिक्षक जिस तरह की सामाजिक पृष्ठभूमि से आते हैं वे वैसी ही मान्यतायें अपने छात्रों पर भी थोपने की कोशिश करते हैं।

प्रश्न 6. पाठ्यक्रम निर्माण, पाठ्यक्रम विकास एवं पाठ्यक्रम संरचना में अंतर लिखिए।
***अथवा*, पाठ्यक्रम विकास एवं पाठ्यक्रम संरचना में भेद कीजिए। (रीवा 2022; इंदौर 22)**
उत्तर–पाठ्यक्रम निर्माण, पाठ्यक्रम विकास एवं पाठ्यक्रम संरचना में अंतर–

क्र.	पाठ्यक्रम निर्माण	पाठ्यक्रम विकास	पाठ्यक्रम संरचना
1.	विभिन्न दार्शनिक विचार–धाराओं एवं शिक्षा की विभिन्न पद्धतियों पर आधारित होता है।	यह शैक्षिक आवश्यकताओं एवं शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण पर आधारित होता है।	इसमें सर्वांगीण विकास को ध्यान में रखकर निर्मित की जाती है।
2.	इसके अंतर्गत पाठ्यक्रम के स्वरूप का निर्धारण किया जाता है।	इसके अंतर्गत पाठयक्रम के स्वरूप का विकास किया जाता है।	इसमें पाठ्यक्रम की विषय–वस्तु का निर्धारण किया जाता है।
3.	इसका क्रम चक्रीय रूप में चलता है।	इसकी प्रक्रिया अतीत से वर्तमान की ओर अग्रसर होती है।	इसमें वर्तमान के संदर्भ में भविष्य पर बल दिया जाता है।
4.	इस प्रक्रिया में सर्वप्रथम पाठ्यक्रम के उद्देश्यों का चुनाव किया जाता है।	इस प्रक्रिया में सर्वप्रथम शिक्षा के उद्देश्यों का चयन किया जाता है।	इस प्रक्रिया में अधिगम एवं शिक्षण के उद्देश्यों को प्रमुखता दी जाती है।
5.	इसमें सिद्धांतों के आधार पर कार्य किया जाता है।	इसमें सिद्धांतों की उपयोगिता और लाभ का उपयोग किया जाता है।	इसमें सिद्धातों को व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत किया जाता है।
6.	इसमें वैज्ञानिकता आदर्श–वादिता एवं सैद्धांतिकता को प्रमुखता दी जाती है।	इसमें उपयोगिता को प्रमुख माना जाता है।	इसमें व्यावहारिकता पर बल दिया जाता है।
7.	इसमें समाज और राष्ट्र की आकांक्षाओं पर बल दिया जाता है।	इसमें समाज और राष्ट्र के साथ–साथ अभिभावकों, छात्रों और शिक्षकों को भी सम्मि–लित किया जाता है।	इसमें पाठ्यक्रम निर्माण एवं पाठ्य–क्रम विकास के आधार पर निर्मित किया जाता है।
8.	इसका निर्माण एक जटिल एवं सैद्धान्तिक प्रक्रिया है।	यह एक सतत् एवं व्यापक प्रक्रिया है।	यह व्यावहारिक प्रक्रिया है।
9.	इसका निर्माण एक निश्चित समय पर किया जाता है।	इसकी प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है।	इसका भी निश्चित रूप होता है।
10.	इसका प्रमुख उद्देश्य शिक्षण अधिगम के लिए विषय–वस्तु का निर्धारण करना है।	इसका प्रमुख उद्देश्य विषय–वस्तु का विकास करना है।	इसका उद्देश्य विषय–वस्तु को प्रभावी एवं व्यावहारिक रूप प्रदान करना है।

प्रश्न 7. पाठ्यक्रम विकास में उद्देश्यों के निर्धारण की आवश्यकता, उपयोगिता तथा शैक्षिक उद्देश्यों का विस्तृत वर्णन कीजिए। (इंदौर 2022)

***अथवा*, शैक्षिक उद्देश्यों के स्रोत, प्रकारों तथा उनके वर्गीकरण का विवरण दीजिए।** (उज्जैन 2022; जबलपुर 22)

***अथवा*, ब्लूम द्वारा शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण किस प्रकार किया गया है? विवरण दीजिए।** (जबलपुर 2021)

***अथवा*, पाठ्यक्रम निर्माण में ब्लूम के वर्गीकरण के महत्व लिखिए।** (छिंदवाड़ा 2021, 22)

***अथवा*, ब्लूम के शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण चार्ट बनाइये।** (ग्वालियर 2022)

उत्तर—लक्ष्य एवं उद्देश्य पाठ्यक्रम विकास का प्रथम सोपान है। वर्तमान समय में पाठ्यक्रम का स्वरूप व्यापक होता जा रहा है। इसके मूल में लक्ष्य एवं उद्देश्यों की व्यापकता निहित है। शिक्षा द्वारा उन सभी पक्षों को अपने उद्देश्यों में समाहित किया गया है जो कि छात्रों के सर्वांगीण विकास से संबंधित है। छात्रों के सर्वांगीण विकास को ध्यान में रखकर निर्धारित किये जाने वाले उद्देश्यों की पूर्ति हेतु विभिन्न प्रकार की गतिविधियों का पाठ्यक्रम में समावेश करना पड़ता है। इस प्रक्रिया के द्वारा पाठ्यक्रम का विकास भी संभव होता है तथा छात्रों को उनकी आवश्यकतानुसार पाठ्यक्रम भी प्राप्त होता है।

शैक्षिक उद्देश्यों का अर्थ—शैक्षिक उद्देश्यों से तात्पर्य छात्रों में होने वाले उस परिवर्तन से हैं जो शैक्षिक क्रियाओं द्वारा नियोजित रूप में लाया जाता है।

बी.एस. ब्लूम के अनुसार— "शैक्षिक उद्देश्यों की सहायता से केवल पाठ्यक्रम की ही रचना तथा अनुदेशन के लिए निर्देशन ही नहीं दिया जाता बल्कि ये मूल्यांकन की प्रविधियों के विशिष्टीकरण में भी सहायक होते हैं।"

उद्देश्य वह बिंदु अथवा अभीष्ट है जिसकी दिशा में कार्य किया जा सकता है। वह व्यवस्थित परिवर्तन है, जिसे क्रिया द्वारा प्राप्त करके हम कार्य करते हैं।

शैक्षिक उद्देश्यों के प्रकार—शैक्षिक उद्देश्यों को दो प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

1. सामान्य उद्देश्य एवं 2. विशिष्ट उद्देश्य।

1. सामान्य उद्देश्य (General objective) — शिक्षण के सामान्य उद्देश्य को संक्षेप में 'लक्ष्य' भी कहा जाता है। यह शिक्षण कार्य से पूर्णता संबंधित होते हैं तथा इनका कार्यक्षेत्र भी विस्तृत होता है। इनकी सफलता प्रत्यक्ष रूप से समाज और स्कूल के शैक्षिक वातावरण पर निर्भर करता है।

2. विशिष्ट उद्देश्य (Specific objective) — विशिष्ट उद्देश्यों का स्वरूप संकुचित होता है, यह पाठ्य–वस्तु के प्रत्यय एवं सिद्धांतों तक ही सीमित होते हैं। इनका प्रयोग शिक्षण कार्यों के अतिरिक्त छात्रों के बौद्धिक मूल्यांकन के लिए भी किया जाता है।

उद्देश्यों के निर्धारण की उपयोगिता/आवश्यकता—(1) शैक्षिक कार्यक्रमों को निश्चित दिशा मिलती है।

(2) शैक्षिक क्रियाओं की प्रकृति का निर्धारण होता है।

(3) शैक्षिक कार्यक्रमों के नियोजन एवं व्यवस्थिकरण को निश्चित आधार मिलता है।

(4) शैक्षिक क्रियाओं को बल मिलता है।

(5) शैक्षिक कार्यक्रमों को क्रमबद्ध ढंग से प्रस्तुत करने में सहायता मिलती है।

(6) अधिगम के विभिन्न पक्षों में विभेदीकरण संभव होता है।

(7) विकास एवं उपलब्धि के मापन को आधार मिलता है।
(8) शैक्षिक कार्यक्रमों की प्राथमिकताओं को सुनिश्चित करने में सहायता मिलती है।
(9) शैक्षिक निर्णयों के लिए उचित निर्देशन प्राप्त होता है।
(10) शैक्षिक कार्यक्रमों के विभिन्न पक्षों में संतुलन स्थापित करने में सुविधा होती है।
(11) अधिगम अनुभवों एवं मूल्यांकन का स्तरीकरण करने में सुविधा होती है।
(12) उपयुक्त अंतर्वस्तु के चयन में सुविधा होती है।
(13) पाठ्यक्रम को स्पष्टता एवं सार्थकता मिलती है।
(14) शैक्षिक विकास कार्यों को निर्देश मिलता है।
(15) अधिगम को कार्यात्मक बनाने में सहायता मिलती है।
(16) उपयुक्त अधिगम परिस्थितियों को उत्पन्न करने में सुविधा होती है।
(17) शैक्षिक प्रक्रिया को सुपरिभाषित किया जा सकता है।
(18) वैध मूल्यांकन संभव होता है।

उपर्युक्त महत्व को देखते हुए पाठ्यक्रम का निर्माण करने से पूर्व सभी संबंधित व्यक्तियों को उन लक्ष्यों एवं उद्देश्यों के बारे में निश्चित जानकारी होनी चाहिए जिनकी प्राप्ति वे पाठ्यक्रम के द्वारा करना चाहते हैं।

शैक्षिक उद्देश्यों के स्रोत—शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण हेतु इनके प्रमुख स्रोतों का ज्ञान अति आवश्यक होता है। यद्यपि उद्देश्यों को दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्रीय और वैज्ञानिक आधारों पर तैयार किया जाना चाहिए, परंतु इनकी संख्या अनन्त होती है तथा उद्देश्यों का निर्धारण इनसे विधिवत् रूप में नहीं किया जा सकता है। उद्देश्यों के स्रोतों की प्रकृति एवं विस्तार क्षेत्र का ज्ञान प्राप्त करने की दृष्टि से इन्हें निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

1. समाज, 2. व्यक्ति, 3. ज्ञान।

1. समाज (Society) — सामान्यतः शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण समाज द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति तथा समस्याओं के समाधान के लिए किया जाता है समाज का आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक आधार क्या है तथा इसकी आवश्यकताएँ किस प्रकार की है ? ये बातें शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण के लिए महत्वपूर्ण होती है। बालक जिस समाज में रहता है, उसकी कुछ मान्यतायें, मूल्य एवं दर्शन होते हैं। समाज की आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं के अनुकूल ही बालक के व्यक्तित्व का विकास करना होता है। सांस्कृतिक विरासत की सुरक्षा एवं संवर्द्धन, उसमें सामयिक दृष्टि से संशोधन, प्रजातान्त्रिक जीवन मूल्यों का अनुशीलन, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का ज्ञान तथा अन्य अनेक सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं नैतिक प्रश्न सभी इसके अंतर्गत आ जाते हैं। अतः शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण में समाज के इन सभी पक्षों को स्थान देना पड़ता है।

2. व्यक्ति (Human) — शैक्षिक उद्देश्यों का दूसरा प्रमुख स्रोत व्यक्ति है। समाज अपने अनुसार शिक्षा की आधारभूत आवश्यकताओं का निर्धारण करता है, किन्तु उनकी पूर्ति व्यक्ति के माध्यम से ही होती है। बालक का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास कैसे होता है ? विभिन्न अवस्थाओं में उसकी आवश्यकतायें, रुचियों तथा रुझान किस प्रकार के होते हैं ? उसकी योग्यतायें एवं क्षमतायें कैसी हैं ? आदि बातों का शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण में बहुत महत्व है। चूँकि शिक्षा प्रक्रिया का प्रमुख केन्द्र विद्यार्थी होता है, अतः इन सभी सूचनाओं के आधार पर ही शिक्षा के उद्देश्यों को निश्चित किया जा सकता है।

3. ज्ञान (Knowledge) – सभ्यता के विकास का मूल ज्ञान ही है। शिक्षा सभ्यता के विकास का माध्यम है, अतः इसे ज्ञान के विकास और उपयोग में भी सहायक होना चाहिए। ज्ञान के भी अपने अनेक अंग एवं पक्ष है; जैसे–तथ्य, प्रक्रियायें, विचार, अवधारणाएँ, चिंतन प्रणालियाँ आदि। ज्ञान के भण्डार को विभिन्न वर्गों में आयोजित करके उन्हें अलग–अलग विषयों का नाम प्रदान किया जाता है, इससे स्पष्ट है कि शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण में ज्ञान एक प्रमुख स्रोत अथवा घटक है। शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण में विषय–वस्तु की प्रकृति तथा शिक्षा के स्तर को भी ध्यान में रखना होता है। प्रत्येक विषय की अपनी विशेष प्रकृति होती है। कुछ विषय विचार प्रधान होते हैं और कुछ कौशल के विकास पर बल देते हैं। इसके अतिरिक्त मानव ज्ञान–विज्ञान की प्रगति के साथ–साथ विषयों के क्षेत्र भी बदलते रहते हैं। अतः शिक्षण के उद्देश्यों को निर्धारण विषय की प्रकृति एवं ज्ञान के अनुरूप करना होता है।

प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा स्तर पर शिक्षा के उद्देश्य भी बदल जाते हैं। अतः शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण में यह जानना आवश्यक होता है कि पाठ्यक्रम का निर्धारण किस स्तर के लिए किया जाना है।

ब्लूम द्वारा शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण–शैक्षिक उद्देश्यों के वर्गीकरण के लिए जो विभिन्न प्रतिमान विकसित हुए हैं उनमें **बी.एस.ब्लूम** (B.S. Bloom) एवं **उसके सहयोगियों** द्वारा विकसित प्रतिमान सबसे अधिक उपयुक्त एवं ग्राह्य है। इसे "ब्लूम्स टैक्सोनॉमी ऑफ एजुकेशनल ऑब्जेक्टिव्स" का नाम दिया गया है।

इस वर्गीकरण को तीन पक्षों ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक पक्षों के आधार पर विकसित किया गया है। टैक्सोनॉमी शब्द जीव विज्ञान से संबंधित है, जिसके अंतर्गत प्राणियों एवं पौधों की क्रमिक रूप में इस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है कि वे सामान्य से विशिष्ट की ओर बढ़ते हुए अधिक–से–अधिक स्पष्ट होते जायें।

ब्लूम तथा उसके सहयोगियों ने शिकागो विश्वविद्यालय में ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक तीनों पक्षों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया। यह टैक्सोनॉमी शैक्षिक, तार्किक तथा मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण का एक न्यायोचित एवं संतुलित एकीकरण है। इसमें विभिन्न वर्गों का भेद शैक्षिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसमें शब्दावली को इस प्रकार से परिभाषित किया गया है कि उनके अर्थ तार्किक दृष्टि से सही मालूम पड़ते हैं। यह वर्गीकरण आधुनिकतम मनोवैज्ञानिक खोजों पर आधारित है।

ब्लूम द्वारा शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण

क्र.	ज्ञानात्मक पक्ष (Cognitive Domain)	भावनात्मक पक्ष (Affective Domain)	क्रियात्मक पक्ष (Psychomotor Domain)
1.	ज्ञान (Knowledge)	आग्रहण या प्राप्ति (Receiving)	अनुकरण (Imitation)
2.	अवबोध (Understanding)	अनुक्रिया (Responding)	कार्य करना (Manipulation)
3.	अनुप्रयोग (Application)	अनुमूल्यन (Valuing)	नियंत्रण (Control)
4.	विश्लेषण (Analysis)	प्रत्ययीकरण (Conceptualization)	संधि योग या सामंजस्य (Co-ordination)
5.	संश्लेषण (Synthesis)	व्यवस्थापन (Organization)	नैसर्गीकरण (Naturalization)
6.	मूल्यांकन (Evaluation)	चरित्रीकरण या लक्षण वर्णन (Characterization)	आदत निर्माण या कौशल (Habit formation)

संज्ञानात्मक उद्देश्य (जबलपुर 2021)–

1. ज्ञान (Knowledge) – ज्ञान को ब्लूम ने प्रथम स्थान दिया, क्योंकि बिना ज्ञान के बाकी बिंदुओं की कल्पना करना असंभव है। जब तक किसी वस्तु के बारे में ज्ञान नहीं होगा तब तक उसके बारे में चिंतन करना असंभव है और अगर संभव हो भी जाये तो उसको सही दिशा नहीं मिल पाती। इसी कारण ब्लूम के वर्गीकरण में इसकी महत्ता को प्रथम स्थान दिया गया।

2. बोध (Comprehensive) – ज्ञान को समझना, उसके सभी पहलुओं से परिचित होना एवं उसके गुण–दोषों के संबंध में ज्ञान अर्जित करना।

3. अनुप्रयोग (Application) – ज्ञान को क्रियान्वित (Practical) रूप देना अनुप्रयोग कहलाता हैं। प्राप्त किये गए ज्ञान की आवश्यकता पड़ने पर उसका सही तरीके से अपने जीवन में उसे लागू करना एवं उस समस्या के समाधान निकालने के लिए प्राप्त किये गए ज्ञान के द्वारा, उस ज्ञान को कौशल में परिवर्तित कर देता है। यही मार्ग छात्रों को अनुभव प्रदान करने में उनकी सहायता भी करता है।

4. विश्लेषण (Analysis) – विश्लेषण से ब्लूम का तात्पर्य– तोड़ना अर्थात् किसी बड़े प्रकरण को समझने के लिए उसे छोटे–छोटे भागों में विभक्त करना एवं नवीन ज्ञान का निर्माण करना तथा नवीन विचारों की खोज करना। यह ब्लूम का विचार समस्या–समाधान में भी सहायक है।

5. संश्लेषण (Synthesis) – प्राप्त किये गए नवीन विचारों या नवीन ज्ञान को जोड़ना एवं उन्हें एकत्रित करना अर्थात् उसको जोड़कर एक नवीन ज्ञान का निर्माण करना संश्लेषण कहलाता है।

6. मूल्यांकन (Evaluation) – सब करने के पश्चात् उस नवीन ज्ञान का मूल्यांकन करना कि यह सभी क्षेत्रों में लाभदायक है कि नहीं। कहने का तात्पर्य है कि वह वैध एवं विश्वसनीय है या नहीं। जिस उद्देश्य से वह ज्ञान छात्रों को प्रदान किया गया वह उस उद्देश्य की प्राप्ति करने में सक्षम है कि नहीं यह मूल्यांकन द्वारा पता लगाया जा सकता है।

संशोधित ब्लूम वर्गीकरण (Revised Bloom Taxonomy, 2001) – ब्लूम के वर्गीकरण (Bloom Taxonomy) में संशोधित रूप **एंडरसन** और **क्रैथवॉल** ने दिया। इन्होंने वर्तमान की आवश्यकताओं को देखते हुए उसमें कुछ प्रमुख परिवर्तन किये। जिसे रिवाइज्ड (संशोधित) ब्लूम वर्गीकरण के नाम से जाना जाता है।

1. स्मरण (Remembering) – प्राप्त किये गये ज्ञान को अधिक समय तक अपनी बुद्धि में संचित रख पाना एवं समय आने पर उसको पुन: स्मरण (Recall) कर पाना स्मरण शक्ति का गुण है।

2. समझना (Understanding) – प्राप्त किये गये ज्ञान का उपयोग कब, कहाँ और कैसे करना है, यह किसी व्यक्ति के लिए तभी संभव हैं जब वह प्राप्त किये ज्ञान को सही तरीके से समझे।

3. लागू करना (Apply) – जब वह ज्ञान समझ में आ जाये, जब पता चल जाये कि इस ज्ञान का प्रयोग कब, कहाँ और कैसे करना हैं तो उस ज्ञान को सही तरीके से सही समय आने पर उसको लागू करना चाहिए।

4. विश्लेषण (Analysis) – उस ज्ञान को लागू करने के पश्चात् उसका विश्लेषण करना अर्थात् उसको तोड़ना उसको छोटे–छोटे भागों में विभक्त करना।

5. मूल्यांकन (Evaluate) – विश्लेषण करने के पश्चात् उसका मूल्यांकन करना कि जिस उद्देश्य से उसकी प्राप्ति की गयी है वह उस उद्देश्य की प्राप्ति कर रहा है या नहीं इसका पता हम उसका मूल्यांकन करके कर सकते हैं।

6. रचना (Creating) – मूल्यांकन करने के पश्चात् उस स्मरण में एक नयी विचार का निर्माण होता है जिससे एक नवीन विचार की रचना होती है।

भावात्मक उद्देश्य–ब्लूम वर्गीकरण के अंतर्गत भावात्मक उद्देश्य का निर्माण **क्रैथवॉल** एवं **मारिया** ने 1964 में किया। इन्होंने छात्रों के भावात्मक पक्ष पर ध्यान देते हुए कुछ प्रमुख बिंदुओं को हमारे सम्मुख रखा। भावात्मक पक्ष से तात्पर्य हैं कि उस प्रत्यय के प्रति छात्रों के भावात्मक (गुस्सा, प्यार, चिढ़ना, उत्तेजित होना, रोना आदि) रूप का विकास करना।

1. अनुकरण (Receiving) – भावात्मक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सर्वप्रथम बालकों को अनुकरण (नकल) के माध्यम से ज्ञान प्रदान करना चाहिए। एक अध्यापक को छात्रों को पढ़ाने के समय उस प्रकरण का भावात्मक पक्ष को महसूस कर उसको क्रियान्वित रूप देना चाहिये, जिससे छात्र उसका अनुकरण कर उसको महसूस कर सकें।

2. अनुक्रिया (Responding) – तत्पश्चात् अनुकरण कर उस अनुकरण के द्वारा क्रिया करना अनुक्रिया कहलाता है।

3. अनुमूल्यन (Valuing) – उस अनुक्रिया के पश्चात् हम उसका मूल्यांकन करते हैं कि वह सफल सिद्ध हुआ कि नहीं।

4. संप्रत्यय (Conceptualization) – हम उसके सभी पहलुओं पर एक साथ विचार करते हैं।

5. संगठन (Organization) – उस प्रकरण को एक स्थान में रखकर उसके बारे में चिंतन करते हैं, उसमें विचार करना शुरू करते हैं।

6. चारित्रीकरण (Characterisation) – तत्पश्चात् हम उस पात्र का एक चरित्र निर्माण करते हैं जिससे हमारे भीतर उसके प्रति एक भाव उत्पन्न होता है; जैसे– गुंडों के प्रति गुस्से का भाव और हीरो के प्रति सहानुभूति वाला भाव आदि।

इन सभी बिंदुओं को हम एक माध्यम के द्वारा समझ सकते हैं। जब हमारा जन्मदिन होता है और कोई व्यक्ति हमारे लिए उपहार लाता है तो हम उस समय खुश होते हैं या उसको धन्यवाद बोलते हैं अर्थात् अनुक्रिया करते हैं। गिफ्ट प्राप्ति के पश्चात् जब सभी व्यक्ति चले जाते हैं तो हम उसको देखते हैं और अंदाजा लगाते हैं कि इसका मूल्य कितना होगा अर्थात् उसकी मूल्य करते हैं, उसके बाद उसको सही जगह रखने के लिए उचित जगह निश्चित करते हैं अर्थात् उसको संगठित करते हैं, तत्पश्चात् हम उस गिफ्ट देने वाले व्यक्ति के चरित्र का निर्माण करते हैं कि उसके लिए हम कितने महत्वपूर्ण हैं।

मनोशारीरिक उद्देश्य–ब्लूम वर्गीकरण के अंतर्गत मनोशारीरिक उद्देश्य का निर्माण **सिम्पसन** ने 1969 में किया। इन्होंने ज्ञान के क्रियात्मक पक्ष पर बल देते हुए निम्न बिंदुओं को प्रकाशित किया-

1. उद्दीपन (Stimulation) – उद्दीपन से आशय कुछ ऐसी वस्तु जो हमें अपनी ओर आकर्षित करती है, तत्पश्चात् हम उसे देखकर अनुक्रिया करते हैं; जैसे–भूख लगने पर खाने की तरफ क्रिया करते हैं। इस उदाहरण में भूख उद्दीपन हुई जो हमें क्रिया करने के लिये उत्तेजित कर रही है।

2. कार्य करना (Manipulation) – उस उद्दीपन के प्रति क्रिया हमको कार्य करने पर मजबूर करती हैं।

3. नियंत्रण (Control) – उस क्रिया पर हम नियंत्रण रखने का प्रयास करते हैं।

4. समन्वय (Co-ordination) – उसमें नियंत्रण रखने के लिए हम उद्दीपन और क्रिया के मध्य समन्वय स्थापित करते हैं।

5. स्वाभाविक (Naturalization) – वह समन्वय करते–करते एक समय ऐसा आता है कि उनमें समन्वय स्थापित करना हमारे लिए सहज हो जाता है। हम आसानी के साथ हर परिस्थिति में उनमें समन्वय स्थापित कर पाते हैं तथा वह हमारा स्वभाव बन जाता हैं।

6. आदत (Habit formation) – वह स्वभाव में आने के पश्चात् हमारी आदत बन जाती है। ऐसी परिस्थिति दुबारा आने के पश्चात् हम वही क्रिया एवं प्रतिक्रिया हमेशा करते रहते हैं, जिससे हमारे अंदर नयी आदतों का निर्माण होता हैं।

ब्लूम के वर्गीकरण में, ब्लूम ने छात्रों के ज्ञान एवं बौद्धिक पक्ष पर पूरा ध्यान केंद्रित किया है। वह छात्रों के सर्वांगीण विकास के लिये बौद्धिक विकास पर अत्यधिक बल देते हैं। उनका यह वर्गीकरण छात्रों के व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाने हेतु काफी उपयोगी सिद्ध हुआ है। ब्लूम के वर्गीकरण के माध्यम से चलकर ही हम शिक्षण के उद्देश्यों की प्राप्ति कर सकते हैं।

पाठ्यक्रम निर्माण में ब्लूम के वर्गीकरण का महत्व–पाठ्यक्रम नियोजन की दृष्टि से इस वर्गीकरण के प्रमुख लाभ इस प्रकार हैं–

1. यह वर्गीकरण, 'सरल से कठिन' की ओर के सिद्धांत पर आधारित है, इसलिए यह प्रणाली उस स्तर का समुचित ज्ञान प्राप्त करने में बहुत सहायक है जिस पर कोई सीखने वाला कार्य कर रहा होता है।

2. सीखने वाले के स्तर का सही ज्ञान होने पर मूल्यांकन की प्रविधियों, उपकरणों आदि को निश्चित करने तथा उन्हें तैयार करने में भी सुविधा रहती है। इसके साथ ही उनका वर्गीकरण भी सरलता एवं स्पष्टता से किया जा सकता है। इस प्रकार इससे मूल्यांकन को उद्देश्य–केन्द्रित बनाने में सहायता मिलती है।

3. इस वर्गीकरण की सहायता से मूल्यांकन विधियों की वैधता की जाँच भी सरलता से की जा सकती है।

4. तर्क आधारित होने के कारण इस वर्गीकरण से अध्ययन सामग्री तथा शिक्षण अधिगम स्थितियों के क्रमिक नियोजन में बहुत सहायता मिलती है।

5. इस वर्गीकरण से उचित परीक्षा स्थितियों के चयन में भी सुविधा होती है।

6. इस वर्गीकरण में शिक्षण एवं मूल्यांकन दोनों के समस्त पक्षों पर समुचित ध्यान देने के कारण विद्यार्थियों के सर्वांगीण एवं संतुलित विकास के संबंध में निश्चित हुआ जा सकता है।

7. इस वर्गीकरण से पाठ्य–पुस्तकों तथा अन्य पाठ्य–सामग्री के निर्माण, विश्लेषण, मूल्यांकन, संशोधन एवं संवर्द्धन आदि में बहुत अधिक सुविधा रहती हैं।

8. यह वर्गीकरण स्पष्ट परिभाषित तर्क पर आधारित है, अतः यह पाठ्यक्रम निर्माण के विभिन्न सामग्रियों के बीच आवश्यक आदान–प्रदान के कार्य को दृढ़ आधार प्रदान करता है।

9. पाठ्यक्रम के क्षेत्र में अनुसंधान के लिए भी यह वर्गीकरण उपादेय सिद्ध हो रहा है तथा नवीन शोध क्षेत्र भी प्रस्तुत कर रहा है।

10. ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक तीनों पक्षों से संबंधित होने से यह वर्गीकरण औद्योगिक एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण के पाठ्यक्रमों के निर्माण में बहुत अधिक महत्वपूर्ण है।

प्रश्न 8. पाठ्यक्रम विकास में अध्यापक की भूमिका स्पष्ट कीजिए।
(इंदौर 2022; छिंदवाड़ा 22; छतरपुर 22)

***अथवा*, शिक्षक का पाठ्यक्रम में क्या उत्तरदायित्व होना चाहिए ? विस्तृत विवेचना कीजिए।**
(जबलपुर 2021)

***अथवा*, पाठ्यक्रम विकास में विषय–विशेषज्ञों की भूमिका स्पष्ट कीजिए। (उज्जैन 2021)**

***अथवा*, शिक्षक को पाठ्यक्रम विकास एवं निर्माण में क्यों शामिल होना चाहिए? (भोपाल 2022)**

***अथवा*, पाठ्यक्रम निर्माण में शिक्षकों की भूमिका को स्पष्ट कीजिए। (उज्जैन 2022)**

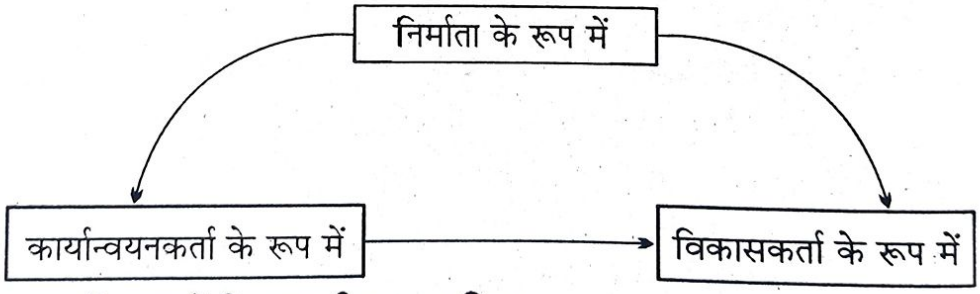
उत्तर–शिक्षक, शिक्षण प्रक्रिया में आवश्यक स्तंभ है। शिक्षक एक अंग्रेजी शब्द है। यह एक ऐसे व्यक्ति को निर्दिष्ट करता है जो आपको पढ़ाता है और आपको जीवन की वास्तविक समस्याओं का सामना करने में सक्षम बनाता है। शिक्षक एक ऐसा व्यक्ति है जो छात्रों को स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय में शिक्षित करता है। यह दुनिया भर में सबसे सम्मानित काम है। शिक्षक पाठ्यक्रम के विकास, कार्यान्वयन, आकलन एवं संशोधन में आवश्यक एवं महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पाठ्यक्रम में सुधार हेतु शिक्षक अपने ज्ञान, कौशल एवं अनुभव के साथ केन्द्र में रहता है। वे पाठ्यचर्या प्रक्रिया में शामिल अन्य लोगों की तुलना में अपने छात्रों की जरूरतों को बेहतर जानते हैं। वे पाठ्यचर्या में शामिल करने के लिए आवश्यक सामग्री, गतिविधियों और विशिष्ट कौशल के प्रकारों में अंतर्दृष्टि प्रदान कर सकते हैं।

पाठ्यक्रम विकास में शिक्षक की भूमिका–

(1) शिक्षक पाठ्यक्रम के निर्माता के रूप में–शिक्षक एक पाठ योजना या एक प्रारंभिक योजना के माध्यम से निर्माण करता है। प्रतिदिन पाठ्यक्रम लिखता है, ऐसे अनुभव को जो विद्यार्थी के लक्ष्य, आवश्यकता, रुचि को संबोधित करते हैं तथा उसे उत्तम अधिगम प्रदान करते हैं।

(2) शिक्षक पाठ्यक्रम कार्यान्वयनकर्ता के रूप में–इस चरण में शिक्षक, लिखित सामग्री को जीवन प्रदान करता है। शिक्षक की भूमिका सीखने से लेकर गतिविधियों को निर्देशित करने और सुगम बनाने तक हो गई है।

(3) शिक्षक पाठ्यक्रम विकासकर्ता के रूप में–शिक्षक एक पाठ्यक्रम निर्माता के रूप में विद्यार्थियों की विशेषताओं के अनुरूप पाठ्यचर्या को डिजाइन, समृद्ध और संशोधित करता है।



पाठ्यक्रम विकास में शिक्षक की अन्य भूमिका–

सक्रिय अधिगम–पाठ्यचर्या विषय–वस्तु है, परंतु जब संदर्भ दिया जाता है, तो यह छात्रों के लिए जीवंत हो जाता है। पाठ्यक्रम प्रक्रिया में शिक्षकों की भूमिका छात्रों को सामग्री के साथ जुड़ाव विकसित करने में मदद करना है। सक्रिय शिक्षण पाठ्यक्रम के फोकस और प्रतिधारणा को बढ़ाएगा, जिसके परिणामस्वरूप एक रोमांचक सीखने का माहौल होगा। शिक्षक ऐसे पाठों का निर्माण करते हैं, जिनमें पाठ्यक्रम प्रदान करने के लिए सिमुलेशन, प्रयोग, केस स्टडी और गतिविधियाँ शामिल हैं। यह अंत: क्रियात्मक दृष्टिकोण एवं व्यावहारिक अनुभवों को जोड़े रखता है जो छात्रों को सीखने में तल्लीन कर देता है। पाठ्यक्रम की प्रक्रिया शिक्षकों को रचनात्मक होने और कक्षा के अनुभवों पर अपनी अनूठी छाप लगाने का अवसर प्रदान करती है।

अध्याय 7

पाठ्यक्रम का मूल्यांकन

लघु एवं दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. मूल्यांकन को परिभाषित करते हुए उसके अभिप्रायों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर– मूल्यांकन (Evaluation) – मूल्यांकन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा हमें यह ज्ञात होता है कि कोई बच्चा अधिगम को किस स्तर तक सीखा है या किस स्तर तक अधिगम को ग्रहण करने में समर्थ रहा है। मूल्यांकन के द्वारा अधिगम की उपलब्धियों का पता लगाया जाता है। मूल्यांकन की प्रक्रिया शिक्षक के लिए भी लागू होती है। इस प्रक्रिया के द्वारा यह पता चलता है कि एक शिक्षक बच्चे को किस स्तर तक अधिगम कराने में सफल रहा है। बच्चे को किस स्तर तक ज्ञान देने में सफल हुए हैं इस बात की जानकारी मूल्यांकन देता है। इस प्रकार कह सकते हैं कि मूल्यांकन शिक्षक तथा बालक दोनों के लिए एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है।

परिभाषाएँ–राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) के अनुसार, "मूल्यांकन एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा यह ज्ञात किया जाता है कि उद्देश्य किस सीमा तक प्राप्त हुए। कक्षा में दिए ये अधिगम अनुभव कहाँ तक प्रभावोत्पादक रहे हैं और कहाँ तक शिक्षा के उद्देश्य पूर्ण किए गए हैं।"

जैरोमिल के अनुसार– "मूल्यांकन वह प्रणाली है, जिसके द्वारा पूर्व निर्धारित उद्देश्यों, ध्येयों और लक्ष्यों की प्राप्ति की मात्रा को निर्धारित करते हैं।"

क्यूलिन और हन्ना के अनुसार– "विद्यालय द्वारा बालक के व्यवहार में हुए परिवर्तन के विषय में साक्षियों का संकलन तथा उनकी व्याख्या ही मूल्यांकन है।"

शिक्षा आयोग (कोठारी आयोग) के अनुसार, "मूल्यांकन एक अनवरत् प्रक्रिया है। यह पूर्ण शिक्षा प्रणाली का एक अभिन्न अंग है और यह शिक्षा उद्देश्यों से घनिष्ठ रूप से संबंधित है। यह छात्रों की अध्ययन आदतों तथा शिक्षक की शिक्षण विधियों पर अधिक प्रभाव डालता हैं, इस प्रकार यह न केवल शैक्षिक उपलब्धि के मापन में सहायता करता है अपितु उसमें आवश्यक सुधार भी करता है।"

उपरोक्त परिभाषाओं से मूल्यांकन की निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट हो जाती हैं–

(1) मूल्यांकन एक प्रक्रिया है जो निरन्तर चलती रहती है।

(2) मूल्यांकन में छात्रों के व्यवहार के विषय में सामग्री एकत्रित करने के समस्त साधन सम्मिलित हैं।

(3) मूल्यांकन शिक्षा प्रणाली का एक अभिन्न अंग है जो शिक्षा के उद्देश्यों से घनिष्ठ रूप से संबंधित है।

(4) मूल्यांकन केवल निर्देशन की उपलब्धि को ही नहीं मानता है वरन् उन्नत भी बनाता है।

प्रश्न 2. मापन, आकलन एवं मूल्यांकन में अन्तर स्पष्ट कीजिए। (रीवा 2022)
अथवा, मूल्यांकन एवं मापन में अंतर लिखिए। (भोपाल 2022)

उत्तर– मापन, आकलन एवं मूल्यांकन में अन्तर–

क्र.	मापन (Measurement)	आकलन (Assessment)	मूल्यांकन (Evaluation)
1.	यह किसी वस्तु का अंकात्मक रूप है। अतः इसमें नंबर (अंक) आबंटित किये जाते हैं।	अंकों का अर्थ निकालना आंकलन कहलाता है।	अंक देना, अंकों का मूल्य निर्धारण करना तथा अंकों का अर्थ निकालना ही मूल्यांकन है।
2.	अंक आबंटन = मापन	अंक आबंटन + अंकों का अर्थ = आंकलन।	अंक आबंटन + अंकों का अर्थ + अंकों का मूल्य = मूल्यांकन।
3.	यह परिणामात्मक होता है।	यह परिणामात्मक होता है।	मूल्यांकन परिणामात्मक तथा परिणामात्मक दोनों होता है।
4.	मापन संख्यात्मक होता है।	आकलन संख्यात्मक तथा परिणामात्मक होता है।	मूल्यांकन के द्वारा मूल्यों का निर्धारण किया जाता है।
5.	यह स्थिर होता है।	यह लचीला होता है।	यह कभी लचीला तो कभी स्थिर होता है।
6.	मापन का क्षेत्र ज्यादा विस्तृत नहीं है अर्थात् यह सीमित है।	आकलन प्रायः मापन से अधिक विस्तृत है।	मूल्यांकन इन दोनों से ज्यादा विस्तृत है।
7.	इसके द्वारा छात्रों की उत्तर पुस्तिका को जाँच कर अंक प्रदान किए जाते हैं।	आकलन द्वारा छात्रों की कमजोरियाँ और अच्छाइयाँ ज्ञात होती हैं।	मूल्यांकन द्वारा दोषों का पता लगाकर उनको दूर किया जाता है।
8.	मापन उपलब्धि का स्तर है।	आकलन प्राप्ति का स्तर है।	यह उन्नति का स्तर है।
9.	मापन औपचारिक होता है।	आकलन औपचारिक तथा अनौपचारिक होता है।	यह अनौपचारिक होता है।
10.	यह पाठ्य–वस्तु केन्द्रित होता है।	यह शिक्षक तथा छात्र केन्द्रित होता है।	मूल्यांकन उद्देश्य केन्द्रित कहा जाता है।
11.	इसमें कम समय लगता है।	इसमें मापन से ज्यादा समय लगता है।	इसमें सबसे अधिक समय लगता है।
12.	मापन द्वारा परीक्षण किया जाता है।	आकलन में व्यवहार की निगरानी की जाती है।	मूल्यांकन लगातार चलने वाली प्रक्रिया है।
13.	इसको आलोचनात्मक कहा जाता है।	यह निन्दनात्मक होता है।	यह निंदनात्मक तथा आलोचनात्मक होता है।
14.	इसको निश्चित समय में किया जाता है।	इसको भी निश्चित समय में किया जाता है।	यह एक सतत् रूप से चलने वाली प्रक्रिया है।

	मापन का अस्तित्व सामने तब आता है जब हम विद्यार्थियों को अंक प्रदान करते हैं। इसके अन्तर्गत सही उत्तर के लिए पूर्ण अंक और गलत उत्तर के लिए शून्य भी दिया जाता है। इसमें गणित तथा व्यावसायिक जैसी कुछ ही परीक्षाएँ सम्मिलित की जाती हैं।	आंकलन का मुख्य उद्देश्य शिक्षण प्रक्रिया और इसकी सामग्री में सुधार लाना होता है। इस सुधार को विद्यार्थियों के द्वारा विकसित की गई क्षमता के आधार पर लाया जाता है।	इसके अन्तर्गत विद्यार्थी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की परीक्षा ली जाती है। अतः इसमें व्यक्ति के मानसिक, शारीरिक और संवेगात्मक आदि पक्षों का मूल्यांकन किया जाता है। अतः इसमें कई प्रकार की परीक्षाएँ शामिल होती हैं।

प्रश्न 3. मूल्यांकन के प्रकार बताइये। इसका विस्तृत रूप से वर्णन कीजिए।

***अथवा*, योगात्मक मूल्यांकन एवं रचनात्मक मूल्यांकन को परिभाषित कीजिए एवं उनमें अंतर स्पष्ट कीजिए।**

***अथवा*, कितने प्रकारों से पाठ्यचर्या को मूल्यांकित किया जा सकता है ? विस्तृत समझाइए।** **(इंदौर 2022)**

***अथवा*, पाठ्यक्रम मूल्यांकन की प्रविधियाँ कौन-सी हैं ?** **(छिंदवाड़ा 2021, 22)**

***अथवा*, पाठ्यचर्या मूल्यांकन का अर्थ बताते हुए, पाठ्यक्रम मूल्यांकन की मुख्य प्रविधियों पर प्रकाश डालिए।** **(जबलपुर 2022)**

उत्तर–पाठ्यचर्या मूल्यांकन का अर्थ–प्रश्न क्रमांक 5 देखिए।

मूल्यांकन मुख्यतः निम्न दो प्रकार से किया जाता है– 1. रचनात्मक मूल्यांकन (Formative Evaluation) एवं 2. योगात्मक मूल्यांकन (Summative Evaluation)।

1. रचनात्मक मूल्यांकन (Formative evaluation)–रचनात्मक मूल्यांकन प्रयासों के सुधार के उद्देश्य से उनके पूर्ण होने के पहले प्रयासों का एक आंकलन है। रचनात्मक मूल्यांकन का संबंध कार्यक्रम के अभिकल्प और विकास से होता है, जो कार्यक्रम पूर्ण होने के पूर्व संशोधन एवं सुधार की ओर निर्देशित किए जाते हैं।

ग्रानलुण्ड (1985) रचनात्मक मूल्यांकन का उपयोग अनुदेशन के दौरान अधिगम प्रगति के अनुश्रवण (Monitoring) एवं अध्यापकों तथा विद्यार्थियों को सतत् प्रतिपोष (Feedback) प्रदान करने के लिए किया जाता है। विद्यार्थियों को दिए गए प्रतिपोष से उन्हें सफल अधिगम के लिए पुनर्बलन प्राप्त होता है तथा उन त्रुटियों की पहचान होती है, जिन पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

वाइर्स्मा एवं जर्स्राइट के अनुसार– "रचनात्मक मूल्यांकन समय खण्ड में घटित होता है तथा विद्यार्थियों की प्रगति का अनुश्रवण करता है।"

भोला (1990) के अनुसार– "जब कार्यक्रम गतिविधियाँ घटित हो रही होती हैं तब रचनात्मक मूल्यांकन उस कार्यक्रम के मूल्य के अनुमानन की विधि है।"

विशेषताएँ–इनके प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित होते हैं–

(1) रचनात्मक मूल्यांकन अनुदेशन कार्यक्रम के दौरान किया जाता है।

(2) इसमें कार्यक्रम की आंशिक पूर्ति होने पर ही कार्यक्रम की प्रभाविता का पता लगाया जाता है तथा इसके द्वारा जो प्रतिपोष प्राप्त होता है, उससे बन रहे कार्यक्रम में सुधार किया जाता है।

(3) रचनात्मक मूल्यांकन प्रत्येक इकाई के पूर्ण होने पर किया जाता है। इसके द्वारा न केवल इस बात का पता चलता है कि कार्यक्रम कितना प्रभावी है, अपितु इसके पूर्ण करने के लिए कितने समय और संसाधनों की जरूरत होगी।

(4) रचनात्मक मूल्यांकन में निकष संदर्भित परीक्षणों का उपयोग किया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप विद्यार्थी के छोटे–से–छोटे व्यवहार के बारे में सूचनाएँ प्राप्त होती हैं।

(5) रचनात्मक मूल्यांकन के द्वारा अध्यापकों एवं विद्यार्थियों दोनों को प्रतिपोष प्राप्त होता है। जहाँ विद्यार्थी इसके द्वारा अपनी न्यूनताओं/सफलताओं को जान पाते हैं, वहीं शिक्षक व्यूह रचनाओं की सफलता/असफलता को जानकर उनमें आवश्यक संशोधन करते हैं।

(6) रचनात्मक मूल्यांकन कक्षा कार्य, गृहकार्य, पहेली इत्यादि के रूप में दिया जा सकता है।

(7) रचनात्मक मूल्यांकन द्वारा कार्यक्रम का सतत् अनुश्रवण किया जाता है, जिसके आधार पर चल रहे कार्यक्रम को समाप्त किया जा सकता है, संशोधित किया जा सकता है।

(8) रचनात्मक मूल्यांकन द्वारा उन कारकों की पहचान की जाती है, जो कार्यक्रम को प्रभावित करते हैं।

(9) यह अन्वेषणात्मक प्रकृति का होता है।

2. योगात्मक मूल्यांकन (Summative evaluation)—पाठ्यचर्या, विद्यार्थी और मूल्यांकन शिक्षा के तीन महत्वपूर्ण घटक हैं, किसी निश्चित पाठ्यचर्या के आधार पर जब विद्यार्थियों को पढ़ाया जाता है और पाठ्यचर्या के अंत में जब मूल्यांकन के द्वारा इस बात का पता लगाया जाता है कि पाठ्यचर्या के अभिप्राय (Aims), लक्ष्य (Goals) एवं उद्देश्य (Objectives) पूरे हुए अथवा नहीं, तब यह योगात्मक मूल्यांकन कहलाता है।

भोला (1990) के अनुसार—"योगात्मक मूल्यांकन कार्यक्रम गतिविधियों की समाप्ति पर एक कार्यक्रम के महत्व/मूल्य के निर्णय की एक विधि है।"

गुर्स (1990) के अनुसार—"योगात्मक मूल्यांकन अनुदेशन के समापन के समय किया जाता है, तथा यह विद्यार्थियों ने वांछित परिणाम किस सीमा तक प्राप्त किए हैं, यह मापता है।"

विशेषताएँ—योगात्मक मूल्यांकन की मुख्य विशेषताएँ निम्न हैं—

(1) योगात्मक मूल्यांकन किसी विशेष अनुदेशन कार्यक्रम के पूर्ण होने पर किया जाता है। कार्यक्रम की अवधि एक सेमेस्टर से लेकर एक वर्ष तक हो सकती है।

(2) इसके द्वारा इस बात का पता चलता है कि अधिगम हुआ अथवा नहीं। और यदि अधिगम हुआ है तब पूर्व निर्धारित उद्देश्य किस सीमा तक पूर्ण हुए हैं तथा उनकी गुणवत्ता कैसी है।

(3) योगात्मक मूल्यांकन के लिए सुपरिभाषित मूल्यांकन रूपरेखा का उपयोग किया जाता है।

(4) इसके द्वारा वर्णनात्मक विश्लेषण प्राप्त किया जाता है।

(5) इसका संबंध मुद्दों के व्यापक विस्तार से होता है।

(6) योगात्मक मूल्यांकन के लिए अध्यापक निर्मित परीक्षण एवं निर्धारण मापनियों का उपयोग किया जाता है।

(7) योगात्मक मूल्यांकन के द्वारा उत्पाद की प्रभाविता का पता चलता है।

(8) यह विशेषतः मात्रात्मक होता है जिसमें अंकीय फलांक प्राप्त होते हैं।

(9) इसके द्वारा अधिगम सामग्रियों एवं अधिगम प्रक्रियाओं का मूल्यांकन किया जाता है, जिसके कारण इसका नाम योगात्मक मूल्यांकन है।

रचनात्मक एवं योगात्मक मूल्यांकन में अंतर–

क्र.	रचनात्मक मूल्यांकन	योगात्मक मूल्यांकन
1.	रचनात्मक मूल्यांकन, योगात्मक मूल्यांकन की अपेक्षा अधिक जटिल है। यह लघु समूह पर किया जाता है ताकि अनुदेशात्मक सामग्रियों के विभिन्न पहलुओं के बारे में प्रतिपोष प्राप्त हो सके। **उदाहरण**–अपने विद्यार्थियों को पढ़ने के लिए कोई अधिगम सामग्री दी है, तब उसके विभिन्न पहलू रेखाचित्र, प्रवाह चित्र, भाषा, संदर्भ विशिष्ट उद्देश्य, अधिगम अभ्यास इत्यादि होंगे।	योगात्मक मूल्यांकन उत्पाद की प्रभाविता पर सूचना प्रदान करता है। इसके द्वारा इस बात का पता चलता है कि अनुदेशन कार्यक्रम के द्वारा हमने क्या अपेक्षा की थी। योगात्मक मूल्यांकन प्रायः मात्रात्मक होता है, जिसमें अंकिक फलांकों अथवा श्रेणियों का उपयोग अधिगमक की उपलब्धियों के आंकलन के लिए किया जाता है।
2.	रचनात्मक मूल्यांकन कार्यक्रम के विकास के दौरान किया जाता है व एक से अधिक बार किया जाता है।	यह कार्यक्रम के पूर्ण होने के पश्चात् किया जाता है व एक बार किया जाता है।
3.	रचनात्मक मूल्यांकन प्रायः आंतरिक एवं बाह्य मूल्यांकन दोनों के द्वारा किया जाता है।	योगात्मक मूल्यांकन अनुदेशन निर्माता के द्वारा किया जाता है।
4.	रचनात्मक मूल्यांकन का उपयोग अनुदेशन के लक्ष्यों का वैधीकरण करने व अनुदेशन में सुधार करने के लिए किया जाता है।	जबकि योगात्मक मूल्यांकन में उत्पाद की प्रभाविता का पता लगाया जाता है। योगात्मक मूल्यांकन का प्रयोजन अध्यापक के निष्पादन के बारे में उसे सूचना देना होता है।
5.	रचनात्मक मूल्यांकन पाठ्यचर्या के निर्धारण की गुणवत्ता प्रदान करने के लिए पाठ्यचर्या विकास प्रक्रिया द्वारा किया जाता है।	योगात्मक मूल्यांकन पूर्ण की गयी पाठ्यचर्या के व्यापक आंकलन को प्राप्त करने के लिए किया जाता है।
6.	इसका एक अतिरिक्त प्रयोजन बेहतर उत्पाद प्राप्त करने के लिए उपयोग में लाए जाने वाले प्रदत्त प्राप्त करने के लिए किया जाता है।	इसका एक अतिरिक्त प्रयोजन पूर्ण किए गए उत्पाद के बारे में अंतिम निर्णय प्रदान करना होता है।
7.	रचनात्मक मूल्यांकन में 'सतत्' अथवा 'चल रहे' कार्यक्रम का मूल्यांकन किया जाता है।	योगात्मक मूल्यांकन में अंतिम परिणाम एवं 'उत्पाद' का मूल्यांकन किया जाता है।

प्रश्न 4. मानक संदर्भित परीक्षण एवं निकष संदर्भित परीक्षण की व्याख्या कीजिए एवं उनमें अंतर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर–मानक संदर्भित परीक्षण (Norms referenced test) –मानक संदर्भित परीक्षण मापन की पारंपरिक विधि में विद्यार्थी की उपलब्धि को एक समूह, एक कक्षा, एक विद्यालय या एक राज्य के संदर्भ में लिया जाता था, जिसमें उत्तीर्ण अनुमानों के संदर्भ में विद्यार्थी के अंकों की व्याख्या की

जाती थी। इस प्रकार प्रत्येक विद्यार्थी के अधिगम के अनुमान के लिये आधार रूप में एक समूह के मानक या परंपरागत निष्पादन का प्रयोग किया जाता है। अत: ऐसा मापन जिसमें विद्यार्थी के अंकों की व्याख्या एक समूह के संदर्भ में की जाती है, वह **मानक संदर्भित परीक्षण** कहलाता है।

उपयोग–(1) एक पाठ्यक्रम अन्य संभव पाठ्यक्रमों की तुलना में कैसे प्रभावी हो सकता है, यह पता करने में।

(2) एक विशेष कार्यक्रम के लिये एक सबसे अच्छे आवेदक का चयन करने में।

(3) हमारे द्वारा मापी गई उपलब्धि के संदर्भ में विद्यार्थियों की विश्सवसनीय कोटि पाने में।

(4) विभिन्न पूर्वानुमान करने के लिए अभिक्षमता परीक्षण में।

दोष–(1) ऐसे प्रश्न, जिनके उत्तर ज्यादातर विद्यार्थियों ने सही दिये हों, इन परीक्षणों में शामिल नहीं किये जाते हैं, क्योंकि अनुक्रिया भिन्नता (Response variance) में उनका अपर्याप्त योगदान रहता है।

(2) परीक्षण क्या मापता हैं ? और एक स्थानीय पाठ्यचर्या में किस पर बल दिया गया है ? इन दोनों के मध्य संगति (Congruence) की कमी है।

(3) मानक संदर्भित परीक्षण अस्वास्थ्यकर प्रतियोगिता को बढ़ावा देते हैं और निम्न फलांक वाले विद्यार्थियों की आत्म संकल्पना के लिये हानिकारक हैं।

निकष संदर्भित परीक्षण (Criterion referenced test)–ऐसा परीक्षण जिसमें विद्यार्थी के निष्पादन का मापन एक विशिष्ट निकष के संदर्भ में किया जाता है **निकष संदर्भित परीक्षण** कहलाता है। इसके अंतर्गत हम एक व्यक्ति के निष्पादन के संदर्भ के लिये मानक के स्थान पर एक पूर्व निर्धारित निकष का प्रयोग करते हैं।

रॉबर्ट ग्लेजर (Robert Glaser) के अनुसार– "निकष संदर्भित परीक्षण वह है, जो कि जानबूझकर मापन के लिये निर्मित किया गया है, जिसका प्रत्यक्ष रूप में निर्वाचन विद्यार्थियों के निष्पादन के आधार पर किया जा सकता है।"

पोफम (Popham) के अनुसार– "निकष संदर्भित परीक्षण एक सुपरिभाषित व्यावहारिक जा सके संदर्भ में एक व्यक्ति के स्तर को जांचने में प्रयोग किया जाता है।"

इवान (Evan) के अनुसार– "एक निकष संदर्भित परीक्षण वह है जिसमें व्यक्ति के एक समुच्चय से कथनों की कुंजी को शामिल किया जाता है।"

उपयोग– (1) विद्यार्थियों की अधिगम में अपर्याप्तता को खोजने एवं कमजोर विद्यार्थियों को उपचार के एक नियमित कार्यक्रम के द्वारा अन्य विद्यार्थियों के स्तर तक पहुँचाने में मदद करता है।

(2) अनुदेशन के विभिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति का स्तर ज्ञात हो जाता है।

(3) किसी विशेष संकल्पना को किस स्तर तक सीखा, यह ज्ञात करने में सहायक होता है।

(4) विभिन्न स्तरों पर संकल्पनाओं के बेहतर स्थान (Placement) में सहायक होता है।

निकष संदर्भित एवं मानक संदर्भित मापन परीक्षणों की तुलना–

क्र.	मानक संदर्भित परीक्षण	निकष संदर्भित परीक्षण
1.	मानक संदर्भित मापन का मुख्य कार्य मान–कीय समूह में विद्यार्थी की सापेक्ष स्थिति का पता लगाना है।	निकष संदर्भित मापन का मुख्य कार्य इस बात का निर्धारण करना है कि विद्यार्थी ने विशिष्ट अथवा निष्पादन मानक में पारंगतता प्राप्त की है।
2.	मानक संदर्भित परीक्षण का निर्माण करते समय सामान्य अधिगम परिणाम अथवा सुनिश्चित उद्देश्यों का विशेष उल्लेख किया जाता है।	निकष संदर्भित परीक्षण का निर्माण करते समय पूर्ण व्यावहारिक उद्देश्यों का विशेष उल्लेख किया जाता है।
3.	मानक संदर्भित मापन का उपयोग करते समय पारंगतता के लिये निकष का उल्लेख नहीं किया जाता है।	निकष संदर्भित परीक्षण के उपयोग के लिये पारंगतता के लिये निकष का उल्लेख किया जाना चाहिए।
4.	मानक संदर्भित मापन के लिये परीक्षण पदों का निर्माण विद्यार्थियों में विभेद करने के लिये किया जाता है।	निकष संदर्भित मापन के लिये परीक्षण पदों का निर्माण पूर्व ज्ञात निपुणता के स्तर के मापन के लिये किया जाता है।
5.	मानक संदर्भित परीक्षणों से प्राप्त परिणामों को परम्परागत ग्रेडिंग पद्धति (A,B,C,D,E) में परिवर्तित किया जा सकता है।	निकष संदर्भित मापन के परीक्षण प्राप्तांक एक द्विआधारी पद्धति को सुझाते हैं अर्थात् उत्तीर्ण या अनुत्तीर्ण।

प्रश्न 5. पाठ्यक्रम की मूल्यांकन प्रक्रिया का विस्तार से उल्लेख कीजिए।
***अथवा*, पाठ्यक्रम मूल्यांकन कार्यक्रम की विशेषताएँ लिखिए।** **(उज्जैन 2021)**
***अथवा*, अच्छे मूल्यांकन की विशेषताएँ लिखिए।** **(जबलपुर 2022)**
***अथवा*, पाठ्यचर्या मूल्यांकन क्या होता है ?** **(भोपाल 2022)**

उत्तर–पाठ्यक्रम के मूल्यांकन का तात्पर्य शैक्षिक प्रयासों के परिणामस्वरूप उत्पन्न व्यवहारगत परिवर्तनों की प्रकृति, दिशा तथा सीमा के प्रमाण प्राप्त करना तथा उनकों पाठ्यक्रम प्रक्रिया के पक्षों में सुधार लाने के लिए मार्गदर्शक के रूप में प्रयुक्त करना है। स्पष्ट है कि यह प्रमाण केवल छात्रों में हुए परिवर्तनों से ही प्राप्त किया जा सकता है। कुछ स्थितियों में इनका मापन वस्तुनिष्ठ रूप में तथा संख्यात्मक रूप में करना सम्भव है, किन्तु अधिकांशतः गुणात्मक मापन ही किया जा सकता है तथा इसे ही पर्याप्त माना जाता है।

विद्यार्थियों के व्यक्तिगत अथवा वर्गगत व्यवहार परिवर्तन के साथ–साथ विद्यालय के उद्देश्यों तथा उन्हें प्राप्त करने के लिए प्रयुक्त अधिगम अनुभव, अन्तर्वस्तु संगठन तथा शिक्षण विधियों के संबंध में निर्णय लेना भी मूल्यांकन के अन्तर्गत आता है।

अच्छे मूल्यांकन कार्यक्रम की विशेषताएँ–मूल्यांकन कार्य में मापन एवं परीक्षण सम्मिलित होता है। अतः एक अच्छे मूल्यांकन कार्यक्रम की विशेषताओं में मापन एवं परीक्षण की विशेषतायें अन्तर्निहित होनी चाहिए। इस प्रकार मूल्यांकन कार्यक्रम की प्रमुख विशेषतायें अग्र प्रकार हैं–

1. क्रमबद्धता (Orderliness) —यदि किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए किये जा रहे प्रयासों या कार्य के एक सोपान (निश्चित पद) के पश्चात् उसकी जाँच या परीक्षण कर लिया जाये तो प्राप्त निष्कर्षों का उपयोग उद्देश्यों में सुधार लाने तथा आगामी सोपान या पद के निर्णय लेने के लिए किया जा सकता है। इससे सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि किए जा रहे कार्य की प्रत्येक स्तर पर पुष्टि होती रहती है। अतः प्रत्येक सोपान के बाद मूल्यांकन अथवा जाँच का कार्य अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति तक क्रमबद्ध ढंग से चलता रहना चाहिए। इस प्रकार मूल्यांकन कार्यक्रम या क्रमबद्ध का विशेष महत्व है।

मूल्यांकन में क्रमिकता न होने पर शिक्षार्थी या कार्यकर्त्ता को अपनी प्रगति के बारे में अन्त तक कोई सूचना नहीं मिल पाती है। अतः इसके अभाव में शिक्षार्थी में कार्य के प्रति त्रुटिपूर्ण अभिवृत्ति विकसित हो सकती है, वह त्रुटिपूर्ण कार्यविधि अपना सकता है तथा गलत निष्कर्ष निकाल सकता है।

मूल्यांकन कार्य के क्रम में निश्चितता का होना भी आवश्यक है। जिस प्रकार पाठ्यक्रम के उद्देश्यों में पूर्व सम्बन्ध होता है तथा जिस प्रकार उन्हें महत्व के क्रम में व्यवस्थित किया जाता है। उसी प्रकार का क्रम उनकी जाँच में भी रहना चाहिए। उदाहरणार्थ, यदि संकल्पनाओं को तथ्यों से अधिक महत्वपूर्ण माना गया है, तो मूल्यांकन कार्य में भी महत्व के उसी क्रम को बनाये रखना चाहिए।

2. वस्तुनिष्ठता (Objectivity) —एक उत्तम परीक्षा का वस्तुनिष्ठ होना अतिआवश्यक है। वस्तुनिष्ठता का अर्थ यह है कि मूल्यांकन में व्यक्तिगत पक्षों का प्रभाव नहीं होना चाहिए। स्पष्ट है कि ज्ञानात्मक क्षेत्र में मूल्यांकन में वस्तुनिष्ठता भावात्मक क्षेत्र की तुलना में अधिक होगी। ज्ञानात्मक क्षेत्र में यह उच्च स्तर की अपेक्षा निम्न स्तर पर अधिक वस्तुनिष्ठ होगा।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जटिल अधिगम प्रक्रिया के मापन के लिए जब तक सन्तोषजनक परिभाषाएँ विकसित नहीं हो पातीं तब तक पर्याप्त सीमा तक हमें विशेषज्ञों द्वारा किये गये मूल्यांकन पर ही निर्भर रहना होगा। यहाँ पर यह बात भी महत्वपूर्ण है कि आत्मनिष्ठता (Subjectivity) और वस्तुनिष्ठता में परस्पर उतना विरोध नहीं है जितना प्रायः समझा जाता है। ये उपकरणों को यथासम्भव अधिक–से–अधिक वस्तुनिष्ठ बनाया जाये। इसके साथ ही इस बात पर भी ध्यान रखने की आवश्यकता होती है कि किसी मूल्यांकन कार्य को उससे अधिक वस्तुनिष्ठ न मान लिया जाये जितना कि वह वास्तव में है।

3. विश्वसनीयता (Reliability) —एक अच्छा मूल्यांकन विश्वसनीय भी होना चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि बार–बार तथा अनेक लोगों द्वारा मूल्यांकन किये जाने पर भी उसके निष्कर्षों में कोई विशेष अन्तर नहीं आये। अतः स्पष्ट है कि विश्वसनीयता के लिए वस्तुनिष्ठता एक पूर्व आवश्यकता है। इसीलिए निबन्धात्मक परीक्षा की अपेक्षा वस्तुनिष्ठ परीक्षा अधिक विश्वसनीय होती है।

4. वैधता (Validity)—एक उत्तम परीक्षण का वैध होना भी आवश्यकता है। वैधता से तात्पर्य परीक्षण की सार्थकता से है अर्थात् परीक्षण जिस मापन के लिए बनाया गया है, उसे उसका ही मापन करना चाहिए। इसीलिए कोई मूल्यांकन प्रक्रिया तभी वैध कहलाती है जब वह उसी गुण, पक्ष, विशेषता आदि का मापन करती है, जिसका मापन करना अभीष्ट होता है। अतः पाठ्यक्रम के मूल्यांकन में उन्हीं पक्षों पर ध्यान केन्द्रित होना चाहिए जिन पक्षों पर वह पाठ्यक्रम आधारित है।

5. व्यावहारिकता (Usability) —एक अच्छी परीक्षा की प्रमुख विशेषता यह होती है कि उसका प्रयोग, अंकन एवं प्राप्त प्रदत्तों का अर्थापन (Interpretation) करना सरल होता है। किसी भी परीक्षण की रचना शिक्षार्थियों की अधिगम उपलब्धियों के मूल्यांकन के लिए की जाती है। अतः परीक्षण का व्यावहारिक होना अति आवश्यक होता है। इसलिए मूल्यांकन कार्यक्रम इस प्रकार निर्धारित किया जाना चाहिए जो व्यावहारिक भी हो।

6. व्यापकता (Broadness)—मूल्यांकन कार्यक्रम में सभी पक्षों एवं सभी शैक्षिक उद्देश्यों की जाँच की जानी चाहिए। कुछ क्षेत्रों में जाँच कार्य कठिन अवश्य होता है, किन्तु इसके लिए भी कोई-न-कोई उपाय निकालने का प्रयास करना चाहिए। परीक्षण उपकरणों के रूप में मानकीकृत (Standard) परीक्षाओं के अतिरिक्त शिक्षक निर्मित परीक्षाओं, विधिवत् पर्यवेक्षण, अभिलेख, स्तरमापी, प्रश्नावली, समाजमिति आदि अनेक विधियों-प्रविधियों को भी मूल्यांकन हेतु काम में लाया जा सकता है। इस प्रकार शिक्षार्थियों के व्यवहार में ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक सभी क्षेत्रों में हुए परिवर्तनों की जाँच करके मूल्यांकन को व्यापक रूप प्रदान किया जाना चाहिए। पाठ्यक्रम के मूल्यांकन में तो व्यापकता का होना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

7. शिक्षार्थी की सहभागिता (Participation of Learners)—परम्परागत दृष्टि में शिक्षार्थी का मूल्यांकन प्रक्रिया में कोई स्थान नहीं होता है। इसके अनुसार छात्र ज्ञान प्राप्त करते हैं तथा शिक्षक, प्रधानाध्यापक एवं विशेष रूप से नियुक्त परीक्षक, उनके कार्यों का मूल्यांकन करते हैं। इस प्रकार शिक्षार्थी और परीक्षक दो पृथक् वर्गों में विभक्त होते आए हैं, किन्तु शिक्षार्थी मूल्यांकन प्रक्रिया में भाग लेते हैं। वास्तविकता तो यह है कि प्रत्येक छात्र स्वयं तथा अपने साथियों के व्यवहार में होने वाले परिवर्तनों का निरन्तर मापन एवं मूल्यांकन करता रहता है।

प्रश्न 6. पाठ्यक्रम मूल्यांकन की आवश्यकता से आप क्या समझते हैं ? (ग्वालियर 2021)

उत्तर—पाठ्यक्रम मूल्यांकन की आवश्यकता एवं महत्व—पाठ्यक्रम मूल्यांकन की आवश्यकता एवं महत्व को निम्न बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है—

1. पाठ्यक्रम की उपयुक्तता (Suitability of Curriculum) —पाठ्यक्रम उपयुक्त होना चाहिए। पाठ्यक्रम मूल्यांकन पाठ्यक्रम की उपयुक्तता निर्धारित करता है। यह निर्धारित करता है कि पाठ्यक्रम जिस उद्देश्य के लिए निर्मित किया गया है, उसकी पूर्ति करता है कि नहीं।

2. निष्क्रिय सामग्री को हटाना और वर्तमान पाठ्यक्रम का अद्यतन (नवीनतम) करना (Deleting Obsolete Outdated Contents and Update Existing Curriculum) —इसमें यह आवश्यक है कि अव्यवहृत (जो व्यवहार में न लाया गया हो) विचारों और प्रक्रियाओं को हटाया जाए और पाठ्यक्रम में प्रचलित समसामयिक परिवर्धन शामिल किया जाए। विषय-वस्तु एवं प्रक्रियाओं को शामिल करने अथवा विलोपन के बारे में वस्तुनिष्ठ निर्णय लेने के लिए पाठ्यक्रम मूल्यांकन प्रयोग आवश्यक होगा। इसमें अनावश्यक सामग्री को हटाया जाता है।

3. कार्यान्वयन के अंतर्गत पाठ्यक्रम की समीक्षा अथवा पुनर्निरीक्षण (Reviewing Curriculum under Implementation) —कार्यान्वयन के लिए पाठ्यक्रम की समीक्षा आवश्यक होती है। नीति योजना आयोजकों और निर्णय करने वाले की पाठ्यक्रम के कार्यान्वयन पर तुरंत प्रतिपुष्टि की आवश्यकता हो सकती है ताकि यदि आवश्यक हो तो सभी सम्बद्ध उद्देश्यों की प्रभावशाली प्राप्ति के लिए उसमें संशोधन किए जा सके। इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु पाठ्यक्रम मूल्यांकन आवश्यक है।

4. विभिन्न अवयवों का मूल्यांकन (Evaluation of Different Components) —समस्त अवयवों का मूल्यांकन करना आवश्यक होता है। पाठ्यक्रम के विभिन्न अवयवों जैसे—अदा, प्रदा तथा प्रक्रियाओं (Input, Output and Processes) को समय-समय पर मूल्यांकन की आवश्यकता होती है। यह पाठ्यक्रम के पुराने, घिसे-पिटे, अनुपयोगी एवं त्रुटिपूर्ण अवयवों को पाठ्यक्रम से निकालने (हटाने) में सहायता करता है।

5. नये पाठ्यक्रम का विकास (Development of New Curriculum)—नये पाठ्यक्रम के विकास हेतु पाठ्यक्रम मूल्यांकन सहयोगी है। यदि आप माध्यमिक स्तर पर एक व्यावसायिक पाठ्यक्रम के लिए एक नये पाठ्यक्रम का विकास करना चाहते हैं तो एक भिन्न प्रणाली द्वारा वर्तमान पाठ्यक्रम का मूल्यांकन हमारी उभरती आवश्यकता के लिए उपयोगी होगी। सामान्य प्रक्रिया होगी कि वर्तमान पाठ्यक्रम को हमारी नयी आवश्यकताओं के अनुरूप बनाने के लिए उसमें काँट–छाँट की जाए, क्योंकि बहुधा योजना प्रक्रम में निर्णय बिल्कुल मनमाने ढंग के होते हैं। इस प्रक्रिया में पाठ्यक्रम के बोझिल होने का भय हो जाता है। नये पाठ्यक्रम के विकास पर वस्तुनिष्ठ निर्णय लेने के लिए वर्तमान पाठ्यक्रम का मूल्यांकन करना आवश्यक है।

6. समाज में परिवर्तन (Changes in Society) – समाज तीव्रता से परिवर्तित होने के दौर में है। समाज में लगभग प्रत्येक वस्तु तेजी से परिवर्तित हो रही है। इसी के अनुसार लोगों की आवश्यकताएँ, आकांक्षाएँ तथा माँगे भी परिवर्तित हो रही है । शैक्षिक लक्ष्य छात्रों की आवश्यकताओं, आकांक्षाओं तथा माँगों से संबंधित होते हैं। अतः पाठ्यक्रम का मूल्यांकन आवश्यक एवं अनिवार्य है।

7. पाठ्यक्रम की प्रभावशीलता मालूम करना (Finding out Effectiveness of Curriculum)– शीघ्र तथा दीर्घकालीन उद्देश्यों की प्राप्ति के संबंध में पाठ्यक्रम के मूल्यांकन का प्रयोग आवश्यक है। यह मूल्यांकन प्रमाणीकरण के प्रयोजनों के लिए विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम के मूल्यांकन से अलग है। इसमें अंतर यह है कि पाठ्यक्रम के विभिन्न अंगों की उपयुक्तता के संबंध में निर्मित भावनाएँ भी सम्मिलित की जाती है।

8. बेहतर बनाने के लिए परिवर्तन (Changes for Betterment)—अच्छे पाठ्यक्रम की विषय–सामग्री की बुनियादी, कम मूल्य, अर्थपूर्ण एवं वास्तविक रूप से कुशल होने की आवश्यकता होती है। अतः यह कारक पाठ्यक्रम के मूल्यांकन की आवश्यकता पैदा करता है।

9. ज्ञान का विस्फोट (Explosion of Knowledge) –प्रत्येक विषय की विषय–वस्तु ज्ञान के विस्फोट के कारण परिवर्तित हो रही है। प्रत्येक अध्ययन सामग्री में नये विषय–सामग्री शामिल करने की आवश्यकता है। समय–समय पर पाठ्यक्रम के मूल्यांकन से विषय–वस्तु को नवीनतम किया जा सकता है। इसलिए पाठ्यक्रम मूल्यांकन की आवश्यकता है।

10. गुणवत्ता नियंत्रण का साधन (Means of Quality Control)– पाठ्यक्रम के मूल्यांकन से विषय–वस्तु की गुणवत्ता का नियंत्रण होता है। पाठ्यक्रम मूल्यांकन इस दृष्टिकोण से भी आवश्यक तथा महत्वपूर्ण है। पाठ्यक्रम मूल्यांकन पूरे कोर्स के उद्देश्यों का कथन करने की क्रिया से शुरू होती है। इसके पश्चात् इन उद्देश्यों को व्यावहारिक शब्दावली में परिभाषित की जाती है। अगली अवस्था में मदों (Items) का विकास किया जाता है, जिसका उद्देश्य यह जानना होता है कि किस सीमा तक नयी सामग्रियाँ विकसित तथा व्यवहार जो पाठ्यक्रमकर्त्ताओं के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की पूर्ति करेंगे।

अतः उपरोक्त द्वारा स्पष्ट किया गया है कि पाठ्यक्रम मूल्यांकन, अध्यापकों और निर्णयकर्त्ताओं की पाठ्यक्रम तथा इसके विकास और कार्यान्वयन पर वस्तुनिष्ठ निर्णय लेने में सहायक कर सकता है। निःसंदेह यह किसी पाठ्यक्रम मूल्यांकन कार्य का प्रमुख प्रयोजन है। मूल्यांकन के परिणामों का प्रयोग भावी शैक्षिक प्रयास को उन्नत करने में किया जा सकता है। अन्यथा पाठ्यक्रम मूल्यांकन के किसी प्रयोग का कोई अर्थ नहीं है। प्रशासकों, नीति निर्माताओं, अध्यापकों, माता–पिता तथा विद्यार्थी

भी उन ढंगों से संबंधित है जिनके द्वारा किसी स्कूल पाठ्यक्रम को कार्यान्वित (लागू) किया जा रहा है। उनके पास इसे उत्तरदायी बनाने के पर्याप्त कारण है। इसलिए इन कारणों से पाठ्यक्रम मूल्यांकन की प्रक्रिया महत्वपूर्ण बन जाती है।

प्रश्न 7. शिक्षक या अध्यापक शिक्षा का अर्थ, परिभाषा, उद्देश्य, आधारभूत अवधारणाएँ, क्षेत्र, आवश्यकता एवं महत्व लिखिए। **(रीवा 2022)**

***अथवा*, अध्यापक शिक्षा का अर्थ, आवश्यकता एवं महत्व लिखिए।**

***अथवा*, शिक्षण शिक्षा के क्षेत्र में किए जा रहे नवाचारों का वर्णन कीजिए। (छतरपुर 2022)**

उत्तर—अध्यापक या शिक्षक शिक्षा का अर्थ —अध्यापक या शिक्षक शिक्षा एक ऐसी शैक्षिक व्यवस्था है जिसमें अध्यापकों को इस प्रकार से शिक्षित करने के प्रयास किये जाते हैं कि ज्ञान तथा मूल्यों का एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी तक इस तरह हस्तांतरण किया जाये कि उसमें शैक्षणिक व विकासात्मक उत्तरदायित्वों का आरोपण किया जा सके और वो वैज्ञानिक दृष्टिकोण, सांस्कृतिक दक्षता, प्रयोगधर्मी सोच (Innovative thinking) तथा मानवीय प्रवृत्ति विकसित कर सके, क्योंकि अध्यापक को एक व्यवसाय मान लिया गया है। यह जरूरी है कि अध्यापक शिक्षा की व्यवस्था भी इस प्रकार हो कि उसकी व्यावसायिक दक्षता व संवेगात्मक पहलू की ओर भी ध्यान दिया जा सके।

अतः सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक पहलुओं के अतिरिक्त उसके लोकतांत्रिक मूल्यों को ग्रहण करना भी महत्वपूर्ण है। यह एक व्यवस्था है जो लोगों को राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में शिक्षक की आधुनिक तथा बदलती हुई भूमिका का निर्वाह करने की योग्यता व दक्षता को ग्रहण करने के लिए शिक्षित करती है। इस अर्थ में अध्यापक शिक्षा मात्र एक कार्यक्रम नहीं है, बल्कि एक मिशन है।

अध्यापक शिक्षा की परिभाषाएँ—

प्रो. एस.एन. मुखर्जी के अनुसार— "विभिन्न शिक्षा केन्द्रों में सुधार की आवश्यकता है और इस उद्देश्य हेतु 'अध्यापक शिक्षा' एक बेहतर शब्द है, क्योंकि यह अध्यापक निर्माण संबंध क्षेत्र को विस्तृत बनाती है।"

मुनरो के अनुसार—"अध्यापक शिक्षा का अर्थ है सम्पूर्ण शिक्षापूर्ण अनुभव जो विद्यालयों में शिक्षण पद के लिए व्यक्ति को तैयार करती है, परन्तु यह शीर्षक शैक्षणिक संस्थाओं द्वारा आयोजित विभिन्न कार्य और अन्य अनुभवों संबंधी कार्यक्रमों पर लागू होता है जो शिक्षक और अन्य शैक्षणिक सेवाओं हेतु व्यक्ति को तैयार करने के उद्देश्य के लिए बनाए जाते हैं। ये कार्यक्रम अँध्यापक महाविद्यालयों, सामान्य विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में लागू होते हैं।"

गुड के शिक्षा कोष के अनुसार—"अध्यापक शिक्षा में वे सभी अनुभव तथा औपचारिक एवं अनौपचारिक क्रियाएँ सम्मिलित हैं जो किसी भी व्यक्ति को शिक्षण–व्यवसाय का दायित्व संभालने की योग्यता प्रदान करती है।"

अध्यापक शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य—शिक्षक या अध्यापक शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. शिक्षकों को पाठ के शिक्षण संबंधी विषय–वस्तु की योजना बनाने का ज्ञान देना।
2. शिक्षक शिक्षा के द्वारा शिक्षक को भिन्न–भिन्न प्रचलित तथा आधुनिकुतम विधियों से अवगत कराना।
3. अध्यापक शिक्षा के द्वारा मनोविज्ञान का ज्ञान प्रदान कर शिक्षकों को छात्रों के शिक्षण हेतु प्रभावी बनाना।

4. श्रेणी तथा वैयक्तिक भिन्नता के आधार पर ज्ञान देने की योग्यता प्रदान करना।

5. शिक्षक शिक्षा द्वारा छात्रों की निजी समस्याओं से अवगत कराना तथा उसे हल करने में सहायता प्रदान करने हेतु शिक्षित करना।

6. विद्यालय में अध्यापकों को किन–किन कर्त्तव्यों को निभाना है, इसका ज्ञान देना।

7. अध्यापक को अपने दर्शन निर्माण के साथ–साथ भिन्न–भिन्न दर्शनों का ज्ञान देना।

8. छात्रों की प्रकृति के प्रति सूझ–बूझ का विकास करने के लिए अध्यापकों की सहायता करना।

9. छात्र की व्यक्तिगत विभिन्नताओं तथा आवश्यकताओं की जानकारी प्राप्त करना तथा उनके अनुसार शैक्षिक प्रक्रिया की समायोजना पर काम करना।

10. भिन्न–भिन्न शैक्षिक साधनों, उपकरणों, दृश्य–श्रव्य साधनों तथा शैक्षिक सामग्री के विकास और उनका प्रयोग करने में अध्यापकों की सहायता करना।

11. विद्यालय की पाठ्यचर्या, पाठ्य–सहगामी क्रियाओं के संगठन पर्यवेक्षण और उसमें भाग लेने के लिए अध्यापकों की सहायता करना।

12. भिन्न–भिन्न विधियों द्वारा छात्रों की उपलब्धियों का मूल्यांकन करना सिखाना।

13. कक्षा प्रबंधन तथा शिक्षण सिद्धांतों की सही जानकारी उपलब्ध करना।

14. शिक्षक शिक्षा द्वारा शिक्षकों को शैक्षिक सामग्री का सही प्रयोग करना सिखाना।

अध्यापक शिक्षा के लिए आधारभूत अवधारणाएँ–अध्यापक शिक्षा या शिक्षक शिक्षा की निम्नलिखित आधारभूत अवधारणाएँ हैं–

1. मानव निर्माण की प्रक्रिया शैशवावस्था से प्रौढ़ावस्था तक शुरू होती है। अतः अध्यापक शिक्षा के सभी स्तर ऐसे अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम को विकसित करने में सहायक होंगे जो कि एक ओर वातावरण एवं दूसरी ओर सीखने वालों की विभिन्नताओं तथा सामाजिक आवश्यकता को निश्चित करें।

2. अध्यापक शिक्षा का विभिन्नात्मक पक्ष इस बात पर बल देता है कि प्रत्येक स्तर पर अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम का निरूपण बच्चों के विकास एवं देश के उद्देश्यों के संदर्भ में करना चाहिए।

3. जब शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य का निर्माण करना है तब एकाकी, प्रजातांत्रिक एवं समाजशास्त्रीय समाज के निर्माण में मौन सहायता प्रदान कर सकता है। अतः अध्यापक शिक्षा मनुष्य निर्माण प्रक्रिया को निश्चित करती है।

4. तीन भाग जो कि पहले कहे गये हैं, वे अध्यापक शिक्षा का केन्द्र निर्माण करेंगे, वे निम्न हैं–

(i) भावी अध्यापकों को इन सभी वस्तुओं से परिचित कराना चाहिए। कैसे एवं क्यों ? अध्यापक व्यवहार हो। इन प्रश्नों के उत्तर मनोविज्ञान, प्रशिक्षणशास्त्र एवं समाजशास्त्र के आधार पर दिये जायेंगे।

(ii) नेता एवं समाज का पथ प्रदर्शक होना चाहिए।

(iii) भावी अध्यापक को अपने विषय का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए और अपने विषय में शिक्षण विधि का विशेषज्ञ होना चाहिए।

5. अध्यापक शिक्षा को दो प्रकार के पाठ्यक्रमों में सम्मिलित करना चाहिए—(1) विषय–संबंधी पाठ्य–वस्तु एवं (2) विधि संबंधी पाठ्य–वस्तु। विषय–संबंधी पाठ्य–वस्तु में सीखने के अनुभव, जो कि शिक्षण विषय से संबंधित हों।

विधि संबंधी पाठ्य–वस्तु में दो प्रकार के कौशल का विकास करना चाहिए—(i) सामान्य शिक्षण कौशल अध्यापक शिक्षा के सभी स्तरों के लिए तथा

(ii) विशेष शिक्षण कौशल।

6. अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम को प्रत्येक स्तर पर आगे की ओर बढ़ाना चाहिए। जैसे—

(1) प्रशिक्षण संबंधी पाठ्य–वस्तु,

(2) समुदाय के साथ कार्य तथा

(3) विषय–वस्तु एवं विधि–संबंधित पाठ्य–वस्तु एवं अभ्यास शिक्षण पाठ्य–वस्तु।

7. संपूर्ण अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में समुदाय के साथ कार्य करते हुए छात्र एवं विधि संबंधी भाग एक स्तर से दूसरे स्तर तक परिवर्तित होंगे।

8. अध्यापक शिक्षा के विभिन्न भागों में परिणामस्वरूप भावी अध्यापक कक्षा–कक्ष की स्थितियों में बाहर एवं अंदर कार्य करते हैं, वे वैज्ञानिक ज्ञान धनात्मक दृष्टिकोण एवं तकनीकियों का प्रयोग करते हैं जो कि सीखने के व्यवहार को और अधिक संशोधित करें व जिसका प्रयोग सीखने वाले की वास्तविक क्षमताओं का प्रयोग कर सकें।

9. एक प्रभावशाली अध्यापक बनने के लिए अध्यापक को समाज की आवश्यकताओं का ध्यान रखना चाहिए एवं उस समुदाय का, जिसमें वह रहता है और उसे सामाजिक कौशल का ज्ञान होना चाहिए जिससे समुदाय विकास एवं समाज में वांछनीय परिवर्तन लाने में सहायता मिले।

10. अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम उस सीमा तक विश्वसनीय होंगे जहाँ तक मौखिक अनुभवों को दृश्य, पुस्तकों एवं कौशल अनुभवों द्वारा पुनर्बलन प्रदान किया जाय।

11. अध्यापक शिक्षा एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया होने के कारण उसे तीन विशेषताओं की आवश्यकता है, जैसे कि लचीलापन, मानवीय एवं अंतःअनुशासन।

अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र—अध्यापक शिक्षा का क्षेत्र मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक फैला हुआ है। जन्म के समय ही बालक का प्रथम शिक्षक उसकी माता होती है, जो उसके भोजन एवं सुरक्षा से लेकर जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है, उसके विकास में सहयोगी होती है, उसे संस्कारवान बनाती है तथा परिवार, वातावरण एवं समाज से सामंजस्य सिखाती है तथा नैतिकता सहित सभी अच्छे गुण का बालक को दिये जाते हैं।

अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में निम्नलिखित हो सकते हैं—

1. ज्ञानार्जन में, 2. समस्या सुलझाने में, 3. शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति करने में, 4. चरित्र निर्माण में, 5. व्यक्तित्व निर्माण में, 6. अच्छा नागरिक बनाने में, 7. रूढ़िवादिता एवं परम्पराओं से अवगत कराने में, 8. सामाजिक चेतना जाग्रत करने में, 9. सद्गुणों को संचरित करने में, 10. संस्कृति को पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तांतरित करने में, 11. मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में, 12. समाजशास्त्रीय क्षेत्र में, 13. कला, विज्ञान, तकनीकी शिक्षा के ज्ञानार्जन में, 14. शोध कार्यों में, 15. व्यक्तियों, समाज, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीयता के समझने में, 16. मानवीय गुणों के बारे में, 17. दर्शन एवं नैतिकता में, 18. भौतिक, व्यावहारिक, मूर्त एवं अमूर्त विषयों के संबंध के क्षेत्र में।

अध्यापक शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व —अध्यापक शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व निम्नलिखित हैं—

1. प्रत्येक अध्यापक विद्यार्थी है—शिक्षा एक जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। अध्यापक को जीवन भर सीखते रहना चाहिए। वास्तव में किसी भी व्यक्ति को तब तक शिक्षण कार्य करने का फैसला नहीं करना चाहिए जब तक स्वयं सीखते रहने का निश्चय न कर लें, क्योंकि एक सच्चा अध्यापक अपने समूचे जीवन में विद्यार्थी बने रहता है।

कोठारी आयोग के अनुसार—"शिक्षा के सभी स्रोतों में तेजी से हो रही उन्नति के कारण तथा अध्यापक के सिद्धांतों और प्रयोगों में लगातार हो रहे विकास के कारण सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता बहुत ही अनिवार्य है।"

सेकेण्डरी शिक्षा आयोग के शब्दों में—"अध्यापक प्रशिक्षण का कार्यक्रम ही उत्कृष्ट क्यों न हो, लेकिन केवल इसी से उत्कृष्ट अध्यापक का निर्माण नहीं होता। परिवर्द्धित कौशल आलोचनात्मक रूप से विश्लेषण किए गए अनुभव तथा विकास के व्यक्तिगत एवं सामूहिक प्रयत्नों से प्राप्त होता है।"

डॉ. रवीन्द्रनाथ टैगोर के शब्दों में—"एक अध्यापक कभी भी वास्तविक अर्थों में नहीं पढ़ा सकता जब तक वह स्वयं अभी सीख न रहा हो। एक दीपक दूसरे दीपक को प्रज्ज्वलित नहीं कर सकता जब तक उसकी अपनी ज्योति जलती न रहे।"

2. शिक्षा के उद्देश्यों को समझने के लिए—शिक्षा की आवश्यकता शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करना होता है। अतः शिक्षा एक सोद्देश्य प्रक्रिया है। शिक्षक को जब तक शिक्षा के उद्देश्य नहीं पता होंगे तब तक वह इस क्रिया को अच्छे ढंग से क्रियान्वित नहीं कर सकता। शिक्षक शिक्षा के माध्यम से शिक्षकों के शिक्षा के उद्देश्यों को स्पष्ट किया जाता है जिसके द्वारा वे छात्रों को विधिवत् ढंग से उन्हें प्राप्त कराने में सहायता करते हैं।

3. शिक्षा गतिशील है—शिक्षा गतिशील होती है अर्थात् उसमें प्रत्येक समय परिवर्तन होता रहता है। जो सिद्धांत बीस साल पहले समझे जाते थे, आज उनका कोई मूल्य नहीं रहा। इसलिए यह स्पष्ट है कि जिस अध्यापक ने बीस वर्ष पहले प्रशिक्षण लिया था आज उसे नया प्रशिक्षण लेना चाहिए। उसे शिक्षा की नवीनतम वृत्तियों से अपना संबंध स्थापित रखना चाहिए। उसे नवीन समस्याओं, नवीन विधियों तथा शिक्षा की नवीन शैलियों का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए।

4. आजीवन शिक्षा—हाल ही के अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा आयोग ने सेवाकालीन प्रशिक्षण को "आजीवन शिक्षा" का नारा देकर इसकी जरूरत पर बल दिया है।

5. सुरक्षा की भावना—सेमिनारों और कार्यशालाओं में जब अध्यापक एक–दूसरे के साथ मिलते हैं, तो उनमें संरक्षण समवृत्ति, सामूहिक वृत्ति तथा अपनत्व की भावना पैदा होती है।

6. व्यावसायिक विकास के लिए—अध्यापक के व्यावसायिक विकास हेतु सेवाकालीन प्रशिक्षण बहुत जरूरी है। इसे इस बात की आवश्यकता होती है कि वह अपने अनुभव में नवीनता प्राप्त करे, नया ज्ञान हासिल करें, अपने दृष्टिकोण का विस्तार करें, दूसरे के अनुभवों से लाभ उठाएँ, नई सूचनाएँ प्राप्त करें।

7. बौद्धिक परम्पराओं और कार्य कौशलों के हस्तांतरण के लिए—अध्यापक छात्रों की शिक्षण प्रक्रिया तक ही सीमित नहीं रहता वरन् वह छात्रों में बौद्धिक परम्पराओं और कार्य कौशलों का हस्तांतरण भी करता है। वह पाठ्यचर्या के अधीन विषयों के साथ–साथ अन्य ज्ञान एवं परम्पराएँ भी

सीखने के लिए प्रदान करता है। इस प्रकार शिक्षक शिक्षा के द्वारा समाज की सभ्यता–संस्कृति एवं परम्पराओं का कैसे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरण हो, इसका ज्ञान कराया जाता है।

8. उत्तरदायित्वों को कुशलतापूर्वक निर्वाह करने के लिए–एक शिक्षक शिक्षण के क्षेत्र में मात्र बौद्धिक ज्ञान और कुशलताओं को ही नहीं प्रदान करती है बल्कि वह छात्रों को विचार करने, सोचने तथा नवीन कार्यों को करने के लिए प्रोत्साहित भी करता है। शिक्षक का कार्य शिक्षण प्रदान करना ही नहीं होता बल्कि उसका सर्वांगीण विकास करना भी होता है। शिक्षक शिक्षण के द्वारा अद्यतन तकनीकियों, शिक्षण विधियों एवं रणनीतियों से शिक्षक को परिचित कराया जाता है। इसका उपयोग करके अध्यापक छात्रों को रुचिपूर्वक अध्ययन कराने में सफलता प्राप्त करते हैं।

9. शिक्षा का पुनर्गठन–अंत में, स्वतंत्र भारत की यह माँग है कि अध्यापकों को परिवर्तनशील भारतवर्ष के नवीनतम विकास कार्यों का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। विशेषकर जब कोठारी आयोग के सुझावों पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 का निर्माण हो चुका है। अध्यापकों के लिए यह जरूरी हो जाता है कि वे सभी स्तरों पर शिक्षा के पुनर्गठन की तरफ ध्यान दें।

प्रश्न 8. वर्तमान अध्यापक शिक्षा की चुनौतियाँ या समस्याएँ लिखिए।

***अथवा*, वर्तमान द्विवर्षीय बी.एड. पाठ्यक्रम की कमियों को लिखिए।** **(उज्जैन 2021)**

उत्तर–अध्यापक या शिक्षक शिक्षा की निम्नलिखित चुनौतियाँ या समस्याएँ हैं–

1. मानवीय मूल्यों की अवहेलना–प्रशिक्षण में केवल उद्देश्य, विधियों आदि पर इतना बल दिया जाता है कि छात्राध्यापक अपने विचारों, मूल्यों आदि पर ध्यान नहीं देते। इससे उनमें मौलिक चिन्तन का ह्रास होने लगता है। इसी कारण वह अपनी छोटी–छोटी सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं को सुलझाने में असमर्थ रहते हैं। अतः अध्यापक शिक्षा में मानवीय मूल्यों एवं आवश्यकताओं का भी ध्यान रखना आवश्यक है।

2. सुयोग्य एवं अनुभवी अध्यापकों का अभाव–हमारे शिक्षा विभागों में ज्यादातर अध्यापक शैक्षणिक योग्यता, रुचि व अभिवृत्ति तथा अनुभव की दृष्टि से अनुपयुक्त है। इसके फलस्वरूप अध्यापक शिक्षा संबंधी कार्यों को सुचारू रूप से संपन्न नहीं किया जाता है एवं सिर्फ उनकी खाना–पूर्ति ही की जाती है। अतः इस समस्या का निराकरण करना जरूरी है।

3. छात्राध्यापकों के प्रवेश की समस्या–अध्यापक शिक्षा में प्रवेश की समस्या एक विकट रूप में शिक्षा विभागों के सम्मुख एक बाधा बनी रहती है। इसमें प्रवेश के लिए जो छात्र आते हैं, वे शैक्षणिक योग्यता की दृष्टि से हीन होते हैं एवं उन्हें रोजगार नहीं मिल पाता है। इससे शिक्षा का स्तर दिन–प्रतिदिन गिरता जा रहा है। अतः प्रवेश संबंधी नियम कड़े किये जाये तथा बुद्धि परीक्षा एवं सामान्य ज्ञान आदि के द्वारा चयन कार्य सम्पन्न किया जाना चाहिए।

4. अनुपयुक्त पाठ्यक्रम–अध्यापक शिक्षा संस्थाओं का पाठ्यक्रम अत्यंत संकुचित, निर्जीव एवं पुराना है। प्रशिक्षण की अवधि में सैद्धांतिक पक्ष पर ज्यादा जोर दिया जाता है और अभ्यासात्मक पक्ष उपेक्षित रहता है। छात्रों की रुचियों, अभिरुचियों, दृष्टिकोणों, कल्पना शक्ति, सृजनशीलता, नेतृत्व आदि को परिमार्जित करने पर भी कोई ध्यान नहीं रहता है। पाठ योजना की घिसी–पिटी परिपाटी अपनाई जाती है। प्रशिक्षण में अर्जित ज्ञान अध्यापकगण वास्तविक परिस्थितियों में प्रयोग नहीं लाते हैं। इससे प्रशिक्षण की उपयोगिता ही संदिग्ध हो जाती है। प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में आमूल चूल परिवर्तन की आवश्यकता प्रतीत होती है। जिससे प्रशिक्षण काल में प्राप्त ज्ञान का अध्यापकगण वास्तविक जीवन में प्रयोग करें एवं अपने शिक्षण को प्रभावशाली बनायें।

5. अच्छे शोध कार्य का अभाव—वैसे तो अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में भारत में किये गये अनुसंधान कार्यों की विशाल शृंखला है। लेकिन अच्छे अनुसंधान कार्य का अभाव–सा प्रतीत होता है। भारतवर्ष में अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में किया जाने वाला शोध कार्य अभी भी अपनी शैशवावस्था में प्रतीत होता है। विदेशों विशेषकर ब्रिटेन एवं अमेरिका में किये जाने वाले अनुसंधानों को भारतीय परिस्थितियों में दोहराना भारतीय शैक्षिक अनुसंधानकर्ताओं का प्रिय विषय रहा है। नितान्त मौलिक अनुसंधानों का तो भारत में अभाव रहा है। खेद का विषय है कि शिक्षा की स्नातकोत्तर व अनुसंधान उपाधियों से युक्त तथाकथित महान प्रोफेसरगण शिक्षा को कोई नितांत मौलिक बात नहीं दे पाये हैं। आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय परिवेश को ध्यान में रखकर शिक्षा एवं अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में मौलिक अनुसंधान किये जायें ताकि सामान्य शिक्षा एवं अध्यापक शिक्षा दोनों की गुणवत्ता बढ़ाई जा सके।

6. व्यावसायिक प्रशिक्षण में सुधार की समस्या—शिक्षा विभागों के शिक्षकों की व्यावसायिक कुशलता में कमी होने से शिक्षा का स्तर निरंतर गिर रहा है। साथ–ही–साथ शिक्षण में प्रचलित कार्यक्रमों पर जोर दिया जाता है। वे अत्यंत परम्परागत एवं रूढ़िबद्ध हैं। अतः व्यावसायिक शिक्षण को सजीव बनाना ज़रूरी है।

7. दोषपूर्ण अध्यापन विधि—शिक्षा विभागों में प्रवक्ताओं द्वारा अध्यापन में प्रायः भाषण विधि का प्रयोग किया जाता है। वह परम्परागत है। भाषण निरर्थक होते हैं। छात्राध्यापक केवल निष्क्रिय रूप में बैठे रहते हैं। इससे उनमें उचित दृष्टिकोण का विकास नहीं होता। अच्छा अध्यापक विचारों से पूर्ण होना चाहिए। इसे आवश्यकतानुसार गतिशील अध्यापन विधियों का उपयोग करना चाहिए। अतः सामूहिक वाद–विवाद, विचार–विमर्श, विचार–गोष्ठी, सम्मेलन, वर्कशॉप तथा प्रश्नोत्तर विधि आदि का समय–समय पर आयोजन आवश्यक है। मेरठ विश्वविद्यालय ने इस संबंध में महत्वपूर्ण कदम उठाये हैं। महाविद्यालयों में प्रत्येक कालांश 60 मिनट का कर दिया गया है। उद्देश्य यही है कि अध्यापक द्वारा भाषण के अतिरिक्त विभिन्न विषयों पर विचार–विमर्श संभव हो और छात्र उनमें सक्रिय रूप से भाग ले सकें। छात्रों के मानसिक विकास के लिए यह आवश्यक है।

8. स्वतंत्र वातावरण का अभाव—शिक्षा विभागों एवं प्रशिक्षण विद्यालयों में आज भी छात्राध्यापकों को स्वतंत्र वातावरण प्रदान नहीं किया जाता है। छात्र प्रायः चापलूसी करते रहते हैं तथा अध्यापक श्रेणी के भय से उन्हें डराते रहते हैं। यह समस्या लगातार बल पकड़ती जा रही है।

9. प्रदर्शनात्मक विद्यालयों का अभाव—शिक्षा विभाग की मान्यता का आधार विभाग से सम्बद्ध प्रदर्शनात्मक विद्यालय की सुविधा होनी चाहिए। जिन विभागों के पास अपना शिक्षण विद्यालय नहीं है उन्हें मान्यता ही न दी जाये, क्योंकि दिन–प्रतिदिन के शैक्षिक प्रयोगों तथा अध्यापन के कार्यों में कठिनाई होगी। बहुत कम शिक्षा विभाग ऐसे है जिनके पास अपना प्रदर्शनात्मक विद्यालय है। जिस प्रकार विज्ञान विषय प्रयोगशाला के बिना नहीं पढ़ाया जा सकता, ठीक इसी प्रकार अध्यापक शिक्षा के लिए प्रदर्शनात्मक विद्यालय है।

10. सैद्धांतिक पक्ष पर अधिक बल—प्रशिक्षण की अवधि में सिद्धांत को ज्यादा महत्व दिया जाता है। कुछ शिक्षा विभागों व प्रशिक्षण संस्थाओं में तो शिक्षणाभ्यास केवल दो सप्ताह में पूरा कर दिया जाता है और इसको सिर्फ औपचारिक क्रिया मात्र समझा जाता है। अतः शिक्षा के व्यावहारिक पक्ष की पूर्ण रूप से अवहेलना की जाती है। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि हमारे शिक्षा विभागों के अध्यापक भी इस समस्या की तरफ ध्यान नहीं देते हैं।

11. पृथकता की समस्या—यह समस्या अध्यापक शिक्षा में तीन रूपों में व्याप्त है। प्रथम विश्वविद्यालय एवं कॉलेज के अन्य विभागों में पृथकता, दूसरे शिक्षा विभागों का माध्यमिक स्कूलों में अलगाव, तीसरा प्रशिक्षण महाविद्यालयों में प्राथमिक व माध्यमिक स्तरों में परस्पर सहयोग का अभाव पाया जाता है। इससे एक विभाग के अध्यापक दूसरे स्तर के अध्यापकों को हेय दृष्टि से देखने लगते हैं। यह अध्यापक शिक्षा हेतु बहुत अहितकर है। कोठारी आयोग ने इस समस्या को हल करने हेतु सिफारिश की है।

12. दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली—अध्यापक शिक्षा की परीक्षा प्रणाली बहुत दोषपूर्ण है। वह प्रायः विषयनिष्ठ है तथा ज्ञान की सही परीक्षा नहीं करती। शिक्षण में प्रारूप छात्राध्यापकों को छोटी–छोटी बातों पर धमकी दी जाती है। कहीं–कहीं अध्यापकों में बदले की भावना पाई जाती है। विभागों में अध्यापक स्वयं भी आपस में लड़ते–झगड़ते हैं। इसका बुरा प्रभाव छात्राध्यापकों पर भी पड़ता है। उनमें सहयोग, समूह–भावना तथा एकता का सर्वथा अभाव है। वास्तव में शिक्षा विभाग आदर्श होने चाहिए। छात्राध्यापकों का मूल्यांकन पूर्णतया वस्तुनिष्ठ हो। उसमें सिफारिश अथवा द्वेष आदि का कोई स्थान न हो। निष्पक्ष भाव से प्रयोगात्मक कार्य का मूल्यांकन किया जाय। सम्पूर्ण मूल्यांकन के आधार पर ही कोई निष्कर्ष निकालना चाहिए।

13. अनुपयुक्त पाठ्य–पुस्तकें—अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में अच्छी पाठ्य–पुस्तकों का अभाव है। बाजार प्रश्नोत्तर, सस्ते नोट्स, गाइड से भरा पड़ा है। वे प्रायः निम्न स्तर के अध्यापकों द्वारा लिखी जाती है। अच्छे अनुभवी अध्यापक इसमें रुचि नहीं लेते। कुछ पुस्तकें क्षेत्र से बाहर के व्यक्तियों द्वारा भी लिखी जाती है। इससे शिक्षा–स्तर में बहुत गिरावट आ गई है। विश्वविद्यालय तथा अध्यापकों को इस कार्य में छात्राध्यापकों का मार्गदर्शन करना चाहिए। सस्ते नोट्स व प्रश्नोत्तर पुस्तकों पर रोक लगाई जाये। छात्रों को मौलिक शिक्षा ग्रंथ पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया जाए। उनमें स्वतंत्र अध्ययन की आदत डाली जाये। अध्यापक इसमें बहुत सहायक हो सकता है।

14. पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का अभाव—बहुत कम विभाग इस प्रकार की क्रियाओं को संगठित करने में रुचि लेते हैं। अधिकतर स्थानों पर पाठ्यक्रम की खानापूर्ति करना ही सब कुछ है। पाठ्यक्रम में निर्धारित शारीरिक शिक्षा, स्काउटिंग व गाइड, प्राथमिक चिकित्सा तथा हस्तकला आदि के प्रशिक्षण पर ध्यान नहीं दिया जाता है। इस प्रकार के प्रशिक्षण प्राप्त अध्यापकों से स्कूलों में विभिन्न क्रियाओं को संगठित करने की क्या आशा की जा सकती है। अतः इसमें सुधार की आवश्यकता है।

15. विषयों के चयन में कठिनाई—शिक्षा विभागों में छात्राध्यापकों को अध्यापन के विषयों का चयन सावधानी से करना चाहिए। प्रवेश के समय ही इस ओर ध्यान दिया जाये। कभी–कभी कुछ ऐसे विद्यार्थी प्रवेश पा जाते हैं, जिनके स्नातक स्तर के विषय विद्यालयों में नहीं होते। विवश होकर उन्हें ऐसे विषय दिलाने पड़ते हैं जिन्हें उन्होंने कभी नहीं पढ़ा है और न ही उनके प्रति उन्हें रुचि है। अतः विषयों के उचित चुनाव की ओर ध्यान दिया जाय।

16. आदर्श पाठों का अभाव— प्रायः अध्यापक आदर्श पाठों का आयोजन करने में रुचि नहीं लेते। वे अपने को इस कार्य में दक्ष नहीं पाते। वास्तव में शिक्षा विभाग के अध्यापकों को कुछ समय अनिवार्य रूप से विद्यालयों में अध्यापन कार्य करना चाहिए। इसमें हम विद्यालय के अन्य अनुभवी अध्यापकों की सहायता ले सकते हैं। प्रयत्न होना चाहिए कि समय–समय पर आदर्श अध्यापन छात्राध्यापकों के सम्मुख उपस्थित किया जाये। यह कार्य विद्यालयों में अध्यापन कार्य प्रारंभ करने से पहले अथवा बीच में भी संगठित किया जा सकता है। आदर्श पाठों का प्रशिक्षण में अपना स्थान तथा महत्व है। इसमें नवीन रीति का अनुसरण किया जाय।

17. कक्षा शिक्षण में लापरवाही—विद्यालयों में शिक्षण कार्य को सावधानी से संगठित किया जाय। प्रायः छात्राध्यापक इसमें लापरवाही करते हैं। पाठ योजनाओं की नकल करते हैं। पाठ योजनाएँ बड़ी पुरानी व परम्परागत होती है। कुछ पाठों को बिना पढ़ायें विद्यालय अध्यापकों से हस्ताक्षर करा लिए जाते हैं। ऐसा करना बड़ा घातक है। हम ऐसे अध्यापकों से क्या आशा कर सकते हैं? उनका दृष्टिकोण कुछ सीखने का होना चाहिए। यदि थोड़ी–सी सावधानी से कार्य करें तो उनके अध्यापन कार्य में काफी सुधार हो सकता है। निरीक्षक को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

18. सहयोग व समन्वय का अभाव—विद्यालयों तथा शिक्षा विभागों में परस्पर संपर्क की भारी कमी है। उनमें कोई साम्य नहीं है। वे एक–दूसरे की न परवाह करते और न ध्यान देते हैं। दृष्टिकोण में भी बड़ा अंतर पाया जाता है। इससे बड़ी हानि हो रही है। शिक्षा–विभागों द्वारा अपनाई गई विधियाँ, प्रविधियाँ तथा सहायक–सामग्री शिक्षा विभाग तक ही सीमित रह जाती है, वे विद्यालयों तक नहीं पहुँच पाती। विद्यालयों में मुख्यतः पुरानी परम्परागत पुस्तक–पाठन विधि का ही प्रचलन है। हमारे छात्राध्यापक विद्यालयों के अध्यापकों की इस कार्य में कोई रुचि न लेने की शिकायत करते हैं। राज्य के शिक्षा विभाग भी इसमें कोई रुचि नहीं दिखाते। अतः वे तीनों में परस्पर सहयोग तथा संपर्क स्थापित करना जरूरी है। प्रत्येक दशा में यह पृथकता समाप्त होनी चाहिए। सब सहयोग व रुचि से मिल–जुलकर कार्य करें। सिद्धांत व व्यवहार में अंतर नहीं रहना चाहिए।

19. रूढ़िवादिता—अध्यापन कार्य में प्रायः शिक्षा विभागों के अध्यापक अपनी रूढ़िवादी व परम्परागत विधि का अनुसरण करते हैं। वे नवीन विचारों अध्यापन विधियों तथा प्रविधियों से सर्वथा अभिन्न है। उन्हें स्वतंत्र अध्ययन की आदत नहीं है। आजकल ज्ञान का विकास तीव्र गति से हो रहा है। अध्यापक को अपना ज्ञान निरंतर नया तथा पूर्ण रखना चाहिए। इसके लिए शैक्षिक पत्रिकाओं का अध्ययन आवश्यक है। समय–समय पर आयोजित विचार–गोष्ठी, वर्कशॉप तथा शैक्षिक सम्मेलनों में उन्हें भाग लेना चाहिए। कक्षा अध्यापन में नवीन विधियों को प्रयोग करने की क्षमता उनमें चाहिए।

20. अस्वस्थ वातावरण—शिक्षा विभागों में वातावरण में प्रायः बनावट व कृत्रिमता पाई जाती है। अध्यापक तथा छात्र का संबंध केवल ऊपरी दिखावे का रहता है। इस संबंध में छात्रों का दृष्टिकोण जानना आवश्यक है। वे प्रायः एक अध्यापक के सामने उसकी तारीफ व चापलूसी तथा दूसरे अध्यापकों की बुराई करते हैं। कुछ अध्यापक इससे प्रसन्न होते हैं। शिक्षा विभागों के लिए यह दुर्भाग्य की बात है। हमें विभागों का वातावरण अधिक प्राकृतिक, वास्तविक तथा ठोस बनाने की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए और छात्र व अध्यापक के संबंध में घनिष्ठता तथा निकटता को स्थापित करना चाहिए।

21. उचित निरीक्षण का अभाव—छात्राध्यापकों के अध्यापन के समय अध्यापक निरीक्षण कार्य करते हैं। इसमें प्रायः लापरवाही बरती जाती है। इस ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। निरीक्षण पूर्ण हो। वह पूर्णतया वस्तुनिष्ठ हो। सुझाव वास्तविक तथा ठोस हो और उनके द्वारा छात्राध्यापकों के अध्यापन में उन्नति संभव हो। वास्तव में अध्यापन में सुधार अच्छे निरीक्षण पर निर्भर करता है। निरीक्षकों का दृष्टिकोण स्वस्थ होना चाहिए और वे छात्रों को नवीन विधियों के प्रयोग के लिए प्रोत्साहित करें।

प्रश्न 9. राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् की पाठ्यचर्या निर्माण में भूमिका को स्पष्ट कीजिए।
(उज्जैन 2021)

उत्तर—राष्ट्रीय शिक्षक (अध्यापक) शिक्षा परिषद् (National Council for Teacher Education; NCTE)—राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् संसद द्वारा पारित अधिनियम (1995) के अंतर्गत स्थापित एक वैधानिक संस्था है। जिसका कार्य सम्पूर्ण भारत में अध्यापक शिक्षा का नियोजन एवं समग्र विकास करना है। इस समावेश के अनुपालन में इन्होंनें विभिन्न स्तर के अध्यापक शिक्षा में सुधार हेतु कार्य किए गए।

राष्ट्रीय शिक्षक परिषद् का संगठन—प्रारंभ में राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (NCTE) में 41 सदस्य होते थे, जिसका अध्यक्ष केन्द्रीय शिक्षा मंत्री होता था तथा राज्य शिक्षा विभागों के 21 प्रतिनिधि, एक विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) का सदस्य, एक–एक प्रतिनिधि राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद् (NCERT), ऑल इण्डिया काउन्सिल फॉर टैक्निकल (AICTE), सेन्ट्रल एडवाइजरी बोर्ड ऑफ एजुकेशन (CABE) व योजना आयोग (Planning Commission) के केन्द्र सरकार द्वारा नामजद प्रतिनिधि, एक–एक प्रतिनिधि पूर्व–प्राथमिक, प्राथमिक, माध्यमिक, टैक्निकल तथा वोकेशनल अध्यापक शिक्षा, दो शिक्षा सचिव, एक परिषद् के अध्यक्ष द्वारा नामित सदस्य तथा एक मैम्बर सैक्रेटरी सम्मिलित होते थे। किन्तु, बाद में परिषद् का संगठन राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) की तरह किया गया तथा उसमें अध्यक्ष (Chairman), उपाध्यक्ष (Deputy Chairman), सैक्रेटरी, कार्यकारिणी समिति (Executive Commitee) के सदस्य तथा कार्यालय कर्मचारी होते थे। देश के प्रत्येक कोने में अध्यापक शिक्षा पर नियंत्रण रखने के लिए राज्य परिषदें (स्टेट काउंसिल ऑफ टीचर एजुकेशन) तथा चार क्षेत्रीय परिषदें स्थापित की गयी। निरीक्षण समितियाँ भी संगठित की गई जिनमें अध्यापक शिक्षा से संबंधित विश्वविद्यालयों के प्रोफेसरों को शामिल किया जाता था।

राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् के उद्देश्य या कार्य या भूमिका—राष्ट्रीय शिक्षक या अध्यापक शिक्षा परिषद् के निम्नलिखित उद्देश्य एवं कार्य हैं—

1. सभी शिक्षक शिक्षा संस्थाओं के लिए शिक्षण शुल्क, अन्य शुल्क एवं छात्रवृत्तियों का निर्धारण करना।
2. शिक्षक शिक्षा से संबंधित किसी भी क्षेत्र में जब सरकार कोई संशोधन करती है तो वह संशोधन इस परिषद् की देख–रेख में ही सम्पन्न होता हैं।
3. सम्पूर्ण शिक्षक शिक्षा संस्थाओं के लिए मानदण्ड निर्धारित करना।
4. शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में शोध कार्य एवं नवाचारों के प्रयोगों को बढ़ावा देकर शोध के स्तर को उन्नत करना।
5. शिक्षक शिक्षा के संबंध में केंद्र सरकार द्वारा लिए गए निर्णयों को क्रियान्वित करना।
6. भारत के समस्त शिक्षक शिक्षा संस्थानों में समन्वय स्थापित करना एवं किसी भी स्तर की शिक्षक शिक्षा के प्रसार में संतुलन बनाए रखना।
7. प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च सभी स्तर से सेवारत् शिक्षकों हेतु पुनर्बोधन कार्यक्रमों का निर्माण करना।
8. शिक्षक शिक्षा के व्यावसायीकरण को रोकना।
9. सभी प्रकार की शिक्षक शिक्षा संस्थाओं हेतु पाठ्यक्रम निर्धारित करना तथा समय–समय पर नवीन पाठ्यक्रम को प्रारंभ करना।
10. शिक्षक शिक्षा से संबंधित सभी पक्षों का सर्वेक्षण कराना तथा सर्वेक्षण परिणामों को प्रकाशित एवं प्रसारित करना।
11. शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में विश्व स्तर पर संबंध स्थापित करना।
12. नई–नई जानकारियाँ प्राप्त करना एवं उपयोगी तथ्यों का लाभ उठाना।
13. सभी प्रकार की शिक्षक शिक्षा संस्थाओं में अभ्यर्थियों की न्यूनतम योग्यता निर्धारित करना एवं उनकी चयन प्रक्रिया के संबंध में सलाह देना।

14. सभी प्रकार की शिक्षक शिक्षा संस्थाओं के द्वारा शिक्षकों की न्यूनतम शैक्षिक योग्यता निर्धारित करना एवं उनके वेतनमान निर्धारित करना।

15. सभी शिक्षक शिक्षा संस्थाओं का समय–समय पर निरीक्षण कराकर, उन्हें सुधार हेतु सुझाव देना एवं निम्न स्तर की संस्थाओं की मान्यता समाप्त करने की संस्तुति करना।

16. किसी भी नई शिक्षक संस्था को मान्यता देने से पहले उसका निरीक्षण कराना एवं मानदण्ड पूरा करने पर मान्यता प्रदान करना।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि राष्ट्रीय शिक्षक परिषद् का मूल उद्देश्य समूचे भारत में अध्यापक शिक्षा प्रणाली का नियोजित एवं समन्वित विकास करना, अध्यापक शिक्षा प्रणाली के मानदण्डों एवं मानकों का विनियमन तथा उन्हें समुचित रूप से बनाए रखना है।

राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् द्वारा कृत कार्यों का परिणाम–राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् ने देश में शिक्षक–शिक्षा प्रणाली के नियोजन एवं समन्वित विकास को सुनिश्चित करने के लिये निम्नलिखित कार्य किये हैं–

1. शिक्षक शिक्षा में अस्थायी प्रवेश (Provisional admission) पर प्रतिबंध लगा दिया।

2. देश के पत्राचार माध्यम से बी.एड. कराने वाली शिक्षक शिक्षा संस्थाओं को प्रतिबंधित किया और दूरवर्ती शिक्षा प्रणाली के माध्यम से बी.एड. के लिए दिशा–निर्देश जारी किये।

3. शिक्षक शिक्षा में प्रवेश करने के लिये अभ्यर्थियों को स्नातक स्तर पर 45% अंक होना अनिवार्य किया, जो अब अद्यतन बढ़ाकर 50% कर दिया गया।

4. शिक्षक शिक्षा प्रदान करने वाली प्रत्येक संस्था/संस्थान को राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् से मान्यता लेना अनिवार्य किया।

5. प्रत्येक शिक्षक शिक्षा संस्थान में निम्नतम 6 शिक्षक और 60 छात्र सुनिश्चित कर दिए।

6. माध्यमिक स्तर की शिक्षक शिक्षा संस्था–संस्थान के लिए मानक निर्धारित किए व प्रत्येक संस्थान को इसके अनुसार परिवर्तित एवं संवर्धित करना आवश्यक कर दिया।

7. शिक्षक शिक्षा संस्था/संस्थान के लिए प्राचार्य/अध्यक्ष और शिक्षकों की शैक्षिक योग्यता का निर्धारण भी किया।

8. स्कूल विषयों के शिक्षण हेतु शैक्षिक योग्यता के लिए विषय अध्यापक की शैक्षिक योग्यता संबंधित विषय में परास्नातक डिग्री (Master's Degree) सुनिश्चित कर दी गयी।

NCTE से मान्यता प्राप्त प्रोग्रामर हैं–1. बी.एड. (बैचलर इन एजुकेशन डिग्री) और एम.एड. (मास्टर्स इन एजुकेशन डिग्री) इंटरमीडिएट छात्रों को पढ़ाने के लिए शिक्षक को योग्य बनाते हैं।

2. डी.पी.एड. (Diploma in physical education) शिक्षक को प्रारंभिक छात्रों को शारीरिक शिक्षा सिखाने के योग्य बनाता है।

3. बी.पी.एड. (Bachelor in physical education degree) इंटरमीडिएट के छात्रों को शारीरिक शिक्षा सिखाने के लिए शिक्षक को योग्य बनाता है।

4. डी.एल.एड. (Diploma in elementary education) और बी.एल.एड. (Bachelor in elementary education) शिक्षक को उन छात्रों को पढ़ाने के योग्य बनाते हैं जो प्राथमिक विद्यालय में हैं।

5. डी.पी.एस.ई. (Diploma in pre-school education) शिक्षक को उन छात्रों को पढ़ाने के योग्य बनाता हैं, जो प्री–स्कूल में हैं।

●●

नवबोध

प्रकाशन की अन्य उत्कृष्ट पुस्तकें...

बी. एड. सरल अध्ययन

प्रथम सेमेस्टर

- पाठ्यक्रम विकास एवं विद्यालय
- बाल्यावस्था एवं विकास
- भारत में शिक्षा–स्थिति, समस्या एवं मुद्दे
- पाठ्यक्रम में भाषा (भाग-1)

द्वितीय सेमेस्टर

- पाठ्यक्रम में भाषा (भाग-2)
- अधिगम एवं शिक्षण
- सामाजिक विज्ञान शिक्षण
- गणित शिक्षण
- जीव विज्ञान शिक्षण
- रसायन शिक्षण
- वाणिज्य शिक्षण
- अर्थशास्त्र शिक्षण
- भौतिक विज्ञान
- Pedagogy of English Language
- हिन्दी शिक्षण
- इतिहास शिक्षण
- नागरिक शास्त्र शिक्षण
- भूगोल शिक्षण

तृतीय सेमेस्टर

- विद्यालय विषयों का शिक्षणशास्त्र, भाग-2

चतुर्थ सेमेस्टर

- शैक्षिक तकनीकी तथा सूचना एवं संप्रेषण तकनीकी
- लिंग, विद्यालय और समाज
- पर्यावरण शिक्षण
- समावेशी विद्यालय का सृजन
- स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा
- विद्यालयों में निर्देशन एवं परामर्श
- क्रियात्मक अनुसंधान
- मूल्य शिक्षण
- स्वयं को समझना
- ICT को समझना
- भविष्यात्मक शिक्षण

नवबोध प्रकाशन

7, समता कॉलोनी, रायपुर (छ.ग.)
फोन : 0771-2533603, 4200905
ई-मेल : prakashan@navbodh.com

Customer Helpline : 7471145005 | fb.com/navbodh | www.navbodhprakashan.com